हिन्दी भाषा और नागरी लिपि

(Hindi Language and Nagari Script)

देव कुमार

हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि

हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि

(Hindi Language and Nagari Script)

देव कुमार

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5607-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। सामान्यत: प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही 'पद्य' रचना प्रारम्भ हो गयी थी। हिन्दी भाषा व साहित्य के जानकार अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 'अवहट्ट' से हिन्दी का उद्‌भव स्वीकार करते हैं। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने इसी अवहट्ट को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं, वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राज्याश्रित कवि और चारण नीति, श्रृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने 'देसी भाषा' कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य 'भारतीय भाषा' का था।

नागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। कुछ अनुसन्धानों से पता चला कि नागरी लिपि का विकास प्राचीन भारत में पहली से चौथी शताब्दी में गुजरात में हुआ था। सातवीं शताब्दी में यह लिपि आमतौर पर उपयोग की जाती थी

और कई शताब्दियों के पश्चात् इसके स्थान पर देवनागरी और नंदिनागरी का उपयोग होने लगा। प्राचीन नागरी या नागर लिपि से ही इसका विकास हुआ है। यह वैज्ञानिक तथा पूर्ण लिपि है। यों भाषा-विज्ञान की ध्वनि-विषयक सूक्ष्मताओं की दृष्टि से इसे बहुत वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। इसीलिए सुभाष बाबू तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी आदि बहुत-से विद्वान् इसे छोड़कर रोमन लिपि को अपना लेने के पक्ष में रहे हैं। पूरे हिन्दी प्रदेश की यह लिपि है। मराठी भाषा में भी कुछ परिवर्धन-परिवर्तन के साथ यह प्रयुक्त होती है। नेपाली, संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के लिए भी यही लिपि प्रयुक्त होती है।

नागरी लिपि पूर्ण वैज्ञानिक नहीं है। हिंदी की दृष्टि से उसकी प्रधान कमियां हैं–

इसमें कुछ अक्षर या लिपिचिन्ह आज के उच्चारण की दृष्टि से व्यर्थ हैं 'ऋ' का उच्चारण 'रि' है, 'ण' का 'ड़ँ' है और 'ष' का 'श'। अतएव ऋ, ण और ष की आवश्यकता नहीं है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति	2
	आदिकाल - (1000-1500)	3
	मध्यकाल -(1500-1800 तक)	4
	आधुनिक काल (1800 से अब तक)	5
	इंटरनेट युग में हिन्दी	6
	सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास	7
	भाषा-क्षेत्र एवं हिन्दी भाषा	8
	भाषा क्षेत्र	11
	व्यक्ति बोलियाँ	15
	बोली	16
2.	**हिंदी का मानकीकरण**	**32**
	मानक भाषा	32
	प्रथम सोपान- 'बोली'	33
	द्वितीय सोपान- 'भाषा'	33
	तृतीय सोपान- 'मानक भाषा'	33
	मानक भाषा का स्वरूप और प्रकृति	33

मानक भाषा के तत्त्व 37
महत्त्वपूर्ण कदम 42
संयुक्त वर्ण 43
विदेशी ध्वनियाँ 51
भारतीय हिन्दी परिषद 53
संयुक्त वर्णों का निर्माण 54
विभक्ति चिह्न 55
3. हिन्दी भाषा साहित्य 59
हिन्दी साहित्य का इतिहास 63
काल-विभाजन और नामकरण 69
आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ 73
हिंदी की विभिन्न बोलियाँ और उनका साहित्य 76
4. प्रयोजनमूलक हिन्दी 80
प्रयोजनमूलक हिंदी की परिभाषाएँ 80
प्रयोजनमूलक हिन्दी की विशेषताएं 81
प्रयोजनमूलक हिन्दी का सृजन 83
प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप 90
प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयोगात्मक क्षेत्र 92
प्रयोजनमूलक हिन्दी के अवरोध 94
प्रयोजनमूलक हिंदी– स्वरूप और संरचना 95
प्रशासनिक हिन्दी एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी 101
प्रयोजनमूलक हिन्दी एवं केन्द्रीय हिन्दी संस्थान 104
प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास के कारण 104
प्रयोजनमूलक हिंदी– वैज्ञानिक और तकनीकी भाषा-रूप 113
5. प्रशासनिक हिन्दी 115
राष्ट्रीय एकता एवं प्रशासनिक हिन्दी 116
6. हिन्दी का वैश्विक प्रसार 132
अमरीकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी 140
अमरीकी जनता में हिन्दी के प्रति जागरूकता 142
अमरीका के भारतीय और हिन्दी 143
लीपजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी 145

जर्मनी संघीय गणराज्य में हिन्दी 149
सूरीनाम और हिन्दी 151
देश और निवासी 152
भारतवंशी समाज 153
मॉरीशस में हिन्दी 153
नेपाल में हिन्दी 156
फिजी में हिन्दी 157
गुयाना में हिन्दी 159
त्रिनीडाड-टुबैगो में हिन्दी 159
दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी 160
बर्मा में हिन्दी 161
हालैंड में हिन्दी 161
इंग्लैण्ड में हिन्दी 161
कनाडा में हिन्दी 162
रूस में हिन्दी 162
चीन में हिन्दी 163

7. नागरी लिपि 165

देवनागरी लिपि 170
मध्यकाल में देवनागरी 176
उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में देवनागरी 178
लिपि का विकास 180
हिन्दी भाषा की लिपि के रूप में विकास 181
लिपि के कुछ प्रमुख लेख 187
नन्दिनागरी लिपि 193
राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देवनागरी लिपि 199

1

विषय बोध

हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिंदुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हालांकि, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, क्योंकि भारत के संविधान में कोई भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया था। चीनी के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा भी है। किन्तु एथनॉलोग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

2001 की भारतीय जनगणना में भारत में 42 करोड़ 20 लाख लोगों ने हिन्दी को अपनी मूल भाषा बताया। भारत के बाहर, हिंदी बोलने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में 8, 63, 077, मॉरीशस में 6, 85, 170, दक्षिण अफ्रीका में 8, 90,

292, यमन में 2, 32, 760, युगांडा में 1, 47, 000, सिंगापुर में 5, 000, नेपाल में 8 लाख, जर्मनी में 30, 000 हैं। न्यूजीलैंड में हिंदी चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है।

इसके अलावा भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14 करोड़ 10 लाख लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू, मौखिक रूप से हिन्दी के काफी समान है। एक विशाल संख्या में लोग हिंदी और उर्दू दोनों को ही समझते हैं। भारत में हिन्दी, विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है।

हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में आमतौर पर एक सरल रूप में समझी जाने वाली भाषा है। हिन्दी का कभी-कभी नौ भारतीय राज्यों के संदर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिंदी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिंदवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिंदुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिंदी के अन्य नाम हैं जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं।

'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी शब्द का सम्बंध संस्कृत शब्द सिंधु से माना जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह सिंधु शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू', हिंदी और फिर 'हिंद' हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिंद शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से (हिन्द़ईक) 'हिंदीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी शब्द 'इन्दिका' या अंग्रेजी शब्द 'इंडिया' आदि इस 'हिंदीक' के ही विकसित रूप हैं। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी' के 'जफरनामा'(1424) में मिलता है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने अपने 'हिंदी एवं उर्दू का अद्वैत' शीर्षक आलेख में हिंदी की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता

में 'स' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स' को 'ह' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। अफगानिस्तान के बाद सिंधु नदी के इस पार हिंदुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फारसी साहित्य में भी 'हिंद', 'हिंदुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहाँ की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को 'एडजेक्टिव' के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है जिसका मतलब है 'हिन्द का'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका', लैटिन में 'इन्दिया' तथा अंग्रेजी में 'इण्डिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में भारत (हिंद) में बोली जाने वाली भाषाओं के लिए 'जबान-ए-हिन्दी', पद का उपयोग हुआ है। भारत आने के बाद अरबी-फारसी बोलने वालों ने 'जबान-ए-हिंदी', 'हिंदी जबान' अथवा 'हिंदी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया। भारत के गैर-मुस्लिम लोग तो इस क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषा-रूप को 'भाखा' नाम से पुकारते थे, 'हिंदी' नाम से नहीं।

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही 'पद्य' रचना प्रारम्भ हो गयी थी। हिन्दी भाषा व साहित्य के जानकार अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 'अवहट्ट' से हिन्दी का उद्‌भव स्वीकार करते हैं। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने इसी अवहट्ट को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, श्रृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने 'देसी भाषा' कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य 'भारतीय भाषा' का था।

आदिकाल - (1000-1500)

अपने प्रारंभिक दौर में हिंदी सभी बातों में अपभ्रंश के बहुत निकट थी इसी अपभ्रंश से हिंदी का जन्म हुआ है। आदि अपभ्रंश में अ, आ, ई, उ, उ ऊ, ऐ, औ

केवल यही आठ स्वर थे। ई, औ, स्वर इसी अवधि में हिंदी में जुड़े। प्रारंभिक, 1000 से 1100 ईस्वीं के आस-पास तक हिंदी अपभ्रंश के समीप ही थी। इसका व्याकरण भी अपभ्रंश के सामान काम कर रहा था। धीरे-धीरे परिवर्तन होते हुए और 1500 ईस्वीं आते-आते हिंदी स्वतंत्र रूप से खड़ी हुई। 1460 के आस-पास देश भाषा में साहित्य सर्जन प्रारंभ हो चुका हो चुका था। इस अवधि में दोहा, चौपाई, छप्पय दोहा, गाथा आदि छंदों में रचनाएं हुई हैं। इस समय के प्रमुख रचनाकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नालह, चंदवरदाई, कबीर आदि हैं।

मध्यकाल -(1500-1800 तक)

इस अवधि में हिंदी में बहुत परिवर्तन हुए। देश पर मुगलों का शासन होने के कारण उनकी भाषा का प्रभाव हिंदी पर पड़ा। परिणाम यह हुआ की फारसी के लगभग 3500 शब्द, अरबी के 2500 शब्द, पश्तों से 50 शब्द, तुर्की के 125 शब्द हिंदी की शब्दावली में शामिल हो गए। यूरोप के साथ व्यापार आदि से संपर्क बढ़ रहा था। परिणामस्वरूप पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी और अंग्रेजी के शब्दों का समावेश हिंदी में हुआ। मुगलों के आधिपत्य का प्रभाव भाषा पर दिखाई पड़ने लगा था। मुगल दरबार में फारसी पढ़े-लिखे विद्वानों को नौकरियां मिली थीं परिणामस्वरूप पढ़े-लिखे लोग हिंदी की वाक्य रचना फारसी की तरह करने लगे। इस अवधि तक आते-आते अपभ्रंश का पूरा प्रभाव हिंदी से समाप्त हो गया जो आंशिक रूप में जहां कहीं शेष था वह भी हिंदी की प्रकृति के अनुसार ढलकर हिंदी का हिस्सा बन रहा था।

इस अवधि में हिंदी के स्वर्णिम साहित्य का सृजन हुआ। भक्ति आंदोलन ने देश की जनता की मनोभावना को प्रभावित किया। भक्ति कवियों में अनेक विद्वान थे जो तत्सम मुक्त भाषा का प्रयोग कर रहे थे। राम और कृष्ण जन्म स्थान की ब्रज भाषा में काव्य रचना की गई, जो इस काल के साहित्य की मुख्यधारा मानी जाती हैं। इसी अवधि में दखिनी हिंदी का रूप सामने आया। पिंगल, मैथिली और खड़ी बोली में भी रचनाएं लिखी जा रही थीं। इस काल के मुख्य कवियों में महाकवि तुलसीदास, संत सूरदास, संत मीराबाई, मलिक मोहम्मद जायसी, बिहारी, भूषण हैं। इसी कालखंड में रचा गया 'रामचरितमानस' जैसा ग्रन्थ विश्व में विख्यात हुआ।

हिंदी में क, ख, ग, ज, फ, ये पांच नई ध्वनियां, जिनके उच्चारण प्रायः फारसी पढ़े-लिखे लोग ही करते थे। इस काल के भक्त निर्गुण और सगुन उपासक थे। कवियों को रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखाओं में बांटा गया। इसी अवधि में रीतिकालीन काव्य भी लिखा गया।

आधुनिक काल (1800 से अब तक)

हिंदी का आधुनिक काल देश में हुए अनेक परिवर्तनों का साक्षी है। परतंत्र में रहते हुए देशवासी इसके विरुद्ध खड़े होने का प्रयास कर रहे थे। अंग्रेजी का प्रभाव देश की भाषा और संस्कृति पर दिखाई पड़ने लगा। अंग्रेजी शब्दों का प्रचलन हिंदी के साथ बढ़ने लगा। मुगलकालीन व्यवस्था समाप्त होने से अरबी, फारसी के शब्दों के प्रचलन में गिरावट आई। फारसी से स्वीकार क, ख, ग, ज, फ ध्वनियों का प्रचलन हिंदी में समाप्त हुआ। अपवादस्वरूप कहीं-कहीं ज और फ ध्वनि शेष बची। क, ख, ग ध्वनियां क, ख, ग में बदल गई। इस पूरे कालखंड को 1800 से 1850 तक और फिर 1850 से 1900 तक तथा 1900 का 1910 तक और 1950 से 2000 तक विभाजित किया जा सकता है।

संवत 1830 में जन्मे मुंशी सदासुख लाल नियाज ने हिंदी खड़ी बोली को प्रयोग में लिया। खड़ी बोली उस समय भी अस्तित्त्व में थी। खड़ी बोली या कौरवी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है। इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरुत, दिल्ली बिजनौर, रामपुर, मुरादाबाद है। इस बोली में पर्याप्त लोक गीत और लोक कथाएं मौजूद हैं। खड़ी बोली पर ही उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खनी हिंदी निर्भर करती है। मुंशी सदा सुखलाल नियाज के अलावा इंशा अल्लाह खान इसी अवधि के लेखक हैं। इनकी रानी केतकी की कहानी पुस्तक प्रसिद्ध है। लल्लूलाल, इस काल खंड के एक और प्रसिद्ध लेखक हैं। इनका जन्म संवत 1820 में हुआ था कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक जॉन गिलक्रिस्ट के अनुरोध पर लल्लूलाल जी ने पुस्तक 'प्रेम सागर' खड़ी बोली में लिखी थी।

प्रेम सागर के अलावा सिंहासन बत्तीसी, बेताल पचीसी, शकुंतला नाटक भी इनकी पुस्तकें हैं जो खड़ी बोली में, ब्रज और उर्दू के मिश्रित रूप में हैं। इसी कालखंड के एक और लेखक सदल मिश्र हैं। इनकी नचिकेतोपाख्यान पुस्तक प्रसिद्ध है। सदल मिश्र ने अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग न के बराबर किया है। खड़ी बोली में लिखी गई इस पुस्तक में संस्कृत के शब्द अधिक हैं। संवत 1860 से 1914 के बीच के समय में कालजयी कृतियां प्रायः नहीं मिलतीं। 1860 के आसपास तक हिंदी गद्य प्रायः अपना निश्चित स्वरूप ग्रहण कर चुका था।

इसका लाभ लेने के लिए अंग्रेजी पादरियों ने ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बाईबल का अनुवाद खड़ी बोली में किया यद्यपि इनका लक्ष्य अपने धर्म का

प्रचार-प्रसार करना था। तथापि इसका लाभ हिंदी को मिला देश की साधारण जनता अरबी-फारसी मिश्रित भाषा में अपने पौराणिक आख्यानों को कहती और सुनती थी। इन पादरियों ने भी भाषा के इसी मिश्रित रूप का प्रयोग किया। अब तक 1857 का पहला स्वतंत्रता युद्ध लड़ा जा चुका था। अत: अंग्रेजी शासकों की कूटनीति के सहारे हिंदी के माध्यम से बाइबिल के धर्म उपदेशों का प्रचार-प्रसार खूब हो रहा था। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी नवजागरण की नींव रखी। उन्होंने अपने नाटकों, कविताओं, कहावतों और किस्सागोई के माध्यम से हिंदी भाषा के उत्थान के लिए खूब काम किया। अपने पत्र 'कविवचनसुधा' के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया।

गद्य में सदल मिश्र, सदासुखलाल, लल्लू लाल आदि लेखकों ने हिंदी खड़ीबोली को स्थापित करने का काम किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कविता को ब्रज भाषा से मुक्त किया उसे जीवन के यथार्थ से जोड़ा।

सन 1866 की अवधि के लेखकों में पंडित बद्रीनारायण चौधरी, पंडित प्रताप नारायण मिश्र, बाबू तोता राम, ठाकुर जगमोहन सिंह, पंडित बाल कृष्ण भट्ट, पंडित केशवदास भट्ट, पंडित अम्बिकादत्त व्यास, पंडित राधारमण गोस्वामी आदि आते हैं। हिंदी भाषा और साहित्य को परमार्जित करने के उद्देश्य से इस कालखंड में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इनमें हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हिन्दी बंगभाषी, उचितवक्ता, भारत मित्र, सरस्वती, दिनकर प्रकाश आदि।

इंटरनेट युग में हिन्दी

हिंदी भाषा की जितनी मांग है, इंटरनेट पर उतनी उपलब्धता नहीं है। लेकिन जिस रफ्तार से भारत में इंटरनेट का विकास हुआ है उसी तरह से हिंदी भी इंटरनेट पर छा रही है। समाचारपत्र से लेकर हिंदी ब्लॉग तक अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। साधुवाद तो गूगल को भी जाता है जिसने हिंदी में खोज करने की जगह उपलब्ध कराई। इतना ही नहीं विकिपीडिया ने भी हिंदी की महत्ता को समझते हुए कई सारी सामग्री का सॉफ्टवेयर अनुवाद हिंदी में प्रदान करना शुरू कर दिया जिससे हिंदी भाषी को किसी भी विषय की जानकरी सुलभ हुई। आजकल हिंदी भी इंटरनेट की एक अहम् लोकप्रिय भाषा बन कर उभरी है। मेरा मानना है जब लोग अपने विचार और लेखन हिंदी भाषा में इंटरनेट पर ज्यादा करेंगे तो वह दिन दूर नहीं की सारी सामग्री हिंदी में भी इंटरनेट पर मिलने लगेगी। ये धरती मेरी माँ हैं।

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास के लिए लेखक एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है। व्यापार, तकनीकी और चिकित्सा आदि क्षेत्रों की अधिकांश बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने माल की बिक्री के लिए सम्बंधित सॉफ्टवेयर ग्रीक, अरबी, चीनी सहित संसार की लगभग 30 से अधिक भाषाओं में बनाती हैं मगर वे हिन्दी भाषा का पैक नहीं बनातीं। उनके प्रबंधक इसका कारण यह बताते हैं कि हम यह अनुभव करते हैं कि हमारी कम्पनी को हिन्दी के लिए भाषा पैक की जरूरत नहीं है। हमारे प्रतिनिधि भारतीय ग्राहकों से अंग्रेजी में आराम से बात कर लेते हैं अथवा हमारे भारतीय ग्राहक अंग्रेजी में ही बात करना पसंद करते हैं। यह स्थिति कुछ उसी प्रकार की है जैसी लेखक तब अनुभव करता था जब वह रोमानिया के बुकारेस्त विश्वविद्यालय में हिन्दी का विजिटिंग प्रोफेसर था। उसकी कक्षा के हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी बड़े चाव से भारतीय राजदूतावास जाते थे मगर वहाँ उनको हिन्दी नहीं अपितु अंग्रेजी सुनने को मिलती थी। हमने अंग्रेजी को इतना ओढ़ लिया है जिसके कारण न केवल हिन्दी का अपितु समस्त भारतीय भाषाओं का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है। जो कम्पनी ग्रीक एवं अरबी में सॉफ्टवेयर बना रही हैं वे हिन्दी में सॉफ्टवेयर केवल इस कारण नहीं बनाती क्योंकि उसके प्रबंधकों को पता है कि भारतीय उच्च वर्ग अंग्रेजी मोह से ग्रसित है। इसके कारण भारतीय भाषाओं में जो सॉफ्टवेयर स्वाभाविक ढंग से सहज बन जाते, वे नहीं बन रहे हैं। भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रौद्योगिकी पिछड़ रही है। इस मानसिकता में जिस गति से बदलाव आएगा उसी गति से हमारी भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रौद्योगिकी का भी विकास होगा। हम हिन्दी के संदर्भ में, इस बात को दोहराना चाहते हैं कि हिन्दी में काम करने वालों को अधिक से अधिक सामग्री इन्टरनेट पर डालनी चाहिए। लेखक ने मशीनी अनुवाद के संदर्भ में, यह निवेदित किया था कि मशीनी अनुवाद को सक्षम बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन्टरनेट पर हिन्दी में प्रत्येक विषय की सामग्री उपलब्ध हो। यह हिन्दी की भाषिक प्रौद्योगिकी के विकास के व्यापक संदर्भ में भी उतनी ही सत्य है। जब प्रयोक्ता को हिन्दी में डॉटा उपलब्ध होगा तो उसकी अंग्रेजी के प्रति निर्भरता में कमी आएगी तथा अंग्रेजी के प्रति हमारे उच्च वर्ग की अंध भक्ति में भी कमी आएगी।

वर्तमान की स्थिति भले ही उत्साहवर्धक न हो किन्तु हिन्दी प्रौद्योगिकी का भविष्य निराशाजनक नहीं है। हिन्दी की प्रगति एवं विकास को अब कोई ताकत रोक नहीं पाएगी। वर्तमान में, कम्प्यूटरों के कीबोर्ड रोमन वर्णों में हैं तथा उनका विकास अंग्रजी भाषा को ध्यान में रखकर किया गया है। आम आदमी को इसी कारण कम्प्यूटर पर अंग्रेजी अथवा रोमन लिपि में काम करने में सुविधा का अनुभव होता है। निकट भविष्य में कम्प्यूटर संसार की लगभग तीस चालीस भाषाओं के लिखित पाठ को भाषा में बोलकर सुना देगा तथा उन भाषाओं के प्रयोक्ता की भाषा को सुनकर उसे लिखित पाठ में बदल देगा। ऐसी स्थिति में, कम्प्यूटर पर काम करने में भाषा की कोई बाधा नहीं रह जाएगी। एक भाषा के पाठ को मशीनी अनुवाद से दूसरी भाषा में भी बदला जा सकेगा, उन भाषाओं में परस्पर वाक से पाठ तथा पाठ से वाक में अंतरण बहुत सहज हो जाएगा। भाषा विशेष के ज्ञान का रुतबा समाप्त हो जाएगा।

इस दिशा में प्रक्रिया को तेज बनाने के लिए यह उचित होगा कि भारतीय सॉफ्टवेयरों का निर्माण करने वाले उपक्रम तथा संगठन गूगल जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ मिलकर काम करें। भारतीय जनमानस में जागरूकता की रफ्तार को बढ़ाने की भी जरूरत हैं। कितने आम भारतीय हैं जिन्हें सी-डेक जैसे संगठनों तथा उनके द्वारा निर्मित सॉफ्टवेयरों का ज्ञान है। कितने हिन्दी प्रेमी हैं जो हिन्दी प्रौद्योगिकी के सॉफ्टवेयरों से अनजान हैं। उनको यह ज्ञान भी नहीं है कि यूनिकोड में हिन्दी में काम करना कितना आसान और सुगम है।

भाषा-क्षेत्र एवं हिन्दी भाषा

प्रत्येक भाषा के अनेक भेद होते हैं। किसी भी भाषा-क्षेत्र में एक ओर भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के आधार पर अनेक भेद होते हैं (यथा - बोली और भाषा) तो दूसरी ओर सामाजिक भिन्नताओं के आधार पर भाषा की वर्गगत बोलियाँ होती हैं। भाषा-व्यवहार अथवा भाषा-प्रकार्य की दृष्टि से भी भाषा के अनेक भेद होते हैं। (यथा- मानक भाषा, उपमानक भाषा अथवा शिष्टेतर भाषा, अपभाषा, विशिष्ट वाग्व्यवहार की शैलियाँ, साहित्यिक भाषा आदि)। विशिष्ट प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्रयोजनमूलक भाषा के अनेक रूप होते हैं जिनकी चर्चा लेखक ने प्रकार्यात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में की है।

जब भिन्न भाषाओं के बोलने वाले एक ही क्षेत्र में निवास करने लगते हैं तो भाषाओं के संसर्ग से विशिष्ट भाषा प्रकार विकसित हो जाते हैं। (यथा

–पिजिन, क्रिओल)। भाषा के असामान्य रूपों के उदाहरण गुप्त भाषा एवं कृत्रिम भाषा आदि हैं।

इस आलेख का उद्देश्य भाषा–क्षेत्र की अवधारणा को स्पष्ट करना तथा हिन्दी भाषा–क्षेत्र के विविध क्षेत्रीय भाषिक–रूपों के सम्बंध में विवेचना करना है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इस सम्बंध में न केवल सामान्य व्यक्ति के मन में अनेक भ्रामक धारणाएँ बनी हुई हैं प्रत्युत हिन्दी भाषा के कतिपय अध्येताओं, विद्वानों तथा प्रतिष्ठित आलोचकों का मन भी तत्सम्बंधित भ्रांतियों से मुक्त नहीं है। हिन्दी कभी अपने भाषा–क्षेत्र की सीमाओं में नहीं सिमटी। यह हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और द्वारका से लेकर कटक तक भारतीय लोक चेतना की संवाहिका रही। सम्पर्क भाषा हिन्दी की एक अन्य विशिष्टता यह रही कि यह किसी बँधे बँधाए मानक रूप की सीमाओं में नहीं जकड़ी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल बोलचाल की भाषा में ही यह प्रवृत्ति नहीं है, साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

हिन्दी साहित्य की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है, हिन्दी साहित्य के इतिहास की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है और हिन्दी साहित्य के अध्ययन और अध्यापन की भी समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है। हिन्दी की इस समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को जानना बहुत जरूरी है तथा इसे आत्मसात करना भी बहुत जरूरी है तभी हिन्दी क्षेत्र की अवधारणा को जाना जा सकता है और जो ताकतें हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का कुचक्र रच रही हैं तथा हिन्दी की ताकत को समाप्त करने के षड्यंत्र कर रही हैं उन ताकतों के षड्यंत्रों को बेनकाब किया जा सकता है तथा उनके कुचक्रों को ध्वस्त किया जा सकता है।

वर्तमान में हम हिन्दी भाषा के इतिहास के बहुत महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़े हुए हैं। आज बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। आज हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के जो प्रयत्न हो रहे हैं सबसे पहले उन्हे जानना और पहचानना जरूरी है और इसके बाद उनका प्रतिकार करने की जरूरत है। यदि आज हम इससे चूक गए तो इसके भयंकर परिणाम होंगे। मुझे सन् 1993 के एक प्रसंग का स्मरण आ रहा है। मध्य प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री को मध्य प्रदेश में 'मालवी भाषा शोध संस्थान' खोलने तथा उसके लिए अनुदान का प्रस्ताव भेजा था। उस समय भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री श्री अर्जुन सिंह थे जिनके प्रस्तावक से निकट के सम्बंध थे।

मंत्रालय ने उक्त प्रस्ताव केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निदेशक होने के नाते लेखक के पास टिप्पण देने के लिए भेजा। लेखक ने सोच समझकर टिप्पण लिखा– "भारत सरकार को पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है"। मुझे पता चला कि उक्त टिप्पण के बाद प्रस्ताव को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।

एक ओर हिन्दीतर राज्यों के विश्वविद्यालयों और विदेशों के लगभग 176 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हजारों की संख्या में शिक्षार्थी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य में समर्पण-भावना तथा पूरी निष्ठा से प्रवृत्त तथा संलग्न हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-क्षेत्र में ही अनेक लोग हिन्दी के विरुद्ध साजिश रच रहे हैं। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिन्दी के तथाकथित विद्वान भी हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को जिंदगी भर पढ़ाने वाले, हिन्दी की रोजी, खाने वाले रोटी हिन्दी की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे हिन्दी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि हिन्दी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है। भाषा विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान (Linguistic Geography and Dialectology) के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य जारी कर रहे हैं जैसे वे इन विषयों के विशेषज्ञ हों। क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को नष्ट करने पर आमादा हैं।

जब लेखक जबलपुर के विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विभाग का प्रोफेसर था, उसके पास विभिन्न विश्वविद्यालयों से हिन्दी की उपभाषाओं/बोलियों पर पी-एच. डी. एवं डी. लिट्. उपाधियों के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध जाँचने के लिए आते थे। लेखक ने ऐसे अनेक शोध प्रबंध देखें जिनमें एक ही पृष्ठ पर एक पैरा में विवेच्य बोली को उपबोली का दर्जा दिया गया, दूसरे पैरा में उसको हिन्दी की बोली निरुपित किया गया तथा तीसरे पैरा में उसे भारत की प्रमुख भाषा के अभिधान से महिमामंडित कर दिया गया।

इससे यह स्पष्ट है कि शोध छात्रों अथवा शोध छात्राओं को तो जाने ही दीजिए उन शोध छात्रों अथवा शोध छात्राओं के निर्देशक महोदय भी भाषा-भूगोल

एवं बोली विज्ञान (Linguistic Geography and Dialectology) के सिद्धांतों से अनभिज्ञ थे।

सन् 2009 में, लेखक ने नामवर सिंह का यह वक्तव्य पढ़ा:

"हिंदी समूचे देश की भाषा नहीं है वरन वह तो अब एक प्रदेश की भाषा भी नहीं है। उत्तरप्रदेश, बिहार जैसे राज्यों की भाषा भी हिंदी नहीं है। वहाँ की क्षेत्रीय भाषाएँ यथा अवधी, भोजपुरी, मैथिल आदि हैं"। इसको पढ़कर मैंने नामवर सिंह के इस वक्तव्य पर असहमति के तीव्र स्वर दर्ज कराने तथा हिन्दी के विद्वानों को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लेख लिखा। हिन्दी के प्रेमियों से लेखक का यह अनुरोध है कि इस लेख का अध्ययन करने की अनुकंपा करें जिससे हिन्दी के कथित बड़े विद्वान एवं आलोचक डॉ. नामवर सिंह जैसे लोगों के हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ डालने के मंसूबे ध्वस्त हो सकें तथा ऐसी ताकतें बेनकाब हो सकें। जो व्यक्ति मेरे इस कथन को विस्तार से समझना चाहते हैं, वे मेरे 'क्या उत्तर प्रदेश एवं बिहार हिन्दी भाषी राज्य नहीं हैं' शीर्षक लेख का अध्ययन कर सकते हैं।

भाषा क्षेत्र

एक भाषा का जन-समुदाय अपनी भाषा के विविध भेदों एवं रूपों के माध्यम से एक भाषिक इकाई का निर्माण करता है। विविध भाषिक भेदों के मध्य सम्भाषण की सम्भाव्यता से भाषिक एकता का निर्माण होता है। एक भाषा के समस्त भाषिक-रूप जिस क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं उसे उस भाषा का 'भाषा-क्षेत्र' कहते हैं। प्रत्येक 'भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भाषा की भिन्नताओं का आधार प्राय: वर्णगत एवं धर्मगत नहीं होता। एक वर्ण या एक धर्म के व्यक्ति यदि भिन्न भाषा क्षेत्रों में निवास करते हैं तो वे भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं। हिन्दू मुसलमान आदि सभी धर्मावलम्बी तमिलनाडु में तमिल बोलते हैं तथा केरल में मलयालम। इसके विपरीत यदि दो भिन्न वर्णों या दो धर्मों के व्यक्ति एक भाषा क्षेत्र में रहते हैं तो उनके एक ही भाषा को बोलने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभा वर्णों के व्यक्ति हिन्दी का प्रयोग करते हैं। यह बात अवश्य है कि विशिष्ट स्थितियों में वर्ण या धर्म के आधार पर भाषा में बोलीगत अथवा शैलगत प्रभेद हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसी भी स्थितियाँ

विकसित हो जाती हैं जिनके कारण एक भाषा के दो रूपों को दो भिन्न भाषाएँ समझा जाने लगता है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम यह किस प्रकार निर्धारित करें कि उच्चारण के कोई दो रूप एक ही भाषा के भिन्न रूप हैं अथवा अलग-अलग भाषाएँ हैं ? इसका एक प्रमुख कारण यह है कि भाषिक भिन्नताएँ सापेक्षिक होती हैं तथा दो भिन्न भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई सीधी एवं सरल विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। यही कारण है कि भाषिक-भूगोल पर कार्य करते समय बहुधा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत का भाषा-सर्वेक्षण करते समय इसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव ग्रियर्सन को हुआ था। उन्होंने लिखा है कि '' सर्वेक्षण का कार्य करते समय यह निश्चित करने में कठिनाई पड़ी कि वास्तव में एक कथित भाषा स्वतंत्र भाषा है, अथवा अन्य किसी भाषा की बोली है। इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निर्णय देना जिसे सब लोग स्वीकार कर लेंगे, कठिन है। भाषा और बोली में प्रायः वही सम्बन्ध है जो पहाड़ तथा पहाड़ी में है। यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि एवरेस्ट पहाड़ है और हालबर्न एक पहाड़ी, किन्तु इन दोनों के बीच की विभाजक रेखा को निश्चित रूप से बताना कठिन है।- सच तो यह है कि दो बोलियों अथवा भाषाओं में भेदीकरण केवल पारस्परिक वार्ता सम्बन्ध पर ही निर्भर नहीं करता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है।

व्यावहारिक दृष्टि से जिस क्षेत्र में भाषा के विभिन्न भेदों में पारस्परिक बोधगम्यता होती है, वह क्षेत्र उस भाषा के विभिन्न भेदों का 'भाषा-क्षेत्र' कहलाता है। भिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति परस्पर विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर पाते। इस प्रकार जब एक व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से दूसरे भाषा-भाषी को भाषा के स्तर पर अपने विचारों, भावनाओं, कल्पनाओं, संवेदनाओं का बोध नहीं करा पाता, तब ऐसी स्थिति में उन दो व्यक्तियों के भाषा रूपों को अलग-अलग भाषाओं के नाम से अभिहित किया जाता है। इस बात को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि जब कोई ऐसा तमिल-भाषी व्यक्ति जो पहले से हिन्दी नहीं जानता, हिन्दी-भाषी व्यक्ति से बात करता है, तो वह हिन्दी-भाषा व्यक्ति द्वारा कही गई बात को भाषा के माध्यम से नहीं समझ पाता, भले ही वह कही गई बात का आशय संकेतों, मुख मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं के माध्यम से समझ जाए। इसके विपरीत यदि कन्नौजी बोलने वाला व्यक्ति अवधी बोलने

वाले से बातें करता है, तो दोनों को विचारों के आदान-प्रदान करने में कठिनाइयाँ तो होती हैं, किन्तु फिर भी वे किसी न किसी मात्रा में विचारों का आदान-प्रदान कर लेते हैं। भाषा रूपों की भिन्नता अथवा एकता का यह व्यावहारिक आधार है। भिन्न भाषा रूपों को एक ही भाषा के रूप में अथवा अलग-अलग भाषाओं के रूप में मान्यता दिलाने में ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं उन भाषिक रूपों की संरचना एवं व्यवस्था आदि कारण एवं तथ्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, तथा कभी-कभी 'पारस्परिक बोधगम्यता' अथवा 'एक तरफा बोधगम्यता' के व्यावहारिक सिद्धांत की अपेक्षा अधिक निर्णायक हो जाते हैं। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐतिहासिक कारणों से वैनिशन (Venetian) तथा सिसिली (Sicily) को इटाली भाषा की बोलियाँ माना जाता है, यद्यपि इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। इसी प्रकार लैपिश (Lappish) को एक ही भाषा माना जाता है। इसके अन्तर्गत परस्पर अबोधगम्य भाषिक रूप समाहित हैं।

इसके विपरीत राजनैतिक कारणों से डेनिश, नार्वेजियन एवं स्वेडिश को अलग-अलग भाषाएँ माना जाता है। इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत वैनिशन (Venetian) तथा सिसिली (Sicily) के पारस्परिक बोधगम्यता के प्रतिशत से कम नहीं है। भारतवर्ष के संदर्भ में हिन्दी भाषा के पश्चिमी वर्ग की उप-भाषाओं तथा बिहारी वर्ग की उप-भाषाओं के मध्य बोधगम्यता का प्रतिशत कम है। 'बिहारी वर्ग' की उप-भाषाओं पर कार्य करने वाले भाषा-वैज्ञानिकों ने उनमें संरचनात्मक भिन्नताएँ भी पर्याप्त मानी हैं। इतना होने पर भी सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक कारणों से भोजपुरी एवं मगही बोलने वाले अपने को हिन्दी भाषा-भाषी मानते हैं। ये भाषिक रूप हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाहित हैं। इसके विपरीत यद्यपि असमिया एवं बांग्ला में पारस्परिक बोधगम्यता एवं संरचनात्मक साम्यता का प्रतिशत कम नहीं है तथापि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से इनके बोलने वाले इन भाषा रूपों को भिन्न भाषाएँ मानते हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों का मत है कि भाषा-क्षेत्र उस क्षेत्र के प्रयोक्ताओं की मानसिक अवधारणा है। भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों के प्रयोक्ता अपने-अपने भाषिक-रूप की पहचान उस भाषा के रूप में करते हैं। विशेष रूप से जब वे किसी भिन्न भाषा-भाषी-क्षेत्र में रहते हैं तो वे अपनी अस्मिता की पहचान उस भाषा के प्रयोक्ता के रूप में करते हैं।

यदि दो भाषा-क्षेत्रों के मध्य कोई पर्वत या सागर जैसी बड़ी प्राकृतिक सीमा नहीं होती अथवा उन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के अलग-अलग क्षेत्रों में उनके सामाजिक सम्पर्क को बाधित करने वाली राजनैतिक सीमा नहीं होती तो उन भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई निश्चित एवं सरल रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रत्येक दो भाषाओं के मध्य प्रायः ऐसा 'क्षेत्र' होता है जिसमें निवास करने वाले व्यक्ति उन दोनों भाषाओं को किसी न किसी रूप में समझ लेते हैं। ऐसे क्षेत्र को उन भाषाओं का 'संक्रमण-क्षेत्र' कहते हैं।

जिस प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी के बीच किसी एक वर्ष की 'काल रेखा' निर्धारित नहीं की जा सकती, फिर भी एक युग 'अपभ्रंश-युग' कहलाता है और दूसरा हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि 'नव्यतर भारतीय आर्य भाषाओं का युग' कहलाता है उसी प्रकार यद्यपि हिन्दी और मराठी के बीच (अथवा अन्य किन्हीं दो भाषाओं के बीच) हम किलोमीटर या मील की कोई रेखा नहीं खींच सकते फिर भी एक क्षेत्र हिन्दी का कहलाता है और दूसरा मराठी का। ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश और हिन्दी के बीच एव 'सन्धि-युग' है जो इन दो भाषाओं के काल-निर्धारण का काम करता है। संकालिक दृष्टि से दो भाषाओं के बीच 'संक्रमण-क्षेत्र' होता है जो उन भाषाओं के क्षेत्र को निर्धारित करता है।

प्रत्येक भाषा-क्षेत्र में भाषिक भेद होते हैं। हम किसी ऐसे भाषा क्षेत्र की कल्पना नहीं कर सकते जिसके समस्त भाषा-भाषी भाषा के एक ही रूप के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते हों। यदि हम वर्तमानकाल में किसी ऐसे भाषा-क्षेत्र का निर्माण कर भी लें जिसकी भाषा में एक ही बोली हो तब भी कालान्तर में उस क्षेत्र में विभिन्नताएँ विकसित हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि किसी भाषा का विकास सम्पूर्ण क्षेत्र में समरूप नहीं होता। परिवर्तन की गति क्षेत्र के अलग-अलग भागों में भिन्न होती है। विश्व के भाषा-इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण प्राप्त नहीं है जिसमें कोई भाषा अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में समान रूप से परिवर्तित हुई हो।

भाषा और बोली के युग्म पर विचार करना सामान्य धारणा है। सामान्य व्यक्ति भाषा को विकसित और बोली को अविकसित मानता है। सामान्य व्यक्ति भाषा को शिक्षित, शिष्ट, विद्वान एवं सुजान प्रयोक्ताओं से जोड़ता है और बोली को अशिक्षित, अशिष्ट, मूर्ख एवं गँवार प्रयोक्ताओं से जोड़ता है। भाषाविज्ञान इस धारणा को अतार्किक और अवैज्ञानिक मानता है। भाषाविज्ञान भाषा को निम्न रूप

से परिभाषित करता है – 'भाषा अपने भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली समस्त बोलियों की समष्टि का नाम है'।

हम आगे भाषा-क्षेत्र के समस्त सम्भावित भेद-प्रभेदों की विवेचना करेंगे।

व्यक्ति बोलियाँ

एक भाषा क्षेत्र में 'एकत्व' की दृष्टि से एक ही भाषा होती है, किन्तु 'भिन्नत्व' की दृष्टि से उस भाषा क्षेत्र में जितने बोलने वाले निवास करते हैं उसमें उतनी ही भिन्न व्यक्ति-बोलियाँ होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति भाषा के द्वारा समाज के व्यक्तियों से सम्प्रेषण-व्यवहार करता है। भाषा द्वारा अपने निजी व्यक्ति्व का विकास एवं विचार की अभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक व्यक्ति के निजी व्यक्तित्त्व का प्रभाव उसके अभिव्यक्तिकरण व्यवहार पर भी पड़ता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों, विचारों, आचरण पद्धतियों, जीवन व्यवहारों एवं कार्यकलापों की निजी विशेषताएँ होती हैं। समाज के सदस्यों के व्यक्तित्त्व की भेदक भिन्नताओं का प्रभाव उनके व्यक्ति-भाषा-रूपों पर पड़ता है और इस कारण प्रत्येक व्यक्ति बोली (idiolect) में निजी भिन्नताएँ अवश्य होती हैं। व्यक्ति बोली के धरातल पर एक व्यक्ति जिस प्रकार बोलता है, ठीक उसी प्रकार दूसरा कोई व्यक्ति नहीं बोलता। यही कारण है कि हम किसी व्यक्ति को भले ही न देखें मगर मात्र उसकी आवाज को सुनकर उसको पहचान लेते हैं।

यदि भिन्नताओं को और सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह बात कही जा सकती है कि स्वनिक स्तर पर कोई भी व्यक्ति एक ध्वनि को उसी प्रकार दोबारा उच्चारित नहीं कर सकता। यदि एक व्यक्ति 'प', ध्वनि का सौ बार उच्चारण करता है तो वे 'प' ध्वनि के सौ स्वन होते हैं। इन स्वनों की भिन्नताओं को हमारे कान नहीं पहचान पाते। जब भौतिक ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनि-यन्त्रों की सहायता से इसका अध्ययन किया जाता है तो ध्वनि यन्त्र इनके सूक्ष्म अन्तरों को पकड़ पाने की क्षमता रखते हैं। 'स्वनिक स्तर' पर प्रत्येक ध्वनि का प्रत्येक उच्चारण एक अलग स्वन होता है।

जिस प्रकार दार्शनिक धरातल पर बौद्ध दर्शन के अनुसार इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में प्रतिक्षण परिवर्तन होता है उसी प्रकार भाषा के प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक ध्वनि का प्रत्येक उच्चार यत्किंचित भिन्नताएँ लिए होता है तथा जिस प्रकार अद्वैतवादी के अनुसार इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही परमात्म-तत्त्व की

सत्ता है उसी प्रकार एक भाषा क्षेत्र में व्यवहृत होने वाले समस्त भाषिक रूपों को एक ही भाषा के नाम से पुकारा जाता है।

यदि उच्चारण की स्वनिक भिन्नताओं को छोड़ दें तो एक भाषा-क्षेत्र में उस भाषा-जन-समुदाय के जितने सदस्य होते हैं उतनी ही उसमें व्यक्ति-बोलियाँ होती हैं। उन समस्त व्यक्ति-बोलियों के समूह का नाम भाषा है।

बोली

भाषा-क्षेत्र की समस्त व्यक्ति-बोलियों एवं उस क्षेत्र की भाषा के मध्य प्रायः बोली का स्तर होता है। भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताओं को क्रमशः क्षेत्रगत एवं वर्गगत बोलियों के नाम से पुकारा जाता है। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि भाषा की संरचक बोलियाँ होती हैं, तथा बोली की संरचक व्यक्ति बोलियाँ।

इस प्रकार तत्त्वतः बोलियों की समष्टि का नाम भाषा है। 'भाषा क्षेत्र' की क्षेत्रगत भिन्नताओं एवं वर्गगत भिन्नताओं पर आधारित भाषा के भिन्न रूप उसकी बोलियाँ हैं। बोलियाँ से ही भाषा का अस्तित्त्व है। इस प्रसंग में, यह सवाल उठाया जा सकता है कि सामान्य व्यक्ति अपने भाषा-क्षेत्र में प्रयुक्त बोलियों से इतर जिस भाषिक रूप को सामान्यतः 'भाषा' समझता है वह फिर क्या है। वह असल में उस भाषा क्षेत्र की किसी क्षेत्रीय बोली के आधार पर विकसित 'उस भाषा का मानक भाषा रूप' होता है।

इस दृष्टि के कारण ऐसे व्यक्ति 'मानक भाषा' या 'परिनिष्ठित भाषा' को मात्र 'भाषा' नाम से पुकारते हैं तथा अपने इस दृष्टिकोण के कारण 'बोली' को भाषा का भ्रष्ट रूप, अपभ्रंश रूप तथा 'गँवारू भाषा' जैसे नामों से पुकारते हैं। वस्तुतः बोलियाँ अनौपचारिक एवं सहज अवस्था में अलग-अलग क्षेत्रों में उच्चारित होने वाले रूप हैं जिन्हें संस्कृत में 'देश भाषा' तथा अपभ्रंश में 'देसी भाषा' कहा गया है। भाषा का 'मानक' रूप समस्त बोलियों के मध्य सम्पर्क सूत्र का काम करता है। भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ उसे बोलियों के स्तरों में विभाजित कर देती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बोलियों के स्तर पर विभाजित भाषा के रूप निश्चित क्षेत्र अथवा वर्ग में व्यवहृत होते हैं जबकि प्रकार्यात्मक धरातल पर विकसित भाषा के मानक रूप, उपमानक रूप, विशिष्ट रूप (अपभाषा, गुप्त भाषा आदि) पूरे भाषा क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं, भले ही इनके बोलने वालों की संख्या न्यूनाधिक हो।

प्रत्येक उच्चारित एवं व्यवहृत भाषा की बोलियाँ होती हैं। किसी भाषा में बोलियों की संख्या दो या तीन होती है तो किसी में बीस-तीस भी होती है। कुछ भाषाओं में बोलियों का अन्तर केवल कुछ विशिष्ट ध्वनियों के उच्चारण की भिन्नताओं तथा बोलने के लहजे मात्र का होता है जबकि कुछ भाषाओं में बोलियों की भिन्नताएँ भाषा के समस्त स्तरों पर प्राप्त हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, बोलियों में ध्वन्यात्मक, ध्वनिग्रामिक, रूपग्रामिक, वाक्यविन्यासीय, शब्दकोषीय एवं अर्थ सभी स्तरों पर अन्तर हो सकते हैं। कहीं-कहीं ये भिन्नताएँ इतनी अधिक होती हैं कि एक सामान्य व्यक्ति यह बता देता है कि अमुक भाषिक रूप का बोलने वाला व्यक्ति अमुक बोली क्षेत्र का है।

किसी-किसी भाषा में क्षेत्रगत भिन्नताएँ इतनी व्यापक होती हैं तथा उन भिन्न भाषिक-रूपों के क्षेत्र इतने विस्तृत होते हैं कि उन्हें सामान्यत: भाषाएँ माना जा सकता है। इसका उदाहरण चीन देश की मंदारिन भाषा है, जिसकी बोलियों के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हैं तथा उनमें से बहुत-सी परस्पर अबोधगम्य भी हैं। जब तक यूगोस्लाविया एक देश था तब तक क्रोएशियाई और सर्बियाई को एक भाषा की दो बोलियाँ माना जाता था। यूगोस्लाव के विघटन के बाद से इन्हें भिन्न भाषाएँ माना जाने लगा है। ये उदाहरण इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि पारस्परिक बोधगम्यता के सिद्धांत की अपेक्षा कभी-कभी सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारण अधिक निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में भी 'राजस्थानी' एवं 'भोजपुरी' के क्षेत्र एवं उनके बोलने वालों की संख्या संसार की बहुत सी भाषाओं के क्षेत्र एवं बोलने वालों की संख्या से अधिक है। `हिन्दी भाषा-क्षेत्र' में, सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय के प्रतिमान के रूप में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी सामाजिक जीवन में परस्पर आश्रित सहसम्बन्धों की स्थापना करती है। सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी के उच्च प्रकार्यात्मक सामाजिक मूल्य के कारण ये भाषिक रूप 'हिन्दी भाषा' के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस सम्बंध में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के सम्भावित स्तर -

अभी तक हमने किसी भाषा-क्षेत्र में तीन भाषिक स्तरों की विवेचना की है।-

(1) व्यक्ति-बोली

(2) बोली

(3) भाषा

व्यक्ति-बोलियों के समूह को 'बोली' तथा बोलियों के समूह को 'भाषा' कहा गया है। जिस प्रकार किसी भाषा के व्याकरण में शब्द एवं वाक्य के बीच अनेक व्याकरणिक स्तर हो सकते हैं उसी प्रकार भाषा एवं बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच अनेक भाषा स्तर हो सकते हैं। इन अनेक स्तरों के निम्न में से कोई एक अथवा अनेक आधार हो सकते हैं –

1. भाषा क्षेत्र का विस्तार एवं फैलाव
2. उस भाषा क्षेत्र के विविध उपक्षेत्रों की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक स्थितियाँ
3. भाषा-क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक और भावात्मक सम्बन्ध

उपभाषा

यदि किसी भाषा में बोलियों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा उस भाषा का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो पारस्परिक बोधगम्यता अथवा अन्य भाषेतर कारणों से बोलियों के वर्ग बन जाते हैं। इनको 'उप भाषा' के स्तर के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

उपबोली

यदि एक बोली का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो उसमें क्षेत्रगत अथवा वर्गगत भिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनको बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच 'उपबोली' का स्तर माना जाता है। उपबोली को कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने पेटवा, जनपदीय बोली अथवा स्थान-विशेष की बोली के नाम से पुकारना अधिक संगत माना है। इसको इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि किसी भाषा क्षेत्र में भाषा की संरचक उपभाषाएँ, उपभाषा के संरचक बोलियाँ, बोली के संरचक उपबोलियाँ तथा उपबोली के संरचक व्यक्ति बोलियाँ हो सकती हैं। व्यक्ति-बोली से लेकर भाषा तक अनेक वर्गीकृत स्तरों का अधिक्रम हो सकता है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र के क्षेत्रीय भाषिक-रूप

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, ब्रज, कन्नौजी, खड़ी बोली को बोलियाँ मानें या उपभाषाएँ ?

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि इनके क्षेत्र तथा इनके बोलने वालों की संख्या काफी विशाल है तथा इनमें बहुत अधिक भिन्नताएँ हैं जिनके कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। उदाहरण के रूप में यदि बुन्देली को उपभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है तो पंवारी, लोधान्ती, खटोला, भदावरी, सहेरिया तथा 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' आदि रूपों को बुन्देली उपभाषा की बोलियाँ माना जा सकता है। इन बोलियों में एक या एक से अधिक बोलियों की अपनी उपबोलियाँ हैं। उदाहरण के रूप में बुन्देली उपभाषा की 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' बोली की पोवारी, गाओंली, राघोबंसी, किरारी आदि उपबोलियाँ है। इस प्रकार बुन्देली के संदर्भ में व्यक्तिगत बोली, उपबोली, बोली, एवं उपभाषा रूप प्राप्त हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार बुन्देली में बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ मिलती हैं उसी प्रकार कन्नौजी की बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ अथवा हरियाणवी की बोलियाँ एवं उपबोलियाँ प्राप्त नहीं होतीं। किन्तु हरियाणवी एवं कन्नौजी को भी वही दर्जा देना पड़ेगा जो हम बुन्देली को देंगे। यदि हम बुन्देली को हिन्दी की एक उपभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं तो कन्नौजी एवं हरियाणवी भी हिन्दी की उपभाषाएँ हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के क्षेत्रगत रूपों के स्तर वर्गीकरण में कहीं उपभाषा एवं बोली के अलग-अलग स्तर हैं तथा कहीं उपभाषा एवं बोली का एक ही स्तर है। यह बहुत कुछ इसी प्रकार है जिस प्रकार मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों में वाक्य एवं उपवाक्य के स्तर अलग-अलग होते हैं, किन्तु सरल वाक्य में एक ही उपवाक्य होता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि क्या उपभाषा एवं भाषा के बीच भी कोई स्तर स्थापित किया जाना चाहिए अथवा नहीं। इसका कारण यह है कि जिन भाषा रूपों को हमने उपभाषाएँ कहा है उन उपभाषाओं को ग्रियर्सन ने भाषा-सर्वेक्षण में ऐतिहासिक सम्बंधों के आधार पर 05 वर्गों में बाँटा है तथा प्रत्येक वर्ग में एकाधिक उपभाषाओं को समाहित किया है। ये पाँच वर्ग निम्नलिखित हैं-

(1) पश्चिमी हिन्दी
(2) पूर्वी हिन्दी
(3) राजस्थानी
(4) बिहारी
(5) पहाड़ी

इस सम्बंध में लेखक का मत है कि संकालिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं है। जो विद्वान ग्रियर्सन के ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से इन वर्गों को कोई नाम देना ही चाहते हैं तो वे हिन्दी के सन्दर्भ में उपभाषा एवं भाषा के बीच उपभाषा की समूह गत इकाइयों को अन्य किसी नाम के अभाव में 'उपभाषावर्ग' के नाम से पुकार सकते हैं।

इस प्रकार जिस भाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है वहाँ भाषा के केवल 3 क्षेत्रगत स्तर होते हैं-

1. व्यक्ति बोली
2. बोली
3. भाषा

हिन्दी जैसे विस्तृत भाषा-क्षेत्र में निम्नलिखित क्षेत्रगत स्तर हो सकते हैं-

व्यक्ति बोली
उपबोली
बोली
उपभाषा
उपभाषावर्ग
भाषा

जो विद्वान हिन्दी भाषा की कुछ उपभाषाओं को हिन्दी भाषा से भिन्न भाषाएँ मानने के मत एवं विचार प्रस्तुत कर रहे हैं उनके निराकरण के लिए तथा जिज्ञासु पाठकों के अवलोकनार्थ एवं विचारार्थ निम्न टिप्पण प्रस्तुत हैं –

'हिन्दी भाषा क्षेत्र' के अन्तर्गत भारत के निम्नलिखित राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं –

उत्तर प्रदेश
उत्तराखंड
बिहार
झारखंड
मध्यप्रदेश
छत्तीसगढ़
राजस्थान
हिमाचल प्रदेश
हरियाणा

दिल्ली

चण्डीगढ़।

भारत के संविधान की दृष्टि से यही स्थिति है। भाषाविज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि प्रत्येक भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ होती हैं। हम यह प्रतिपादित कर चुके हैं कि प्रत्येक 'भाषा क्षेत्र' में क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ होती हैं तथा बोलियों की समष्टि का नाम ही भाषा है। किसी भाषा की बोलियों से इतर व्यवहार में सामान्य व्यक्ति भाषा के जिस रूप को 'भाषा' के नाम से अभिहित करते हैं वह तत्वत: भाषा नहीं होती। भाषा का यह रूप उस भाषा क्षेत्र के किसी बोली अथवा बोलियों के आधार पर विकसित उस भाषा का 'मानक भाषा रूप' 'व्यावहारिक भाषा रूप' होता है। भाषा विज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति इसी को 'भाषा' कहने लगते हैं तथा 'भाषा क्षेत्र' की बोलियों को अविकसित, हीन एवं गँवारू कहने, मानने एवं समझने लगते हैं।

हम इस संदर्भ में, इस तथ्य को रेखांकित करना चाहते हैं कि भारतीय भाषिक परम्परा इस दृष्टि से अधिक वैज्ञानिक रही है। भारतीय परम्परा ने भाषा के अलग-अलग क्षेत्रों में बोले जाने वाले भाषिक रूपों को 'देस भाखा' अथवा 'देसी भाषा' के नाम से पुकारा तथा घोषणा की कि देसी वचन सबको मीठे लगते हैं - ' देसिल बअना सब जन मिट्ठा।'

हिन्दी भाषा क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: 20 बोलियाँ अथवा उपभाषाएँ बोली जाती हैं। इन 20 बोलियों अथवा उपभाषाओं को ऐतिहासिक परम्परा से पाँच वर्गों में विभक्त किया जाता है - पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी।

पश्चिमी हिन्दी - 1. खड़ी बोली 2. ब्रजभाषा 3. हरियाणवी 4. बुन्देली 5. कन्नौजी

पूर्वी हिन्दी - 1. अवधी 2. बघेली 3. छत्तीसगढ़ी

राजस्थानी - 1. मारवाड़ी 2. मेवाती 3. जयपुरी 4.मालवी

बिहारी - 1. भोजपुरी 2. मैथिली 3. मगही 4. अंगिका 5. बज्जिका

पहाड़ी - 1. कूमाऊँनी 2. गढ़वाली 3. हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ जिन्हें आम बोलचाल में 'पहाड़ी' नाम से पुकारा जाता है।

टिप्पण -

मैथिली –

मैथिली को अलग भाषा का दर्जा दे दिया गया है हॉलाकि हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में अभी भी मैथिली कवि विद्यापति पढ़ाए जाते हैं तथा जब नेपाल में मैथिली आदि भाषिक रूपों के बोलने वाले मधेसी लोगों पर दमनात्मक कार्रवाई होती है तो वे अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार मुम्बई में रहने वाले भोजपुरी, मगही, मैथिली एवं अवधी आदि बोलने वाले अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में करते हैं।

छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी –

जबसे मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी को अलग भाषाओं का दर्जा मिला है तब से भोजपुरी को भी अलग भाषा का दर्जा दिए जाने की माँग प्रबल हो गई है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का सिलसिला मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी से आरम्भ हो गया है। मैथिली पर टिप्पण लिखा जा चुका है। छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी के सम्बंध में कुछ विचार प्रस्तुत हैं। जब तक छत्तीसगढ़ मध्य प्रदेश का हिस्सा था तब तक छत्तीसगढ़ी को हिन्दी की बोली माना जाता था। रायपुर विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान के प्रोफेसर डॉ. रमेश चन्द्र महरोत्रा का सन् 1976 में एक आलेख रायपुर से भाषिकी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसमें हिन्दी की 22 बोलियों के अंतर्गत छत्तीसगढ़ी समाहित है।

लेखक भोजपुरी के सम्बंध में भी कुछ निवेदन करना चाहता है। लेखक को जबलपुर के विश्वविद्यालय में डॉ. उदय नारायण तिवारी जी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भोजपुरी की भाषिक स्थिति को लेकर अकसर हमारे बीच विचार विमर्श होता था। उनके जामाता डॉ. शिव गोपाल मिश्र उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष व्याख्यानमाला आयोजित करते हैं। दिनांक 26 जून, 2013 को मुझे हिन्दुस्तानी एकाडमी, इलाहाबाद के श्री बृजेशचन्द्र का 'डॉ. उदय नारायण तिवारी व्याख्यानमाला' निमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ। व्याख्यान का विषय था – 'भोजपुरी भाषा'। लेखक ने उसी दिन व्याख्यान के सम्बंध में डॉ. शिव गोपाल मिश्र को जो पत्र लिखा उसका व्याख्यान के विषय से सम्बंधित अंश पाठकों के अवलोकनार्थ अविकल प्रस्तुत है –

डॉ. उदय नारायण तिवारी जी ने भोजपुरी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया। उनके अध्ययन का वही महत्व है जो सुनीति कुमार चटर्जी के बांग्ला पर सम्पन्न कार्य का है। इस विषय पर हमारे बीच अनेक बार संवाद हुए।

कई बार मत भिन्नता भी हुई। जब लेखक भाषा-भूगोल एवं बोली-विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में हिन्दी भाषा-क्षेत्र की विवेचना करता था तो डॉ. तिवारी जी इस मत से सहमत हो जाते थे कि हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अंतर्गत भारत के जितने राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं, उन समस्त क्षेत्रों में जो भाषिक रूप बोले जाते हैं, उनकी समष्टि का नाम हिन्दी है। खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है अपितु यह भी हिन्दी भाषा-क्षेत्र का उसी प्रकार एक क्षेत्रीय भेद है जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्य अनेक क्षेत्रीय भेद हैं। मगर कभी-कभी उनका तर्क होता था कि खड़ी बोली बोलने वाले और भोजपुरी बोलने वालों के बीच बोधगम्यता बहुत कम होती है। इस कारण भोजपुरी को यदि अलग भाषा माना जाता है तो इसमें क्या हानि है। जब लेखक कहता था कि भाषाविज्ञान का सिद्धांत है कि संसार की प्रत्येक भाषा के 'भाषा-क्षेत्र' में भाषिक भिन्नताएँ होती हैं। हम ऐसी किसी भाषा की कल्पना नहीं कर सकते जिसके भाषा-क्षेत्र में क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ न हों। इस पर डॉ. तिवारी जी असमंजस में पड़ जाते थे। अनेक वर्षों के संवाद के अनन्तर एक दिन डॉ. तिवारी जी ने मुझे अपने मन के रहस्य से अवगत कराया। उनके शब्द थे–

"जब मैं ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अपने अध्ययन के आधार पर विचार करता हूँ तो मुझे भोजपुरी की स्थिति हिन्दी से अलग भिन्न भाषा की लगती है मगर जब मैं संकालिक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों की दृष्टि से सोचता हूँ तो पाता हूँ कि भोजपुरी भी हिन्दी भाषा-क्षेत्र का एक क्षेत्रीय रूप है"।

बहुत से विद्वान यह तर्क देते हैं कि डॉ. उदय नारायण तिवारी ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' शीर्षक ग्रंथ में 'भोजपुरी' को भाषा माना है। इस सम्बंध में, लेखक विद्वानों को इस तथ्य से अवगत करना चाहता है कि हिन्दी में प्रकाशित उक्त ग्रंथ उनके डी. लिट्. उपाधि के लिए स्वीकृत अंग्रेजी भाषा में लिखे गए शोध-प्रबंध का हिन्दी रूपांतर है। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने कलकत्ता में सन् 1941 ईस्वी में पहले 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' में एम. ए. की परीक्षा पास की तथा सन् 1942 ईस्वी में डी. लिट्. उपाधि के लिए शोध-प्रबंध पूरा करके इलाहाबाद लौट आए तथा उसे परीक्षण के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जमा कर दिया। आपने अपना शोध-प्रबंध अंग्रेजी भाषा में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के निर्देशन में सम्पन्न किया तथा डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त होने के बाद इसका प्रकाशन 'एशियाटिक सोसाइटी' से हुआ। इस शोध-प्रबंध का शीर्षक है

– 'ए डाइलेक्ट ऑफ भोजपुरी'। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इस तथ्य को स्वयं अपने एक लेख अभिव्यक्त किया है।

राजस्थानी –

"श्रीमद्जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत "विश्व शान्ति एवं अहिंसा" विषय पर व्याख्यान देने सन् 1987 ईस्वी में लेखक का कलकत्ता (कोलकोता) जाना हुआ था। वहाँ श्री सरदारमल जी कांकरिया के निवास पर लेखक का संवाद राजस्थानी भाषा की मान्यता के लिए आन्दोलन चलाने वाले तथा राजस्थानी में "धरती धौरां री" एवं "पातल और पीथल" जैसी कृतियों की रचना करने वाले कन्हैया लाल सेठिया जी से हुआ। उनका आग्रह था कि राजस्थानी को स्वतंत्र भाषा का दर्जा मिलना चाहिए। लेखक ने उनसे अपने आग्रह पर पुनर्विचार करने की कामना व्यक्त की और मुख्यत: निम्न मुद्दों पर विचार करने का अनुरोध किया –

(1) ग्रियर्सन ने ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। स्वाधीनता आन्दोलन में हमारे राष्ट्रीय नेताओं के कारण हिन्दी का जितना प्रचार प्रसार हुआ उसके कारण हमें ग्रियर्सन की दृष्टि से नहीं अपितु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषाविदों की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

(2) राजस्थानी भाषा जैसी कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। राजस्थान में निम्न क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं –

1. मारवाड़ी
2. मेवाती
3. जयपुरी
4. मालवी (राजस्थान के साथ-साथ मध्य-प्रदेश में भी)

राजस्थानी जैसी स्वतंत्र भाषा नहीं है। इन विविध भाषिक रूपों को हिन्दी के रूप मानने में क्या आपत्ति हो सकती है।

(3) यदि आप राजस्थानी का मतलब केवल मारवाड़ी से लेंगे तो क्या मेवाती, जयपुरी, मालवी, हाड़ौती, शेखावाटी आदि अन्य भाषिक रूपों के बोलने वाले अपने-अपने भाषिक रूपों के लिए आवाज नहीं उठायेंगे।

(4) भारत की भाषिक परम्परा रही है कि एक भाषा के हजारों भूरि भेद माने गए हैं मगर अंतरक्षेत्रीय सम्पर्क के लिए एक भाषा की मान्यता रही है।

(5) हिन्दी साहित्य की संश्लिष्ट परम्परा रही है। इसी कारण हिन्दी साहित्य के अंतर्गत रास एवं रासो साहित्य की रचनाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

(6) राजस्थान की पृष्ठभूमि पर आधारित हिन्दी कथा साहित्य एवं हिन्दी फिल्मों में जिस राजस्थानी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग होता है उसे हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग का रहने वाला समझ लेता है।

(7) मारवाड़ी लोग व्यापार के कारण भारत के प्रत्येक राज्य में निवास करते हैं तथा अपनी पहचान हिन्दी भाषी के रूप में करते हैं। यदि आप राजस्थानी को हिन्दी से अलग मान्यता दिलाने का प्रयास करेंगे तो राजस्थान के बाहर रहने वाले मारवाड़ी व्यापारियों के हित प्रभावित हो सकते हैं।

(8) भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व एवं महत्व को अंग्रेजी से खतरा है। संसार में अंग्रेजी भाषियों की जितनी संख्या है उससे अधिक संख्या केवल हिन्दी भाषियों की है। यदि हिन्दी के उपभाषिक रूपों को हिन्दी से अलग मान लिया जाएगा तो भारत की कोई भाषा अंग्रेजी से टक्कर नहीं ले सकेगी और धीरे धीरे भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व का संकट पैदा हो जाएगा।10

पहाड़ी

डॉ. सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'पहाड़ी' समुदाय के अन्तर्गत बोले जाने वाले भाषिक रूपों को तीन शाखाओं में बाँटा –

(अ) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली

(आ) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी

(इ)पश्चिमी पहाड़ी।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में वर्तमान स्थिति यह है कि हिन्दी भाषा के अन्तर्गत मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी की उत्तराखंड में बोली जाने वाली 1. कूमाऊँनी 2. गढ़वाली तथा पश्चिमी पहाड़ी की हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिन्हें आम बोलचाल में 'पहाड़ी' नाम से पुकारा जाता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली आदि को हिन्दी भाषा की बोलियाँ माना जाए अथवा उपभाषाएँ माना जाए। सामान्य रूप से इन्हें बोलियों के नाम से अभिहित किया जाता है किन्तु लेखक ने अपने ग्रन्थ 'भाषा एवं भाषाविज्ञान' में इन्हें उपभाषा मानने का प्रस्ताव

किया है– क्षेत्र, बोलने वालों की संख्या तथा परस्पर भिन्नताओं के कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। इसी ग्रन्थ में लेखक ने पाठकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि हिन्दी की कुछ उपभाषाओं के भी क्षेत्रगत भेद हैं जिन्हें उन उपभाषाओं की बोलियों अथवा उपबोलियों के नाम से पुकारा जा सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन उपभाषाओं के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। प्रत्येक दो उपभाषाओं के मध्य संक्रमण क्षेत्र विद्यमान है।

विश्व की प्रत्येक भाषा के विविध बोली अथवा उपभाषा क्षेत्रों में से विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से जब कोई एक क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है तो उस क्षेत्र के भाषा रूप का सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र में प्रसारण होने लगता है। इस क्षेत्र के भाषारूप के आधार पर पूरे भाषाक्षेत्र की 'मानक भाषा' का विकास होना आरम्भ हो जाता है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी इस भाषारूप को 'मानक भाषा' मानने लगते हैं। इसको मानक मानने के कारण यह मानक भाषा रूप 'भाषा क्षेत्र' के लिए सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाता है। मानक भाषा रूप की शब्दावली, व्याकरण एवं उच्चारण का स्वरूप अधिक निश्चित एवं स्थिर होता है एवं इसका प्रचार, प्रसार एवं विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में होने लगता है। कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम एवं शिक्षा का माध्यम यही मानक भाषा रूप हो जाता है। इस प्रकार भाषा के 'मानक भाषा रूप' का आधार उस भाषाक्षेत्र की क्षेत्रीय बोली अथवा उपभाषा ही होती है, किन्तु मानक भाषा होने के कारण चूँकि इसका प्रसार अन्य बोली क्षेत्रों अथवा उपभाषा क्षेत्रों में होता है इस कारण इस भाषारूप पर 'भाषा क्षेत्र' की सभी बोलियों का प्रभाव पड़ता है तथा यह भी सभी बोलियों अथवा उपभाषाओं को प्रभावित करता है। उस भाषा क्षेत्र के शिक्षित व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। भाषा के मानक भाषा रूप को सामान्य व्यक्ति अपने भाषा क्षेत्र की 'मूल भाषा', केन्द्रक भाषा', 'मानक भाषा' के नाम से पुकारते हैं। यदि किसी भाषा का क्षेत्र हिन्दी भाषा की तरह विस्तृत होता है तथा यदि उसमें 'हिन्दी भाषा क्षेत्र' की भांति उपभाषाओं एवं बोलियों की अनेक परतें एवं स्तर होते हैं तो 'मानक भाषा' के द्वारा समस्त भाषा क्षेत्र में विचारों का आदान–प्रदान सम्भव हो पाता है। भाषा क्षेत्र के यदि आंशिक अबोधगम्य उपभाषी अथवा बोली बोलने वाले परस्पर अपनी उपभाषा अथवा बोली के माध्यम से विचारों का समुचित आदान–प्रदान नहीं कर

पाते तो इसी मानक भाषा के द्वारा संप्रेषण करते हैं। भाषा विज्ञान में इस प्रकार की बोधगम्यता को 'पारस्परिक बोधगम्यता' न कहकर 'एकतरफा बोधगम्यता' कहते हैं। ऐसी स्थिति में अपने क्षेत्र के व्यक्ति से क्षेत्रीय बोली में बातें होती हैं किन्तु दूसरे उपभाषा क्षेत्र अथवा बोली क्षेत्र के व्यक्ति से अथवा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा के द्वारा बातचीत होती हैं। इस प्रकार की भाषिक स्थिति को फर्गुसन ने बोलियों की परत पर मानक भाषा का अध्यारोपण कहा है। गम्पर्ज ने इसे 'बाइलेक्टल' के नाम से पुकारा है।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत भेद एवं उपभेद तो है हीं, प्रत्येक क्षेत्र के प्राय: प्रत्येक गाँव में सामाजिक भाषिक रूपों के विविध स्तरीकृत तथा जटिल स्तर विद्यमान हैं और यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र के सामाजिक संप्रेषण का यथार्थ है जिसको जाने बिना कोई व्यक्ति हिन्दी भाषा के क्षेत्र की विवेचना के साथ न्याय नहीं कर सकता। ये हिन्दी पट्टी के अन्दर सामाजिक संप्रेषण के विभिन्न नेटवर्कों के बीच संवाद के कारक हैं। इस हिन्दी भाषा क्षेत्र अथवा पट्टी के गावों के रहनेवालों के वाग्व्यवहारों का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि ये भाषिक स्थितियाँ इतनी विविध, विभिन्न एवं मिश्र हैं कि भाषा व्यवहार के स्केल के एक छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है जो केवल स्थानीय बोली बोलना जानता है तथा जिसकी बातचीत में स्थानीयेतर कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता वहीं दूसरे छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है जो ठेठ मानक हिन्दी का प्रयोग करता है तथा जिसकी बातचीत में कोई स्थानीय भाषिक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। स्केल के इन दो दूरतम छोरों के बीच बोलचाल के इतने विविध रूप मिल जाते हैं कि उन सबका लेखा जोखा प्रस्तुत करना असाध्य हो जाता है। हमें ऐसे भी व्यक्ति मिल जाते हैं जो एकाधिक भाषिक रूपों में दक्ष होते हैं जिसका व्यवहार तथा चयन वे संदर्भ, व्यक्ति, परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करते हैं। सामान्य रूप से हम पाते हैं कि अपने घर के लोगों से तथा स्थानीय रोजाना मिलने जुलने वाले घनिष्ठ मित्रों से व्यक्ति जिस भाषा रूप में बातचीत करता है उससे भिन्न भाषा रूप का प्रयोग वह उनसे भिन्न व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में करता है। सामाजिक संप्रेषण के अपने प्रतिमान हैं। व्यक्ति प्राय: वाग्व्यवहारों के अवसरानुकूल प्रतिमानों को ध्यान में रखकर बातचीत करता है।

हम यह कह चुके हैं कि किसी भाषा क्षेत्र की मानक भाषा का आधार कोई बोली अथवा उपभाषा ही होती है किन्तु कालान्तर में उक्त बोली एवं मानक भाषा के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र के शिष्ट एवं

शिक्षित व्यक्तियों द्वारा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा का प्रयोग किए जाने के कारण तथा साहित्य का माध्यम बन जाने के कारण स्वरूपगत परिवर्तन स्वाभाविक है। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है, जिसका उस भाषा-क्षेत्र के सभी क्षेत्रों के पढ़े-लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। हम पाते हैं कि इस मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में बढ़ रहा है तथा प्रत्येक हिन्दी भाषी व्यक्ति शिक्षित, सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित तथा स्थानीय क्षेत्र से इतर अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों से वार्तालाप करने के लिए इसी को आदर्श, श्रेष्ठ एवं मानक मानता है। गाँव में रहने वाला एक सामान्य एवं बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति भले ही इसका प्रयोग करने में समर्थ तथा सक्षम न हो फिर भी वह इसके प्रकार्यात्मक मूल्य को पहचानता है तथा वह भी अपने भाषिक रूप को इसके अनुरूप ढालने की जुगाड़ करता रहता है। जो मजदूर शहर में काम करने आते हैं वे किस प्रकार अपने भाषा रूप को बदलने का प्रयास करते हैं - इसको देखा परखा जा सकता है।

सन् 1960 में लेखक ने बुलन्दशहर एवं खुर्जा तहसीलों (ब्रज एवं खड़ी बोली का संक्रमण क्षेत्र) के भाषिक रूपों का संकालिक अथवा एककालिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन करना आरम्भ किया। सामग्री संकलन के लिए जब लेखक गाँवों में जाता था तथा वहाँ रहने वालों से बातचीत करता था तबके उनके भाषिक रूपों एवं आज लगभग 55 वर्षों के बाद के भाषिक रूपों में बहुत अन्तर आ गया है। अब इनके भाषिक-रूपों पर मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रभाव आसानी से पहचाना जा सकता है। इनके भाषिक-रूपों में अंग्रेजी शब्दों का चलन भी बढ़ा है। यह कहना अप्रासंगिक होगा कि उनकी जिन्दगी में और व्यवहार में भी बहुत बदलाव आया है।

मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में व्यवहार होने तथा इसके प्रकार्यात्मक प्रचार-प्रसार के कारण, यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र में प्रयुक्त समस्त भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस कारण इसकी क्षेत्रगत भिन्नताएँ भी बहुत अधिक हैं। 'खड़ी बोली' हिन्दी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक भेद है, जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएँ हैं जिनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत

कम है किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषा-भाषी क्षेत्र के बहुमत भाषा-भाषी अपने-अपने क्षेत्रगत भेदों को हिन्दी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकारते आए हैं। कुछ विद्वानों ने इस भाषा क्षेत्र को 'हिन्दी पट्टी' के नाम से पुकारा है तथा कुछ ने इस हिन्दी भाषी क्षेत्र के निवासियों के लिए 'हिन्दी जाति' का अभिधान दिया है।

वस्तु स्थिति यह है कि हिन्दी, चीनी एवं रूसी जैसी भाषाओं के क्षेत्रगत प्रभेदों की विवेचना यूरोप की भाषाओं के आधार पर विकसित पाश्चात्य भाषाविज्ञान के प्रतिमानों के आधार पर नहीं की जा सकती।

जिस प्रकार अपने 29 राज्यों एवं 07 केन्द्र शासित प्रदेशों को मिलाकर भारतदेश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उनकी समाष्टि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है। जब संयुक्त राज्य अमेरिका की बात करते हैं तब संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्गत जितने राज्य हैं उन सबकी समष्टि का नाम ही तो संयुक्त राज्य अमेरिका है। विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है मगर मानक भाषा, भाषा का एक रूप होता है : मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास अवश्य हुआ है किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। तत्वत: हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उन सबकी समष्टि का नाम हिन्दी है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के षडयंत्र को विफल करने की आवश्कता है तथा इस तथ्य को बलपूर्वक रेखांकित, प्रचारित एवं प्रसारित करने की आवश्यकता है कि सन् 1991 की भारतीय जनगणना के अन्तर्गत भारतीय

भाषाओं के विश्लेषण का जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है उसमें मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड राज्य सहित) में 90.11, बिहार (झारखण्ड राज्य सहित) में 80.86, मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ राज्य सहित) में 85.55, राजस्थान में 89.56, हिमाचल प्रदेश में 88. 88, हरियाणा में 91.00, दिल्ली में 81.64, तथा चण्डीगढ़ में 61.06 है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र एवं मंदारिन भाषा-क्षेत्र –

जिस प्रकार चीन में मंदारिन भाषा की स्थिति है उसी प्रकार भारत में हिन्दी भाषा की स्थिति है। जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक रूप बोले जाते हैं, वैसे ही मंदारिन भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं। हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। मगर मंदारिन भाषा के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता बिल्कुल नहीं है। उदाहरण के लिए मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज के वक्ता एक-दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हो पाते। उनमें पारस्परिक बोधगम्यता का अभाव है। वे आपस में मंदारिन के मानक भाषा रूप के माध्यम से बातचीत कर पाते हैं। मंदारिन के इस क्षेत्रीय भाषिक रूपों को लेकर वहाँ कोई विवाद नहीं है। पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक मंदारिन को लेकर कभी विवाद पैदा करने का साहस नहीं कर पाते। मंदारिन की अपेक्षा हिन्दी के भाषा-क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषिक-रूपों में पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत अधिक है। यही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-क्षेत्र में पारस्परिक बोधगम्यता का सातत्य मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हम हिन्दी भाषा-क्षेत्र में एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करें तो निकटवर्ती क्षेत्रीय भाषिक-रूपों में बोधगम्यता का सातत्य मिलता है। हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ताओं को अपने-अपने क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के माध्यम से संवाद करने में कठिनाई होती है। कठिनाई तो होती है मगर इसके बावजूद वे परस्पर संवाद कर पाते हैं। यह स्थिति मंदारिन से अलग है जिसके चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ता अपने-अपने क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के माध्यम से कोई संवाद नहीं कर पाते। मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज के वक्ता

एक-दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हैं मगर हिन्दी के एक छोर पर बोली जाने वाली भोजपुरी और मैथिली तथा दूसरे छोर पर बोली जाने वाली मारवाड़ी के वक्ता एक-दूसरे के अभिप्राय को किसी न किसी मात्रा में समझ लेते हैं।

यदि चीन में मंदारिन भाषा-क्षेत्र के समस्त क्षेत्रीय भाषिक-रूप मंदारिन भाषा के ही अंतर्गत स्वीकृत हैं तो उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाविष्ट क्षेत्रीय भाषिक-रूपों को भिन्न-भिन्न भाषाएँ मानने का विचार नितान्त अतार्किक और अवैज्ञानिक है। लेखक का स्पष्ट एवं निर्भ्रांत मत है कि हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के षड्यंत्रों को बेनकाब करने और उनको निर्मूल करने की आवश्यकता असंदिग्ध है। हिन्दी देश को जोड़ने वाली भाषा है। उसे उसके ही घर में तोड़ने का अपराध किसी को नहीं करना चाहिए।

2

हिंदी का मानकीकरण

हिंदी भारतीय गणराज की राजकीय और मध्य भारतीय- आर्य भाषा है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था

मानक भाषा

मानक का अभिप्राय है-आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अलावा अन्य भाषा-भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा-रूप का व्यवहार पत्रचार, शिक्षा, सरकारी काम-काज एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का मानक रूप कहलाता है।

मानक भाषा किसी देश अथवा राज्य की वह प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है, जिसका प्रयोग वहाँ के शिक्षित वर्ग द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक व वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है।

किसी भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर मानक रूप ग्रहण कर लेना, उसका मानकीकरण कहलाता है।

मानकीकरण (मानक भाषा के विकास) के तीन सोपान निम्नलिखित हैं-

प्रथम सोपान- 'बोली'

पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली बोली का होता है, जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द भंडार सीमित होता है। कोई नियमित व्याकरण नहीं होता। इसे शिक्षा, आधिकारिक कार्य-व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

द्वितीय सोपान- 'भाषा'

वही बोली कुछ भौगोलिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक व प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र विस्तार कर लेती है, उसका लिखित रूप विकसित होने लगता है और इसी कारण से वह व्याकरणिक साँचे में ढलने लगती है, उसका पत्रचार, शिक्षा, व्यापार, प्रशासन आदि में प्रयोग होने लगता है, तब वह बोली न रहकर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है।

तृतीय सोपान- 'मानक भाषा'

यह वह स्तर है जब भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक आदर्श रूप ग्रहण कर लेती है। उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। इसी स्थिति में पहुँचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को 'शुद्ध', 'उच्च-स्तरीय', 'परिमार्जित' आदि भी कहा जाता है।

मानक भाषा का स्वरूप और प्रकृति

मानक भाषा संरचनात्मक दृष्टि से अपनी भाषा के विभिन्न रूपों में से किसी एक रूप या एक बोली पर आधारित होती है। इसके मानक बनते ही इसकी बोलीगत विशेषताएं लुप्त होने लगती हैं और वह क्षेत्रीय से अक्षेत्रीय हो जाती है। इसका कोई निर्धारित सीमा क्षेत्र नहीं होता और न ही वह किसी भाषाभाषी समुदाय की मातृभाषा कहलाती है। हमारे सामने हिन्दी का मानक रूप है। यह मानक रूप हिन्दी की खड़ी बोली से विकसित हुआ है। इस रूप में खड़ी बोली की बोलीगत विशेषताए लुप्त हो गई हैं और यह रूप खड़ी बोली से उतना

ही अलग जान पड़ता है जितना वह भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि अन्य बोलियों से। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली, भोजपुरी ब्रज, अवधी आदि के अपने भाषाभाषी समुदाय हैं और इनका अपना सीमा क्षेत्र है और इनके बोलने वाले इन्हें अपनी मातृ भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं किंतु हिन्दी के मानक रूप के संबंध में इस प्रकार की संकल्पनाएं कुछ अलग सी हैं। हिन्दी क्षेत्र में विभिन्न बोलियों के बोलने वाले उसे उसी प्रकार की मातृभाषा अवश्य मानते हैं अर्थात् वे उसे 'सहमातृभाषा' या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार करते है।

संरचना की दृष्टि से मानक भाषा में आंतरिक संशक्ति होती है और वह प्रयोग की दृष्टि से काफी व्यापक होती है। इन दोनों अभिलक्षणाों से मानक भाषा का स्वरूप स्पष्ट होने लगता है। वास्तव में मानक भाषा का प्रयोग क्षेत्र जितना विस्तृत होता जाएगा उसकी संरचना में अधिकतम समरूपता बनी रहेगी। इसीलिए व्यापक क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसकी आंतरिक संशक्ति की अपेक्षा रहती है। शब्दोच्चारण, शब्दरूपों और वाक्य विन्यास को स्थिरता देने का प्रयास रहता है। इसमें एक शब्द का एक ही उच्चारण और एक ही वर्तनी की अपेक्षा रहती है। इसका एक ही व्याकरणिक ढांचा होता है। इस आंतरिक संशक्ति या भाषिक एकरूपता से संप्रेषणीयता में व्याघात उत्पन्न नहीं होता और इसीलिए वह सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। किंतु यह एकरूपता तभी संभव होती है जब भाषा के रूप में स्थिरिता पाई जाए और उसमें भाषायी परिवर्तन कम से कम हों। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो जीवंत भाषा का अपरिवर्तनशील रहना संभव नहीं है। वास्तव में संरचनात्मक एकरूपता और प्रयोगात्मक बहुरूपता एक-दूसरे की विपरीत स्थितियां हैं और वे दोनों एक-दूसरे के लिए बाधा उत्पन्न करतीं हैं। संरचनात्मक एकरूपता या स्थिरता भाषा के व्यवहार क्षेत्र को सीमित करने का प्रयास करती है और विस्तृत व्यवहार क्षेत्र संरचना की एकरूपता को खंडित करने में अग्रसर रहता है हमारे सामने उदाहरण है संस्कृत का। संस्कृत की संरचनात्मक एकरूपता को लाने से उसकी जीवंतता समाप्त हो गई और उसका व्यवहार क्षेत्र सीमित हो गया। इधर हिन्दी का व्यवहार क्षेत्र व्यापक हो जाने से इसके कई रूप उभरने लगे हैं। कहीं बंबईया हिन्दी के दर्शन होते हैं, तो कही कलकतिया हिन्दी के। कहीं पंजाबी से प्रभावित हिन्दी दिखाई देती है तो कहीं भोजपुरी से। इसी दृष्टि में ये दोनों स्थितियां भाषा को मानक रूप देने में बाधा उत्पन्न करती हैं। अत: मानकीकरण की प्रक्रिया में संरचनात्मक एकरूपता और प्रयोगात्मक बहुरूपता में संतुलन बानए रखना महत्वपूर्ण है। यह तभी संभव है यदि

मानक भाषा सतत लचीलेपन और तार्किकता के गुण से युक्त है। इससे वह सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के अनुरूप ढलती चलती है। इस लचीलेपन का आधार बोलचाल की भाषा है बोलचाल की भाषा पर आधारित मानक भाषा क्षेत्रीय बोली से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती। इसके अतिरिक्त वह औद्योगिक, बहुधर्मी, बहुभाषिक समाज के भीतर विषय एवं शैली की दृष्टि से आदान-प्रदान करती है जिससे उसकी स्थिरता का टिक पाना संभव नहीं है। इसलिए इसकी इसकी स्थापना में लचीलेपन की अपेक्षा रहती है ताकि वह 'परस्पर अनुवादकता' की स्थिति में आ जाए।

उपर्युक्त चर्चा से हम देखते हैं कि भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया में चार बातें मुख्य रूप से रहती हैं -

(1) चयन
(2) संसक्ति
(3) प्रयोग और
(4) स्वीकृति।

विभिन्न भाषारूपों और बोलियों में किसी एक का चयन किया जाता है। इस चयन के कई कारण होते हैं - शासन का बल, धर्म का आश्रय, साहित्य की श्रेष्ठता आदि। इस चयन में किसी बात का आग्रह या आधार नहीं होता कि किस किस भाषारूप का चयन किया जाए। फिनलैंड में मानक भाषा का आधार वहां की बोलचाल की बाली को अपनाया गया तो इजरायल में क्लासिकल भाषा हिब्रू को। हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल में ब्रज अवधी धर्म और साहित्य की भाषा थी किंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली का चयन किया गया। इसी खड़ी बोली में साहित्य रचना होने से उसके रूप स्थिर होने लगे और वह मानक भाषा के रूप में प्रस्फुटित होकर अपने क्षेत्र से आगे बढ़कर अक्षेत्रीय होने लगी। बाद में इसे शासन का बल मिला और आज की मानक भाषा जनसाधरण की भाषा बन गई। इस चयन में अन्य बोलियों को अपना बलिदान करना पड़ता है और वे बेचारी अपने क्षेत्र तक सीमित रह जाती हैं। किंतु मानक भाषा को उनका सहयोग लेकर चलना पड़ता है ताकि उसका शब्द भंडार समृद्ध हो जाए और वह अक्षेत्रीय होकर राष्ट्रभाषा के पद तक पहुंच पाने की स्थिति में आ जाए।

संरचनात्मक संसक्ति में लेखन का महत्वपूर्ण कार्य होता है। यह न केवल भाषा में स्थायित्व लाता है वरन् व्याकरणिक रूपों में एकरूपता बनाए रखनें में सहायता भी करता है। विभिन्न प्रदेशों एवं क्षेत्रों में बोलियों के प्रभाव से भाषा

का उच्चरित रूप समान नहीं हो पाता। अत: लिखित रूप उस विविधिता को मिटाने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त लिखित रूप व्याकरण से अनुशासित होने के कारण भाषा की संरचना में एकरूपता बनाए रखता है। इंग्लैंड, अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, भारत आदि देशों में अंग्रेजी के उच्चरण और व्याकरणिक रूपों में भिन्नता मिल सकती है, किंतु उसके लिखित रूप में एकरूपता काफी हद तक दिखाई देती है।

जब भाषा का मानक रूप विकास की स्थिति में आ जाता है तो उसके प्रयोग का व्यवहार क्षेत्र में विस्तार होने लगता है। वह विज्ञान, साहित्य, शिक्षा, शासन आदि विभिन्न प्रयोजनों में प्रयुक्त होने लगता है। वह लोक साहित्य के ऊपर उठकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का भी उसमें सृजन होने लगता है और यहां तक कि मौलिक साहित्य का भी उसमें सृजन होने लगता है। अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद होना भी शुरू हो जाता है। हिन्दी का मानक रूप इस समय इसी स्थिति में आ गया है।

मानक भाषा के विभिन्न प्रयोजनों एवं व्यवहार क्षेत्रों में प्रयुक्त होने से समाज उस रूप को स्वीकार कर लेता है। इस भाषा की विभिन्न बोलियां बोलने वाले अन्य भाषाभाषियों के साथ इसी रूप का प्रयोग करते हैं और आपस में इस रूप का प्रयोग करते हुए प्रतिष्ठा का अनुभव करते हैं। साहित्य, कार्यालय, विधि, विज्ञान, चिकित्सा, पत्रकारिता, वाणिज्य आदि विभिन्न प्रयोजनों में समाज उसका प्रयोग करने लगता है इससे उसकी अभिव्यंजना शक्ति में भी वृद्धि होती है। इसके स्वीकार हो जाने से इसे शिक्षा के माध्यम रूप में अपना लिया जाता है।

मानक भाषा में मानकीकरण की प्रक्रिया केवल कार्य नहीं करती वरन् उसमें ऐतिहासिकता, जीवंतता और स्वायत्ता के लक्षण भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ऐतिहासिकता से अभिप्राय है कि यह भाषा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा से अर्जित संस्कार के रूप में आती है। इसके निर्माण और विकास में कोई व्यक्ति विशेष नहीं होता वरन् पीढ़ी दर पीढ़ी यह सहज और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती आती है। इसमें इसकी अपनी लिखित परंपरा, अपना जातीय इतिहास और अर्जित संस्कार होता है। भाषा तभी जीवंत होती है जब उसके प्रयोग करने वाले हों और अपनी भाषा के रूप में ग्रहण करते हों। जिस भाषा का अपना समाज नहीं होता और समाज उसे अपनी भाषा स्वीकार नहीं करता तो वह भाषा जीवित नहीं रह पाती। उसका समाज ही उसे जीवित रख

सकता है और उसके जीवित रहने में उसका विकास सहज रूप से होता है। इसलिए मानक भाषा में जीवंतता का होना आवश्यक है। यदि भाषा में मानकता, ऐतिहासिकता और जीवंतता होती है तो वह अपने आप विशिष्ट और स्वतंत्र हो जाती है। वह किसी अन्य भाषा व्यवस्था पर आधारित नहीं रहती वरन् अपनी स्वायत्त सत्ता बनाये रखती है। हम देखते हैं कि यदि हिन्दी का मानक रूप मूलतः खड़ी बोली पर आधारित है, किंतु वह अपनी भाषिक व्यवस्था और प्रकार्य के संदर्भ में अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व बनाए हुए है। वास्तव में बोली में ऐतिहासिकता और जीवंतता तो होती है, किंतु मानकता और स्वायत्ता नहीं होती और क्लासिकल भाषा में मानकता, ऐतिहासिकता और स्वायत्ता होती है, किंतु जीवंतता नहीं होती है। बोलचाल की भाषा में ऐतिहासिकता, जीवंतता और स्वायत्ता होती है और जब उसका मानकीकरण हो जाता है तो वह मानक भाषा के पद पर अभिषिक्त हो जाती है।

मानक भाषा के तत्त्व

ऐतिहासिकता
स्वायत्तता
केन्द्रोन्मुखता
बहुसंख्यक प्रयोगशीलता
सहजता बोधगम्यता
व्याकरणिक साम्यता
सर्वविध एकरूपता

मानकीकरण का एक प्रमुख दोष यह है कि मानकीकरण करने से भाषा में स्थिरता आने लगती है। जिससे भाषा की गति अवरुद्ध हो जाती है।

ऐतिहासिकता

'ऐतिहासिकता' का अर्थ है, भाषा की प्राचीन परम्परा और काल की दृष्टि से उसका विकास। अधिकांश भाषाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक फिर दूसरी से तीसरी तक और ऐसे ही आगे पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती हैं। यही उनकी ऐतिहासिकता है। यह उल्लेख है कि एस्पिरैंतो, इदो, लौंग्लन जैसी कृतिम भाषाओं में इस ऐतिहासिकता का अभाव होता है।

मानकीकरण

अर्थात् भाषा को एक मानक रूप देना। ऐसा रूप जिसमें प्राप्त सभी विकल्पों में एक को मानक मान लिया गया हो तथा जिस भाषा रूप को उस भाषा के सारे बोलने वाले मानक स्वीकार करते हों। यह बात ध्यान देने की है कि सारे विश्व की अधिकांश समुन्नत भाषाओं का मानक रूप होता है, जबकि अवभाषा (वर्नाक्यूलर), बोली क्रियोल आदि का मानक रूप नहीं होता। मानकीकरण के कारण ही कोई भाषा अपने पूरे क्षेत्र में शब्दावली तथा व्याकरण की दृष्टि से समरुप होती है, इसीलिए वह सभी लोगों के लिए बोधगम्य भी होती है। साथ ही वह सभी लोगों द्वारा मान्य होती है। अत: अन्य भाषा रूपों की तुलना में वह अधिक प्रतिष्ठित भी होती है।

जीवंतता

अर्थात् भाषा का प्रयोक्ता कोई समाज हो जिसमें बोलचाल तथा लेखन आदि में उस भाषा का प्रयोग होता हो। जीवंत भाषा में निरंतर विकास होता रहता है। विश्व में बोली जाने वाली सभी भाषाओं और बोलियों में जीवंतता मिलती है। हाँ, संस्कृत, लैटिन, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी पुरानी या क्लासिक भाषाएँ आज सामान्य प्रयोग में नहीं हैं, इसीलिए उनमें जीवंतता नहीं मानी जा सकती।

स्वायत्तता

स्वायत्तता से आशय है अपने अस्तित्त्व के लिए किसी भाषा का किसी अन्य भाषा पर निर्भर न होना। सामान्यत: भाषाएँ स्वायत्त होती हैं, किंतु बोलियाँ स्वायत्त नहीं होतीं, वे अपने अस्तित्त्व के लिए भाषा पर निर्भर करती हैं। इसीलिए हमें प्रत्येक बोली के लिए यह कहना पड़ता है कि वह बोली अमुक भाषा की है, किंतु भाषा के संबंध में ऐसी कोई बाध्यता नहीं है।

इन आधारों को लेकर हम विचार करें तो क्लासिक भाषा में ऐतिहासिकता होती है, मानकता होती है, किंतु जीवंतता नहीं होती, बोली में मानकता तथा स्वायत्तता नहीं होती, अवभाषा (वर्नाक्यूलर) में मानकता नहीं होती कृत्रिम भाषा में केवल मानकता होती है, पिजिन में मात्र ऐतिहासिकता होती है, क्रियोल में अन्य सभी होती है, किंतु मानकता नहीं होती। मानक भाषा में ये चारों ही विशेषताएँ होती हैं। वस्तुत: स्टिवर्ट की ये बातें यह तो बतलाती हैं कि मानक

भाषा में उपर्युक्त चार विशेषताएँ होती हैं, 'किंतु मानक भाषा में मानकता भी होती है' का तब तक कोई अर्थ नहीं, जब तक कि हम यह न बताएँ कि मानकता क्या है।

मानकता में निम्नांकित बातें आती है-

(1) मानकता का आधार कोई व्याकरणिक या भाषावैज्ञानिक तथ्य अथवा नियम नहीं होते। इसका आधार मूलत: सामाजिक स्वीकृति है। समाज विशेष के लोग भाषा के जिस रूप को अपनी मानक भाषा मान लें, उनके लिए वही मानक हो जाती है।

(2) इस तरह भाषा की मानकता का प्रश्न तत्त्वत: भाषाविज्ञान का न होकर समाज-भाषाविज्ञान का है। भाषाविज्ञान भाषा की संरचना का अध्ययन करता है और संरचना मानक भाषा की भी होती है और अमानक भाषा की भी। उसका इससे कोई संबंध नहीं कि समाज किसे शुद्ध मानता है और किसे नहीं। इस तरह मानक भाषा की संकल्पना को संरचनात्मक न कहकर सामाजिक कहना उपयुक्त होगा।

(3) जब हम समाज विशेष से किसी भाषा-रूप के मानक माने जाने की बात करते हैं, तो समाज से आशय होता है सुशिक्षित और शिष्ट लोगों का वह समाज जो पूरे भाषा-भाषी क्षेत्र में प्रभावशाली एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वस्तुत: उस भाषा-रूप की प्रतिष्ठा उसके उन महत्त्वपूर्ण प्रयोक्ताओं पर ही आधारित होती है। दूसरे शब्दों में उस भाषा के बोलनेवालों में यही वर्ग एक प्रकार से मानक वर्ग होता है।

(4) समाज द्वारा मान्य होने के कारण भाषा के अन्य प्रकारों की तुलना में मानक भाषा की प्रतिष्ठा होती है। इस तरह मानक भाषा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है।

(5) सामान्यत- मानक भाषा मूलत: किसी देश की राजधानी या अन्य दृष्टियों से किसी महत्त्वपूर्ण केन्द्र की बोली होती है, जिसे राजनीतिक अथवा धार्मिक अथवा सामाजिक कारणों से प्रतिष्ठा और स्वीकृति प्राप्त हो जाती है।

(6) बोली का प्रयोग अपने क्षेत्र तक सीमित रहता है, किंतु मानक भाषा का क्षेत्र अपने मूल क्षेत्र के भी बाहर अन्य बोली-क्षेत्रों में होता है।

(7) यदि किसी भाषा का मानक रूप है तो साहित्य में, शिक्षा के माध्यम के रूप में, अंत:क्षेत्रीय प्रयोग में तथा सभी औपरचारिक परिस्थितियों में उस मानक रूप का ही प्रयोग होता है, अमानक रूप या बोली आदि का नहीं।

(8) किसी भाषा के बोलने वाले अन्य भाषा-भाषियों के साथ प्रायः उस भाषा के मानक रूप का ही प्रयोग करते हैं, किसी बोली का अथवा अमानक रूप का नहीं।

मानक हिंदी भाषा उपयोगिता और महत्व

भारत एक बहुभाषी देश है जहां न केवल कई भाषाएं बोली जाती हैं वरन एक ही भाषाओं की भी कई उपभाषाएं भी प्रचलन में हैं। उसी प्रकार हिन्दी के भी अनेक रूप प्रचलन में है जैसे - भोजपुरी हिन्दी, बघेली हिन्दी, अवधी, हिन्दी, निमाड़ी, मालवी आदि। ऐसे में यदि कोई अहिन्दी भाषी व्यक्ति हिन्दी सीखना चाहे तो उसके समक्ष यह समस्या आती है कि वह कौन सी हिन्दी सीखे?

ताकि व्यवहार में उसका काम आसान हो सके उसी के साथ, सरकारी कामकाज, आकाशवाणी, दूरदर्शन राष्ट्रीय स्तर पर समाचार पत्र, महत्वपूर्ण सूचनाओं का आदान-प्रदान फिल्में, साहित्य आदि के लिए भी विकट समस्या उपस्थित होती है कि आखिर कौन सी हिन्दी को अपनाया जाय? जिसके निराकरण का एक मात्र हल है (निवारण) कि हिन्दी के इन विभिन्न रूपों के बीच कोई ऐसा रूप होना चाहिए जो सर्व व्यापक, सर्व मान्य हो, हिन्दी के सभी विद्वानों द्वारा प्रयुक्त, व्याकरण दोषों से मुक्त, अधिकांश लोगों द्वारा समझी, लिखी व पढ़ी जाने वाली भाषा हो ताकि ज्यादा से ज्यादा व्यावहारिक रूप में उसका प्रयोग किया जा सके। वास्तव में शिक्षित वर्ग अपने, सामाजिक, साहित्यिक, व्यावहारिक विज्ञान तथा प्रशासकीय कार्यों में जिस भाषा का प्रयोग करता है। भाषा मानक भाषा कहलाती है। मानक भाषा अपने राज्य/राष्ट्र का सम्पर्क भाषा भी होती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि -

मानक हिंदी भाषा उपयोगिता और महत्व, हिन्दी का मानक स्वरूप, मानक भाषा की उपयोगिता, हिंदी शिक्षण, सीटीईटी हिंदी नोट्स, Best Free CTET Exam Notes] Teaching Of HINDI Notes, CTET 2015 EÛam Notes] TEACHING OF HINDI Study Material in hindi medium] CTET PDF NOTES DOWNLOAD, HINDI PEDAGOGY Notes]

हिन्दी का सर्वमान्य, सर्वस्वीकृति, सर्वप्रतिष्ठित रूप ही मानक हिंदी भाषा है। विद्वानों ने मानक भाषा के चार प्रमुख तत्त्व बताएँ हैं।-

1. ऐतिहासिकता – मानक भाषा का गौरवमय इतिहास तथा विपुल साहित्य होना चाहिए।

2. मानकीकरण – भाषा का कोई सुनिश्चित और सुनिर्धारित रूप होना चाहिए।

3. जीवतंता – भाषा साहित्य के साथ-साथ विज्ञान, दर्शन आदि क्षेत्रों में प्रयुक्त की गई हो तथा नवाचार में पूर्ण रूप से सक्षम हो।

4. स्वायतता – भाषा किसी अन्य भाषा पर आश्रित न होकर अपनी स्वतंत्र लिपि, शब्दावली व व्याकरण परखती है।

वर्तमान में मेरठ, सहारनपुर तथा दिल्ली के पास बोली जाने वाली बोली भाषा का परिनिष्ठित रूप है जिसे खड़ी बोली कहा जाता है स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी को मानक भाषा बनाने हेतु काफी प्रयास किया गया और आज हिन्दी का यही रूप प्रचलन में है।

1. राज-काज की भाषा – के रूप में मानक भाषा, बेहद कारगर सिद्ध होती है विभिन्न कार्यालयों, स्कूलों, महाविद्यालयों में यह भाषा संप्रेषण की दृष्टि से काफी सुविधाजनक होती है।

2. ज्ञान-विज्ञान की भाषा – धर्म, दर्शन और विज्ञान आदि के क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग, भाषा की उपयोगिता को बढ़ाता है।

3. साहित्य व संस्कृति की भाषा – साहित्य लेखन तथा विभिन्न औपचारिक अवसरों पर इसी भाषा पर प्रयोग किया जाता है।

4. मनोरंजन के क्षेत्र में – आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा, चलचित्र समाचारपत्र व पत्रिकाओं में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है।

5. शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता – विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अध्यापन, परियोजना कार्य तथा शोध और अनुसंधान हेतु इस भाषा का प्रयोग किया जाता है।

6. अनुवाद की भाषा के रूप में – अच्छे साहित्य के अनुवाद हेतु हिन्दी मानक भाषा का प्रयोग किया जाता है ताकि अधिक से भाषा के उत्कृष्ट साहित्य को जन जन तक पहुंचाया जा सके।

7. कानून व चिकित्सा तकनीकी के क्षेत्र में – प्रत्येक क्षेत्र की अपनी शब्दावली होती है जैसे विज्ञान, कानून, तकनीकी आदि इन शब्दावलियों के मानक रूप तैयार किए जाते हैं, जिससे इस भाषा को बोधगम्य बनाया जा सकता है।

8. सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक – मानक होने के कारण सभी इसका प्रयोग करते हैं।

9. एकता के सूत्र में बाँधती है – राजकाज, शिक्षा, संपर्क की एक मानक भाषा होने से ये लोगों को एक सूत्र में बांधती है।

10. शिष्ट समाज की भाषा – क्षेत्र से बाहर प्रयुक्त होने वाली भाषा में मानक भाषा का अपना महत्व है। इसके माध्यम से पूरे जनसमुदाय से संपर्क स्थापित हो सकता है।

महत्व – मानक हिन्दी भाषा में मानक शब्दों का प्रयोग होने तथा व्याकरण सम्मत भाषा होने से यह भाषा उच्चारण व लेखन दोनों में ही अशुद्धियों से मुक्त होती है तथा समस्त प्रतिष्ठित व औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग किया जाता है, शासन की अधिकृत भाषा होने से संपूर्ण प्रशासन प्रक्रिया में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसका गौरवशाली इतिहास होने से इसमें विपुल साहित्य उपलब्ध होता है। भाषा का स्वरूप सुनिश्चित और सुनिर्धारित होने से इस भाषा को बोलन,े सीखने व समझने में काफी सुविधा होती है। मानक भाषा का एक गुण है कि इसमें गतिशीलता बनी रहती हैं। शिक्षा, कानून, विज्ञान, चिकित्सा, अनुसंधान के क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग न केवल प्रक्रिया को सरस बनाता है वरन उसे सीखने, में भी सहायक होता है। आज विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद मानक भाषा का उपलब्ध कराया जा रहा ह,ै ताकि अधिक से अधिक लोग उस साहित्य से अवगत हो सकें। इसके साथ ही अपनी स्वतंत्र लिपि व शब्दावली तथा व्याकरण होने से इसमें संदेह की संभावना भी नहीं रहती। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि –

किसी भी क्षेत्र प्रदेश में शिक्षा, तकनीकी, कानून, औपचारिक स्थितियों, लेखन, प्रशासन, संबंधी गतिविधियों तथा शिष्ट समाज में प्रयुक्त करने हेतु मानक भाषा का महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह न केवल सुसंस्कृत व साधुभाषा है बल्कि हमारी संप्रेषण क्षमता को भी बढ़ाती है।

महत्त्वपूर्ण कदम

राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' ने क ख ग ज फ पाँच अरबी–फारसी ध्वनियों के लिए चिह्नों के नीचे नुक्ता लगाने का रिवाज आरम्भ किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'हरिश्चन्द्र मैंगजीन' के जरिये खड़ी बोली को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने प्रचलित हिन्दी को 'ठेठ हिन्दी' की संज्ञा दी और ठेठ हिन्दी का प्रचार किया। उन्होंने खड़ी बोली को पद्य की भाषा बनाने के लिए आंदोलन चलाया।

हिन्दी भाषा के मानकीकरण की दृष्टि से द्विवेदी युग (1900-20) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण युग था। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली के मानकीकरण का सवाल सक्रिय रूप से और एक आंदोलन के रूप में उठाया। युग निर्माता द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' पत्रिका के जरिये खड़ी बोली हिन्दी के प्रत्येक अंग को गढ़ने-सँवारने का कार्य खुद तो बहुत लगन से किया ही, साथ ही अन्य भाषा-साधकों को भी इस कार्य की ओर प्रवृत्त किया। द्विवेदीजी की प्रेरणा से कामता प्रसाद गुरु ने 'हिन्दी व्याकरण' के नाम से एक वृहद व्याकरण लिखा।

छायावादी युग (1918-1937) व छायावादोत्तर युग (1936 के बाद) में हिन्दी के मानकीकरण की दिशा में कोई आंदोलनात्मक प्रयास तो नहीं हुआ, किन्तु भाषा का मानक रूप अपने आप स्पष्ट होता चला गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद (1947 के बाद) हिन्दी के मानकीकरण पर नये सिरे से विचार-विमर्श शुरू हुआ, क्योंकि संविधान ने इसे राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया, जिससे हिन्दी पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा। इस दिशा में दो संस्थाओं का विशेष योगदान रहा-इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के माध्यम से 'भारतीय हिन्दी परिषद' का तथा शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का।

संयुक्त वर्ण

खड़ी पाई वाले व्यंजन

खड़ी पाई वाले व्यंजनों के संयुक्त रूप परंपरागत तरीके से खड़ी पाई को हटाकर ही बनाए जाएँ। यथा-

ख्याति, लग्न, विघ्न
कच्चा, छज्जा
नगण्य
कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास
प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य

शय्या
उल्लेख
व्यास
श्लोक
राष्ट्रीय
स्वीकृति
यक्ष्मा
त्र्यंबक

अन्य व्यंजन

क और फ/फ के संयुक्ताक्षर

संयुक्त, पक्का, दफ्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि संयुक्त, (पक्का लिखने में क के नीचे क नहीं) की तरह।

र्, छ, ट, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। यथा–

वांग्मय, लट्टू, बुद्धि, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि। (वांग्मय, बुद्धि, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा नहीं)

संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे। यथा–प्रकार, धर्म, राष्ट्र।

श्र का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे ... **(इसे मैं टाइप नहीं कर पा रहा हूँ।** क्र में क के बदले श लिखा मान लें) के रूप में नहीं लिखा जाएगा। त्र के संयुक्त रूप के लिए पहले त्र और ... (इसे मैं टाइप नहीं कर पा रहा हूँ। क्र में क के बदले त लिखा मान लें) दोनों रूपों में से किसी एक के प्रयोग की छूट दी गई थी। परंतु अब इसका परंपरागत रूप त्र ही मानक माना जाए। श्र और त्र के अतिरिक्त अन्य व्यंजन के संयुक्ताक्षर के नियमानुसार बनेंगे। जैसे –क्र, प्र, ब्र, स्र,] आदि।

हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ इ की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व। यथा–कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित आदि (कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित नहीं)।

टिप्पणी– संस्कृत भाषा के मूल श्लोकों को उद्धृत करते समय संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे। जैसे–संयुक्त, चिह्न, विद्या,

विद्वान, वृद्ध, द्वितीय, बुद्धि आदि। किंतु यदि इन्हें भी उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही लिखा जाए तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

कारक चिह्न

हिंदी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रातिपदिक से पृथक् लिखे जाएँ। जैसे –राम ने, राम को, राम से, स्त्री का, स्त्री से, सेवा में आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रातिपादिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे –तूने, आपने, तुमसे, उसने, उसको, उससे, उसपर आदि (मेरेको, मेरेसे आदि रूप व्याकरण सम्मत नहीं हैं)।

सर्वनाम के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् लिखा जाए। जैसे –उसके लिए, इसमें से।

सर्वनाम और कारक चिह्न के बीच 'ही', 'तक' आदि का निपात हो तो कारक चिह्न को पृथक् लिखा जाए। जैसे –आप ही के लिए, मुझ तक को।

क्रिया पद

संयुक्त क्रिया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक्-पृथक् लिखी जाएँ। जैसे –पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, किया करता था, पढ़ा करता था, खेला करेगा, घूमता रहेगा, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि।

हाइफन (योजक चिह्न)

हाइफन का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है।

द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए। जैसे –राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हँसी-मजाक, लेन-देन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, खेलना-कूदना आदि।

सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन रखा जाए। जैसे –तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे।

तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं। जैसे –भू-तत्त्व। सामान्यतः तत्पुरुष समास में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे –रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

इसी तरह यदि 'अ-निख' (बिना नख का) समस्त पद में हाइफन न लगाया जाए तो उसे 'अनख' पढ़े जाने से 'क्रोध' का अर्थ भी निकल सकता है। अ-नति (नम्रता का अभाव)– अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने न छुआ हो)– अपरस (एक चर्म रोग), भू-तत्त्व (पृथ्वी-तत्त्व)– भूतत्त्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न-भिन्न शब्द हैं।

कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे –द्वि-अक्षर (द्व्यक्षर), द्वि-अर्थक (द्व्यर्थक) आदि।

अव्यय

'तक', 'साथ' आदि अव्यय सदा पृथक् लिखे जाएँ। जैसे –यहाँ तक, आपके साथ।

आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, कब, यहाँ, वहाँ, कहाँ, सदा, क्या, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या, अथवा, तथा, यथा और आदि अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अव्यय हैं। कुछ अव्ययों के आगे कारक चिह्न भी आते हैं। जैसे –अब से, तब से, यहाँ से, वहाँ से, सदा से आदि। नियम के अनुसार अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिए। जैसे –आप ही के लिए, मुझ तक को, आपके साथ, गज भर कपड़ा, देश भर, रात भर, दिन भर, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना, पचास रुपए मात्र आदि।

सम्मानार्थक 'श्री' और 'जी' अव्यय भी पृथक् लिखे जाएँ। जैसे श्री श्रीराम, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी आदि (यदि श्री, जी आदि व्यक्तिवाची संज्ञा के ही भाग हों तो मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे –श्रीराम, रामजी लाल, सोमयाजी आदि)।

समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय जोड़कर लिखे जाएँ (यानी पृथक् नहीं लिखे जाएँ)। जैसे - प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास न होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अत उसे व्यस्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है। 'दस रुपए मात्र', 'मात्र दो व्यक्ति' में पदबंध की रचना है। यहाँ मात्र अलग से लिखा जाए (यानी मिलाकर नहीं लिखें)।

अनुस्वार (शिरोबिंदु/बिंदी) तथा अनुनासिकता चिह्न (चंद्रबिंदु)

अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिकता स्वर का नासिक्य विकार। हिंदी में ये दोनों अर्थभेदक भी हैं। अत हिंदी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे।

अनुस्वार

संस्कृत शब्दों का अनुस्वार अन्यवर्गीय वर्णों से पहले यथावत् रहेगा। जैसे – संयोग, संरक्षण, संलग्न, संवाद, कंस, हिंस्र आदि।

संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण (पंचमाक्षर) के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे – पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा, संत, संध्या, मंदिर, संपादक, संबंध आदि (पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कण्ठ, ठण्डा, सन्त, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध वाले रूप नहीं)। बंधनी में रखे हुए रूप संस्कृत के उद्धरणों में ही मान्य होंगे। हिंदी में बिंदी (अनुस्वार) का प्रयोग करना ही उचित होगा।

यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे –वांग्मय, अन्य, चिन्मय, उन्मुख आदि (वांग्मय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राय नहीं होंगे)।

पंचम वर्ण यदि द्वित्व रूप में (दुबारा) आए तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे – अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंन, संमेलन, संमति रूप ग्रा]य नहीं होंगे)।

अंग्रेजी, उर्दू से गृहीत शब्दों में आधे वर्ण या अनुस्वार के भ्रम को दूर करने के लिए नासिक्य व्यंजन को पूरा लिखना अच्छा रहेगा। जैसे –लिमका, तनखाह, तिनका, तमगा, कमसिन आदि।

संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे – अहं (अहम्), एवं (एवम्), परं (परम्), शिवं (शिवम्)।

अनुनासिकता (चंद्रबिंदु)

हिंदी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।

अनुनासिकता व्यंजन नहीं है, स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में नाक से भी हवा निकलती है। जैसे –आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

चंद्रबिंदु के बिना प्रायः अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है। जैसे –हंस– हँस, अंगना– अंगना, स्वांग (स्व्अंग)–स्वाँग आदि में। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिह्न का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी। जैसे –नहीं, में, मैं आदि। कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथास्थान अवश्य प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण अभीष्ट हो, वहाँ मोटे अक्षरों में उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए। जैसे –कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, में, मैं, नहीं आदि।

विसर्ग (:)

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए। जैसे –'दुःखानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे –'दुख-सुख के साथी'।

तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। यथा–अतः, पुनः, स्वतः, प्रायः, पूर्णतः, मूलतः, अंततः, वस्तुतः, क्रमशः आदि।

'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, । अतः उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी हालत में न किया जाए (अतः, पुनः आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा)।

दुःसाहस/दुस्साहस, निःशब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें द्वितत्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

निस्तेज, निर्वचन, निश्चल आदि शब्दों में विसर्ग वाला रूप (निःतेज, निःवचन, निःचल) न लिखा जाए।

अंतःकरण, अंतःपुर, प्रातःकाल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।

2.7.5 तद्भव/देशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छः लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।

प्रायद्वीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।

विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम:) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे –अत:, यों है –

हल् चिह्न (्)

(्) को हल् चिह्न कहा जाए न कि हलंत। व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देता है, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रूप से व्यंजन है। इस तरह से 'जगत्' हलंत शब्द कहा जाएगा क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वरांत नहीं।

संयुक्ताक्षर बनाने के नियम 2.1.2.2 के अनुसार ङ् छ् ट् ठ् ड् ढ् द् ह् में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसे– चिह्न, बुद्धि, विद्वान आदि में।

तत्सम शब्दों का प्रयोग वांछनीय हो तब हलंत रूपों का ही प्रयोग किया जाए, विशेष रूप से तब जब उनसे समस्त पद या व्युत्पन्न शब्द बनते हों। यथा प्राक् –(प्रागैतिहासिक), वाक्-(वाग्देवी), सत्-(सत्साहित्य), भगवन्-(भगवद्भक्ति), साक्षात्-(साक्षात्कार), जगत्-(जगन्नाथ), तेजस्-(तेजस्वी), विद्युत्-(विद्युल्लता) आदि। तत्सम संबोधन में हे राजन् हे भगवन् रूप ही स्वीकृत होंगे। हिंदी शैली में हे राजा, हे भगवान लिखे जाएँ। जिन शब्दों में हल् चिह्न लुप्त हो चुका हो, उनमें उसे फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए। जैसे - महान, विद्वान आदि, क्योंकि हिंदी में अब 'महान' से 'महानता' और 'विद्वानों' जैसे रूप प्रचलित हो चुके हैं।

व्याकरण ग्रंथों में व्यंजन संधि समझाते हुए केवल उतने ही शब्द दिए जाएँ, जो शब्द रचना को समझने के लिए आवश्यक हों (उत्. नयन = उन्नयन, उत्. लास = उल्लास) या अर्थ की दृष्टि से उपयोगी हों (जगदीश, जगन्माता, जगज्जननी)।

हिंदी में हृदयंगम (हृदयम्. गम), उद्धरण (उत/उद्. हरण), संचित (सम्. चित्) आदि शब्दों का संधि-विच्छेद समझाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसी तरह 'साक्षात्कार', 'जगदीश', 'षट्कोश' जैसे शब्दों के अर्थ को समझाने की आवश्यकता हो तभी उनकी संधि का हवाला दिया जाए। हिंदी में इन्हें स्वतंत्र शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही अच्छा होगा।

स्वन परिवर्तन

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अत: 'ब्रह्ममा' को 'ब्रह्मा', 'चिह्न' को 'चिन्ह', 'उऋण' को 'उरिण' में बदलना

उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राहय नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमशः गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए।

जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है। जैसे –अर्द्ध- अर्ध, तत्त्व-तत्त्व आदि।

'ऐ', 'औ' का प्रयोग

हिंदी में ऐ (ै), औ (ौ) का प्रयोग दो प्रकार के उच्चारण को व्यक्त करने के लिए होता है। पहले प्रकार का उच्चारण 'है', 'और' आदि में मूल स्वरों की तरह होने लगा है, जबकि दूसरे प्रकार का उच्चारण 'गवैया', 'कौवा' आदि शब्दों में संध्यक्षरों के रूप में आज भी सुरक्षित है। दोनों ही प्रकार के उच्चारणों को व्यक्त करने के लिए इन्हीं चिह्नों (ऐ,ै, औ,ौ) का प्रयोग किया जाए। 'गवययया', 'कव्वा' आदि संशोधनों की आवश्यकता नहीं है। अन्य उदाहरण हैं –भैया, सैयद, तैयार, हौवा आदि।

दक्षिण के अय्यर, नय्यर, रामय्या आदि व्यक्तिनामों को हिंदी उच्चारण के अनुसार ऐयर, नैयर, रामैया आदि न लिखा जाए, क्योंकि मूलभाषा में इसका उच्चारण भिन्न है।

अव्वल, कव्वाल, कव्वाली जैसे शब्द प्रचलित हैं। इन्हें लेखन में यथावत् रखा जाए।

संस्कृत के तत्सम शब्द 'शय्या' को 'शैया' न लिखा जाए।

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे –मिलाकर, खा-पीकर, रो-रोकर आदि।

कर + कर से 'करके' और करा. कर से 'कराके' बनेगा।

वाला

क्रिया रूपों में 'करने वाला', 'आने वाला', 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे –मैं घर जाने वाला हूँ, जाने वाले लोग।

योजक प्रत्यय के रूप में 'शरवाला', 'टोपीवाला' (टोपी बेचने वाला), दिलवाला, दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।

'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा, अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली बात आदि में वाला निर्देशक शब्द है। अतः इसे अलग ही लिखा जाए। इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की, दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे –गाँववाला - villager गाँव वाला मकान - village house

श्रुतिमूलक 'य', 'व'

जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ न किया जाए, अर्थात् किए– किये, नई– नयी, हुआ– हुवा आदि में से पहले (स्वरात्मक) रूपों का प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए। जैसे –दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली आदि।

जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्त्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे –स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि (अर्थात् यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा)।

विदेशी ध्वनियाँ

उर्दू शब्द

उर्दू से आए अरबी-फारसी मूलक वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतर हो चुका है, हिंदी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं। जैसे –कलम, किला, दाग आदि (कलम, कघ्ला, दाग नहीं)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो, वहाँ उनके हिंदी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएँ। जैसे –खाना– ख़ाना, राज– राज़, फन– फ़न आदि।

अंग्रेजी शब्द

अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ, ॅ)। जहाँ तक अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से

नए शब्द ग्रहण करने और उनके देवनागरी लिप्यंतरण का संबंध है, अगस्त-सितंबर, 1962 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित भाषाविदों की संगोष्ठी में अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यंतरण के संबंध में की गई सिफारिश उल्लेखनीय है। उसमें यह कहा गया है कि अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि उसके वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत-चिह्न लगाने पड़ें। अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिक-से-अधिक निकट होना चाहिए।

द्विधा रूप वर्तनी

हिंदी में कुछ प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनकी वर्तनी के दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। विद्वतसमाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है। कुछ उदाहरण हैं –गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, सरदी/सर्दी, कुरसी/कुर्सी, भरती/भर्ती, फुरसत/फुर्सत, बरदाश्त/बर्दाश्त, वापस/वापिस, आखिरकार/आखीरकार, बरतन/बर्तन, दुबारा/दोबारा, दुकान/दूकान, बीमारी/बिमारी आदि। इन वैकल्पिक रूपों में से पहले वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

अन्य नियम

शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।

फुलस्टॉप (पूर्ण विराम) को छोड़कर शेष विरामादि चिह्न वही ग्रहण कर लिए गए हैं जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं। यथा –- (हाइफन/योजक चिह्न), - (डैश/निर्देशक चिह्न), –(कोलन एंड डेशधविवरण चिह्न), (कोमा/अल्पविराम), (सेमीकोलन/अर्धविराम), – (कोलन/उपविराम), ? (क्वश्चनमार्क/प्रश्न चिह्न), ! (साइन ऑफ इंटेरोगेशन/विस्मयसूचक चिह्न), ‘ (अपोस्ट्राफी/ऊर्ध्व अल्प विराम), ’ ’ (डबल इन्वर्टेड कोमाज/उद्धरण चिह्न), ‘ ‘ (सिंगल इन्वर्टेड कोमा/शब्द चिह्न). (), ‘ ’, {, (तीनों कोष्ठक), ... (लोप चिह्न), (संक्षेपसूचक चिह्न)/(galin)।

विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया गया है। पर दोनों में यह अंतर रखा गया है कि विसर्ग वर्ण से सटाकर और कोलन शब्द से कुछ दूरी पर रहे।

पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का ही प्रयोग किया जाए। वाक्य के अंत में बिंदु (अंग्रेजी फुलस्टॉप) का नहीं।

भारतीय हिन्दी परिषद

भाषा के सर्वांगीण मानकीकरण का प्रश्न सबसे पहले 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने ही उठाया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई, जिसमें डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. ब्रजेश्वर शर्मा, डॉ. माता प्रसाद गुप्त आदि सदस्य थे। धीरेन्द्र वर्मा ने 'देवनागरी लिपि चिह्नों में एकरूपता', हरदेव बाहरी ने 'वर्ण विन्यास की समस्या', ब्रजेश्वर शर्मा ने 'हिन्दी व्याकरण' तथा माता प्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी शब्द-भंडार का स्थिरीकरण' विषय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।

हिंदी वर्तनी एवं ध्वनियों का मानकीकरण

भारत संघ की राजभाषा घोषित होने के बाद हिंदी ने अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ यथासंभव सामंजस्य रखते हुए एक अखिल भारतीय स्वरूप विकसित किया है। हालांकि एक विस्तृत भूखंड में और बहुभाषी समाज के बीच व्यवहृत होने के कारण कई बार उसमें अनेकरूपता दिखाई पड़ती है जो भाषा के विकास में कई बार बाधक प्रतीत होती है। अत: अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी के प्रयोग, लेखन, टंकण और मुद्रण की जरूरतों तथा कंप्यूटर आदि आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों में हिंदी के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए उसके मानकीकृत रूप की अनिवार्यता स्वाभाविक है। दूसरी ओर हिंदी को गतिशील, जीवंत और समयानुकूल बनाने हेतु भी वर्णमाला का मानकीकरण आवश्यक है। उक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने शीर्षस्थ विद्वानों के साथ व्यापक विचार-विमर्श के बाद हिंदी वर्णमाला और अंकों का मानक रूप निर्धारित किया है। इसके साथ ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1961 में हिंदी वर्तनी में एकरूपता लाने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की थी और उसकी सिफारिशों को स्वीकृत कर 1967 में हिंदी वर्तनी का मानकीकरण नामक पुस्तिका प्रकाशित की थी। इनके अनुसार हिंदी की मानक वर्णमाला और वर्तनी का मानक रूप निम्न प्रकार से है–

मानक हिंदी वर्णमाला

स्वर - अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

अनुस्वार - ं (अं) विसर्ग -: (अ:)

व्यंजन - क ख ग घ ङ च छ ज झ ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़

त थ द ध न प फ ब भ म, र ल व श स ष ह

विशेष संयुक्त व्यंजन - क्ष, त्र, ज्ञ एवं श्र

भारत के संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है, जिसे भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप कहा जाता है –

भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप - १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

संयुक्त वर्णों का निर्माण

हिंदी में उच्चारण को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए कहीं अक्षरों को पूरा बोला जाता है और कहीं आधा। इसके अतिरिक्त दो अक्षरों को मिलाकर भी बोला और लिखा जाता है। इस वैशिष्ट्य के कारण हिंदी भाषा उच्चारण की दृष्टि से अधिक वैज्ञानिक मानी जाती है।

हिंदी में दो तरह के व्यंजन हैं - एक वे जिनके अंत में खड़ी पाई होती है, उदाहरण के लिए - ख ग घ च ज ञ त थ ध न प ब भ म य ल व श ष स और दूसरे वे जिनके अंत में खड़ी पाई नहीं होती है, जैसे क ´ छ ट ठ ड ढ द फ र ह।

खड़ी पाई वाले अक्षरों को आधा करने के लिए उनकी खड़ी पाई को हटा दिया जाता है और दूसरे अक्षर के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे ख्याल, मग्न, विघ्न, बच्चा, उज्ज्वल, ध्वनि, नन्हा आदि। जहाँ खड़ी पाई नहीं हो उन अक्षरों को दूसरे अक्षर के साथ जोड़ते समय हलन्त (्) का प्रयोग करते हैं, जैसे छुट्टी, बुद्धि, वांग्मय आदि। 'क' और 'फ' का आधा रूप भिन्न तरीके से लिखा जाता है जैसे पक्का, दफ्तर आदि।

आधे 'र' को लिखने की पद्धति पहले की तरह ही है और उसे परवर्ती अक्षर के ऊपर रेफ के रूप में लगाया जाता है, जैसे कर्म। आधे अक्षर के साथ पूरे 'र' को जोड़ने की पद्धति भी पहले जैसी ही है, जैसे क्रम, राष्ट्र। 'क्र' में 'क' आधा और 'र' पूरा है। 'ट्र' में 'ट' आधा 'र' पूरा है।

'द' के साथ अन्य अक्षर को जोड़ने के लिए दो पद्धतियां आज भी प्रचलित हैं - द् ध = 'द्ध' या 'द्ध', जैसे बुद्धि या बुद्धि। इसी प्रकार द् व = द्व या द्व जैसे द्वितीय या द्वितीय। द् य = द्य या द्य जैसे विद्या या विद्या।

हिंदी के चार विशेष प्रचलित संयुक्ताक्षर - क्ष त्र ज्ञ श्र वस्तुतः अलग अक्षरों के रूप में प्रयोग किए जा रहे हैं किंतु ये भी दो अक्षरों के मेल से बने हैं, जैसे - क् ष = क्ष, त् र = त्र, ज् ञ = ज्ञ, श् र = श्र

विभक्ति चिह्न

हिंदी के विभक्ति चिह्नों को संज्ञा शब्दों से अलग लिखा जाएगा, जैसे राम ने, मोहन को, विद्यार्थी के लिए। किंतु सर्वनाम के साथ विभक्ति चिह्न को मिलाकर लिखा जाएगा, जैसे मैंने, उसको, आपको, उसपर, उनपर आदि। सर्वनामों के साथ यदि दो विभक्ति चिह्न हों तो पहले को मिलाकर और दूसरे को अलग लिखा जाएगा, जैसे उसके लिए, इनमें से।

सर्वनाम और विभक्ति के बीच 'ही', 'तक' आदि का प्रयोग हो तो विभक्ति को अलग लिखा जाएगा, जैसे आप ही के लिए, मुझ तक को।

पूर्वकालिक प्रत्यय कर को क्रिया के साथ मिलाकर लिखा जाएगा, जैसे जाकर, आकर, पाकर, मिलाकर, सोकर, उठकर, पढ़कर, लिखकर, खा-पीकर, रो-रोकर आदि।

'य' 'व' श्रुति

जहाँ श्रुतिमूलक 'य' या 'व' का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ स्वरात्मक रूपों का ही प्रयोग किया जाएगा, जैसे किए, गए, नई, हुई आदि। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी पर लागू होगा। किंतु जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्त्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन नहीं किया जाएगा, जैसे स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि के रूप में लिखा जाएगा न कि स्थाई, दाइत्व, अव्यईभाव।

अनुस्वार तथा अनुनासिकता चिह्न (चंद्रबिंदु)

मानकीकृत हिंदी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों प्रचलित रहेंगे। पहले संयुक्त व्यंजन में पंचमाक्षर को आधे रूप में सवर्गीय वर्णों के साथ लिखा जाता था, जैसे ग्गा, चञ्चल, ठण्डा, अन्त, सम्पादक आदि। अब इसकी जगह गंगा, चंचल, ठंडा, अंत, संपादक लिखा जाएगा। परंतु यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए अथवा वही पंचमाक्षर दुबारा आए या संधि के नियम लागू होते हैं तो वहाँ पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा, जैसे वांग्मय, अन्य, अन्न, चिन्मय, सम्मति, सम्मेलन, उन्मुख आदि।

अनुनासिकता चिह्न के मामले में दो तरह के नियम प्रचलित हैं। जहाँ अनुस्वार और चंद्रबिंदु के प्रयोग से अर्थ में भिन्नता आती है वहाँ इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उनका सही प्रयोग किया जाए, जैसे अंगना, अंगना, हंस,

हँस आदि। किंतु जहाँ (खासकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो तो चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे घ्में', घ्मैं', घ्नहीं' आदि।

अव्यय

अव्यय को दूसरे शब्द से अलग लिखा जाएगा। हिंदी में अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अनेक अव्यय हैं, जैसे आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, तब, कब, यहाँ, वहाँ, क्यों, क्या, सदा, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, परंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या, अथवा, तथा, यथा, और, प्रति आदि। इन अव्ययों को किसी शब्द के साथ मिलाकर नहीं लिखा जाना चाहिए, जैसे श्री मोहन जी, गांधी जी, पिता जी, आप ही के लिए, अब तक, दिन भर, सदा के लिए, अभी भी आदि। कुछ अव्ययों के आगे विभक्ति के चिह्न भी लगते हैं, जैसे अब से, तब से आदि।

परंतु समस्त पदों में 'प्रति', 'मात्र', 'यथा' आदि अव्यय अलग नहीं लिखे जाते हैं, जैसे प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। इसका कारण समास का नियम है, जिसमें समस्त पद को एक साथ लिखा जाता है।

विदेशी ध्वनियाँ

अरबी-फारसी या अंग्रेजी मूल के वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतरण हो चुका है उन्हें हिंदी के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए, कलम, किला, दाग आदि (कलम, किला, दाग नहीं)। दरअसल अंग्रेज, अरबी, फारसी आदि की मुख्यतः पांच ध्वनियाँ - क, ख, ग, ज और फ हिंदी में आई हैं, जिनका उच्चारण हिंदी के क ख ग ज फ से थोड़ा भिन्न होता है। परंतु अब ये ध्वनियाँ अधिकांश मामलों में हिंदी ध्वनियों के रूप में परिवर्तित हो गई हैं।

अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा (ा) के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाएगा (ऑ, ॅ)।

हिंदी में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके दो-दो रूप प्रचलित हैं, जैसे बहिन-बहन, बिल्कुल-बिलकुल, गरमी-गर्मी, भरती-भर्ती, सरदी-सर्दी,

कुरसी-कुर्सी, वापिस-वापस, दोबारा-दुबारा, दूकान-दुकान, बिमारी-बीमारी, दृष्टव्य-द्रष्टव्य, प्रदर्शिनी-प्रदर्शनी, अत्याधिक-अत्यधिक, अनाधिकार-अनधिकार, पूर्वाग्रह-पूर्वग्रह, कृतित्त्व-कर्तृत्व, ब्रम्हा-ब्रह्मा, चिन्ह-चिह्न, ग्रहीत-गृहीत, अर्द्ध-अर्ध, तत्त्व-तत्त्व आदि। इनमें दूसरे रूप को ही अपनाया जाए।

हिंदी में कुछ संस्कृतमूलक शब्दों में हल् चिह्न का प्रयोग किया जाता है, परंतु हिंदी में वह समाप्त हो चुका है, जैसे विद्वान, महान, प्रणाम आदि में हल् चिह्न नहीं लगाया जाएगा।

पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाएगा न कि (.) का। अन्य विराम चिह्न अंग्रेजी के अनुरूप होंगे, जैसे -, – य ? ! - आदि

हाइफन (-)– द्वंद्व समास में हाइफन रखा जाएगा, जैसे देख-रेख, चाल-चलन, लेन-देन, खाना-पीना, खेल-कूद।

'सा', 'जैसा' आदि के पहले हाइफन लगाया जाएगा, जैसे तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे आदि।

तत्पुरुष समास में हाइफन वहीं लगाया जाएगा जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, जैसे भू-तत्त्व, अ-नख, अ-परस, अ-नति। यहां हाइफन नहीं लगाने से उक्त शब्दों का अर्थ बदल जाता है, जैसे भूतत्त्व का अर्थ है भूत होना, भू-तत्त्व का अर्थ है पृथ्वी-तत्त्व, अ-नख का अर्थ है बिना नख का और अनख का अर्थ है क्रोध, अ-परस का अर्थ है जिसे किसी ने छुआ नहीं हो और अपरस का अर्थ है एक चर्म रोग, अ-नति का अर्थ है नम्रता का अभाव और अनति का अर्थ है थोड़ा। यहाँ हाइफन का विशेष ध्यान रखा जाएगा।

हिंदी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता

हिंदी के संख्यावाचक शब्दों के उच्चारण और लेखन में एकरूपता लाने हेतु केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा निर्धारित मानक रूप निम्न प्रकार से हैं–

1. एक दो तीन चार पाँच छह सात आठ नौ दस
2. ग्यारह बारह तेरह चौदह पंद्रह सोलह सत्रह अठारह उन्नीस बीस
3. इक्कीस बाईस तेईस चौबीस पच्चीस छब्बीस सत्ताईस अट्ठाईस उनतीस तीस
4. इकतीस बत्तीस तैंतीस चौंतीस पैंतीस छत्तीस सैंतीस अड़तीस उनचालीस चालीस

5. इकतालीस बयालीस तैंतालीस चवालीस पैंतालीस छियालीस सैंतालीस अड़तालीस उनचास पचास
6. इक्यावन बावन तिरपन चौवन पचपन छप्पन सतावन अठावन उनसठ साठ
7. इकसठ बासठ तिरषठ चौंसठ पैंसठ छियासठ सड़सठ अड़सठ उनहत्तर सत्तर
8. इकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चौहत्तर पचहत्तर छिहत्तर सतहत्तर अठहत्तर उनासी अस्सी
9. इक्यासी बयासी तिरासी चौरासी पचासी छियासी सतासी अठासी नवासी नब्बे
10. इक्यानवे बानवे तिरेानवे चौरानवे पचानवे छियानवे सतानवे अठानवे निन्यानवे सौ

3

हिन्दी भाषा साहित्य

भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य है और जब साहित्य होता है तब भाषा स्वत: ही विकासमान होती है। वर्तमान में हिन्दी भाषा दुनिया भर में अपनी पहचान बना चुकी है। इस विकास का एकमात्र आधार है समन्वय। हिन्दी भाषा ने न केवल भारत की अपितु विश्व की अनेक भाषाओं के शब्दों से अपने आपको परिपूर्ण किया और आज भी अनेक शब्दों को अपने अंदर समाहित कर रही है। यदि हम हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो अनेक पहलू निकलकर आएँगे।

हिन्दी भाषा का विकास क्रम - हिन्दी साहित्य की दृष्टि से सम्वत् 769 से 1318 के काल को आदिकाल की संज्ञा दी गयी है। इस काल में संस्कृत, अपभ्रंश (प्राकृत एवं पालि) एवं हिन्दी भाषा, साहित्य की भाषाएँ थीं। संस्कृत उच्च एवं राजवर्ग की, अपभ्रंश धर्म प्रसार की एवं हिन्दी लोक प्रवृत्ति की भाषा बन गयी थी। इस काल में संस्कृत में व्याकरण का अनुशासन चरम पर था इस कारण संस्कृत भाषा का विस्तार ठहर गया और धर्म प्रसार के लिए सरल भाषा का प्रयोग करने की आवश्यकता अनुभव की गयी इस कारण अपभ्रंश या प्राकृत भाषा का निर्माण होने लगा। इस काल में तुर्की, फारसी और अरबी भाषा भारत में आ चुकी थी। भारत में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ भी विद्यमान थीं। अत: संस्कृत और प्राकृत के बाद हिन्दी भाषा तीव्रता से विस्तार लेने लगी। हिन्दी भाषा चूँकि सभी भाषाओं के मेल से बनी थी इस कारण इसमें शब्दों

की प्रचुरता रही और इसी कारण यह भाषा आगे चलकर साहित्य की भाषा बनी।

अंग्रजों के आगमन के बाद सन् 1780 से अंग्रेजी भाषा को स्थापित करने के लिए शिक्षा प्रणाली विकसित की गयी और कॉलेज खुलने प्रारम्भ हुए। अत: कुछ नवीन शब्द अंग्रेजी के भी हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए। विद्वानों का मत है कि संस्कृत भाषा में जब से व्याकरण की अनिवार्यता लागू की गयी तब से संस्कृत भाषा के विस्तार पर विराम लग गया। अत: हिन्दी भाषा के विकास में अन्य भाषाओं एवं व्याकरण का कठोर अनुशासन नहीं होने से वह वर्तमान तक विस्तार लेती चली गयी। स्वतंत्रता के समय हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता मिली। यही कारण है कि आज हिन्दी सम्पूर्ण भारत में बोली और समझी जा रही है। हिन्दी आज भारत में 18 करोड लोगों की मातृभाषा है और 30 करोड लोगों ने द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी को स्थान दिया है। विदेशों में भी अमेरिका, मारिशस, साउथ अफ्रीका, यमन, युगाण्डा, सिंगापुर, नेपाल, न्यूजीलेण्ड, जर्मनी आदि देशों में भी भारतीय मूल के निवासियों की भाषा हिन्दी ही है। भारत से गए अप्रवासी भारतीयों ने भी हिन्दी को अपनी भाषा बनाया हुआ है। अत: आज हिन्दी दुनिया के प्रत्येक कोने में बोली जाती है। इतना ही नहीं 1999 के एक सर्वेक्षण के आधार पर हिन्दी विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में पाँचवें स्थान पर है और 1998 के एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार हिन्दी भाषा द्वितीय स्थान पर है। हिन्दी में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का भी स्थान है तथा अंग्रेजी के शब्दों को भी सम्मिलित करने के बाद इसकी शब्द संख्या का भी निरन्तर विस्तार हो रहा है। अत: आज हिन्दी में सर्वाधिक शब्द संख्या है।

हिन्दी भाषा के विभिन्न काल - डॉ. नगेन्द्र की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' और डॉ. लक्ष्मी लाल वैरागी की पुस्तक 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' तथा इन्टरनेट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार हिन्दी भाषा के तीन प्रमुख काल माने जाते हैं।

आदिकाल - डॉ. नगेन्द्र के अनुसार संस्कृत भाषा का काल ईसा पूर्व 1500 से 500 ई.पू. का है, पालि भाषा का काल 500 से पहली ईस्वीं तक, अपभ्रंश काल 500 से 1000 ई. तक और हिन्दी का काल 1000 ई. से आगे का काल है। अत: हिन्दी का आदिकाल 1000 से 1500 ई. माना जाता है।

मध्यकाल - 1500 से 1800 ई. तक का काल मध्यकाल माना गया है।

आधुनिक काल – 1800 से वर्तमान तक का काल आधुनिक काल माना गया है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'स्वतंत्रता के समय अन्य देश भी स्वतंत्र हुए और लोकतंत्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुईं। व्यक्ति या तो व्यवस्था का पुर्जा हो गया या प्रविधि का। उसका अपना व्यक्तित्त्व और पहचान खो गयी। इस खोऐ हुए व्यक्तित्त्व की खोज प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है।'

डॉ. वैरागी ने भी अपनी पुस्तक में हिन्दी के इन कालों की व्याख्या की है और दोनों ही विद्वानों ने एक अलग व्याख्या भी की है, जिसके अनुसार निम्न कालखण्डों का विवरण दिया है– रीतिकाल, वीरगाथाकाल, चारणकाल, सिद्ध सामन्त काल, छायावाद और प्रगतिवादी काल।

हिन्दी भाषा जब अस्तित्त्व में आयी तब भारतीय राजनीति का संक्रमण काल था। इस कारण भारतीय साहित्य या हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ। राजनैतिक गुलामी के कारण साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। जहाँ साहित्य समाज की वास्तविकता से जनता को अवगत कराता था, उनका मार्गदर्शन करता था, प्रेरित करता था वहीं साहित्य चारणों की परम्परा में चला गया। मुगलकाल में रीति सिद्ध और रीति मुक्त कवियों का उदय हुआ। अंग्रेजों के काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग प्रारम्भ हुआ जिसे आधुनिक हिन्दी का काल भी कहा जाता है। भारतेन्दु का काल 1850 से 1884 का काल माना जाता है और इसके बाद

प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वर नाथ रेणु, सचिदानन्द वात्स्यायन, महादेवी आदि का काल रहा। इस काल में अंग्रेजों ने अंग्रेजी और ईसाइयत के प्रचार के लिए कॉलेज खोलने प्रारम्भ किए। समाचार पत्रों ने भी अपनी जगह बनाना प्रारम्भ किया, इस कारण साहित्य पद्य से निकलकर गद्य तक आ गया। अतः भारतेन्दु के काल को आधुनिक काल कहा गया। इसमें निबंध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखा चित्र, समालोचना आदि का विकास हुआ।

छायावाद का काल 1918 से 1936 का काल माना गया। इस काल में आत्माभिव्यक्त स्वच्छंद काव्य की रचना हुई। श्री मुकुटधर पाण्डे ने कहा कि यह काव्य नहीं है अपितु कविता की छाया मात्र है। इसी नाम को आगे चलकर स्वीकृति मिली और छायावाद के नाम से एक कालखण्ड जाना गया।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद आया। डॉ. वैरागी लिखते हैं कि 'एक वाक्य में कहें तो जो चिन्तन के क्षेत्र में मार्क्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद

है, साम्यवाद की दिशा में मार्क्सवाद के सहारे आगे बढ़ना प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना, शोषित वर्ग की दुरवस्था का वर्णन करना और शोषण तथा शोषित वर्ग के विरुद्ध शोषितों को उत्तेजित करना है।'

स्वतंत्रता के बाद जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला, तब अनेक हिन्दी भाषा के साहित्यकारों का जन्म हुआ। लेकिन इस काल में प्रगतिवादी साहित्य का बोलबाला रहा। यह वाद सामूहिकतावाद और निश्चयवाद के विरुद्ध खडा था। उनकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र था। यहाँ मैं एक घटना के प्रति ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगी जिसे डॉ. नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक में भी लिखा है, कि 1893 में जब शिकागो में विश्वधर्म संसद को विवेकानन्द ने सम्बोधित किया तब न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ने लिखा था कि 'विश्व धर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान् देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता है'। डॉ. नगेन्द्र आगे लिखते हैं कि 'पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत देशवासियों को पहली बार यह अहसास हुआ कि हमारी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें संसार के समक्ष गौरवपूर्ण ढंग से रखा जा सकता है। अत: जब इस देश में प्रगतिवाद के नाम पर धर्मबंधन से मुक्त स्वतंत्रता को साहित्य में स्थान मिल रहा था, उस समय एक वर्ग भारतीय श्रेष्ठ परम्पराओं एवं संस्कृति के सिद्धान्तों को साहित्य में स्थान दे रहा था।'

वर्तमान में एक तरफ प्रगतिवाद के नाम पर व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतंत्रता की बात की जा रही है तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति के अनुरूप परिवारवाद को व्यक्ति से बड़ा माना जा रहा है। प्रगतिवाद के कारण ही शोषित और शोषक की नवीन परिभाषाएँ दी गयीं और पश्चिम को शोषण रहित, स्वतंत्र समाज का दर्जा दिया गया और भारत को शोषक एवं पुरातनपंथी का दर्जा दिया गया। यहाँ एक बात और विचारणीय है कि लार्ड कॉर्नवालिस ने सन् 1793 में बंगाल, बिहार, उडीसा में जमींदारी प्रथा लागू कर जमीन को व्यक्तिगत सम्पति के रूप में बदल दिया। इसी के साथ पंचायत व्यवस्था भी समाप्त की गयी और उसकी जगह कचहरी आ गयी। इसी तरह जंगलों पर भी जनजातीय समाज का अधिकार समाप्त कर दिया गया। अत: भारतीय समाज में शोषण की परम्परा अंग्रेजों के काल के बाद प्रारम्भ हुई। आज प्रगतिवादी भारतीय परम्पराओं को शोषण का कारण मानते हैं जबकि भारतीय परम्परा में न तो महिलाओं को पर्दे में रखा जाता

था और न ही मैला ढोने की परम्परा थी। ये दोनों ही परम्परा मुगलकाल के बाद आयीं।

अत: वर्तमान साहित्यकार को इतिहास का ज्ञान हुए बिना वह प्रगतिवाद की व्याख्या नहीं कर सकता। विवेकानन्द ने इसीलिए दुनिया को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराया था। आज इसी प्रकार महिला विमर्श और दलित विमर्श के नाम पर एक वर्ग संघर्ष खडा किया जा रहा है। मजेदार बात तो यह है कि महिला विमर्श, पुरुष लिख रहे हैं और दलित विमर्श अदलित लिख रहे हैं। साहित्य समाज के मध्य एकता स्थापित करने की बात करता है, लेकिन आज प्रगतिवाद के नाम पर संघर्ष को स्थापित करने की बात की जा रही है। इसी कारण महिलाओं और दलितों के अधिकारों को दिलाने के स्थान पर महिलाओं को केवल महिला बनाना और दलितों को भी दलित ही रखते हुए वर्ग संघर्ष को हवा दी जा रही है।

अन्त में, मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि हिन्दी भाषा और साहित्य वर्तमान युग की आवश्यकता है। आज के युवा को जब तक हिन्दी साहित्य के साथ नहीं जोडा जाएगा तब तक दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। प्रगतिवाद के नाम पर व्यक्ति की भौतिक और मानसिक प्रगति की बात की जानी चाहिए और इसके लिए भारतीय साहित्य का पुनर्लेखन आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य की रचना विदेशी आक्रमणों, युद्धों तथा गुलामी की परिस्थितियों में हुई। मौखिक परम्परा में जो कुछ सामग्री शेष रही, वह भी बहुत तथा भाषा की दृष्टि से इतनी बदल गयी कि उसका मूल रूप ही समाप्त हो गया। इस काल में हिन्दी साहित्य मुख्यत: तीन क्षेत्रों से सम्बन्धित रहा है – राज्य, धर्म और लोक। राजदरबार में हिन्दी से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त तो होती है, किन्तु रचनाओं में क्षेपकों के बाहुल्य के कारण वीरगाथात्मक रासो ग्रन्थों की प्रामाणिकता समाप्त हो गयी है। धर्म के क्षेत्र में अध्यात्म, भक्ति सम्बन्धी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं, ये अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक हैं। साहित्य प्रेमियों ने बहुत सी हस्तलिखित रचनाओं को सुरक्षित रखा है तथा बहुत सा साहित्य मौखिक परम्परा में सुरक्षित रखा है।

हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित सामग्री का संचयन सर्वप्रथम विलियम जोन्स 1784 ई., द्वारा स्थापित बँगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने किया। इसके द्वारा

लगभग 600 संस्कृत तथा हिन्दी ग्रन्थों का पता लगाया गया। सोसाइटी की तरफ से डा0 ए0 टेसिटरी ने खोज कार्य किया, उन्होनें 'छन्द रावजयसती' तथा 'कृष्ण-रुक्मिणी बेलि' का संपादन भी किया। पश्चात वाराणसी में 1893 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। इस संस्था की सूचनाओं से इतिहास-रचना के लिये अपरिमित सामग्री उपलब्ध हुई। इस सँस्था से जुड़कर डा0 'यामसुन्दरदास, श्याम बिहारी मिश्र, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हीरालाल जैन, प0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र आदि विद्वानों ने खोज कार्य किया।

उन्नीसवीं शती से पूर्व विभिन्न कवियों और लेखकों द्वारा अनेक ऐसे ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी जिनमें हिन्दी के विभिन्न कवियों के जीवन-वृत्त एवं कृतित्त्व का परिचय दिया गया है जैसे- कालिदास कृत 'हजारा'1718, बलदेवकृत 'सत्कविगिरा विलास'1746, सुब्बासिंह कृत 'विद्वन्मोदतरंगिणी'1817, कृष्णान्द व्यासदेव कृत 'रागसागरोद्भव' और 'रागकल्पद्रुम' 1843, सरदारकवि कृत 'श्रृंगार संग्रह'1848, भारतेन्दु कृत 'सुन्दरी तिलक'1869, आदि -- किन्तु इनमें काल-क्रम, सन-सम्वत आदि का अभाव होने के कारण इन्हें इतिहास की सँज्ञा नहीं दी जा सकती।

वस्तुतः हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन का पहला प्रयास एक फ्रेंच विद्वान 'गार्सां द तासी' ने किया। जिन्होंने फ्रेंच भाषा में 'हस्त्वार द ला लितरेत्युर घ्न्दुई हिन्दुस्तानी' ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में हिन्दी और उर्दू के ज्ञात कवियों का विवरण अकारादि क्रम से दिया गया है। इसका प्रथम भाग 1839 ई. में तथा द्वितीय भाग 1847 ई. में प्रकाशित हुआ, फिर 1871 ई. में इसका संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ। तासी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए शिव सिंह सेंगर ने 1883 ई. में 'शिव सिंह सरोज' की रचना की। इस ग्रन्थ में लगभग 1000 कवियों कवियों का जीवन-चरित्र एवं उनकी कृतियों के नमूने प्रस्तुत किये गये हैं।

सन 1888 में एशियाटिक सोसायटी आफ बँगाल की पत्रिका के विशेषाँक के रूप में जार्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित 'द माडर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' का प्रकाशन हुआ, जो नाम से इतिहास न होते हुए भी हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास कहा जा सकता है। इसमें लेखक ने कवियों और लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इतिहास में कवियों को अँक देने वाली प्रणाली ग्रियर्सन की देन है। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के काव्य को 'स्वर्ण-युग' की संज्ञा देने वाले

ग्रियर्सन ही हैं। सामग्री को यथासम्भव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करना, प्रत्येक काल के शेष कवियों का अध्यायविशेष के अन्त में उल्लेख करना, सम्बन्धित सांस्कृतिक परिस्थितियों और प्रेरणा-स्रोतों का उदघाटन करना, हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम का निर्धारण - चारण-काव्य, धार्मिक-काव्य, प्रेम-काव्य और दरबारी-काव्य के रूप में करना - आदि ग्रियर्सन की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

हिन्दी-साहित्येतिहास की परम्परा में मिश्रबन्धुओं द्वारा रचित 'मिश्रबन्धु विनोद' उल्लेख्नीय है। यह चार भागों में विभक्त है। प्रथम तीन भाग 1913 ई. में प्रकाशित हुए तथा चतुर्थ भाग 1934 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें लगभग पांच हजार कवियों को स्थान दिया गया है और इसे आठ से भी अधिक कालखण्डों में विभाजित किया गया है। इतिहास के रूप में इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें कवियों के विवरणों के साथ-साथ साहित्य के विविध अंगों पर प्रकाश डाला गया है। कवियों की जीवनी तथा आलोचनाओं के विवरण संग्रहीत किये गये हैं। कवियों का सापेक्षिक महत्व निर्धारित करने के लिये उनकी श्रेणियाँ भी बनाई गयीं हैं। काव्य समीक्षा के क्षेत्र में परम्परागत पद्धति ही ग्रहीत हुई है। अधिकाँश परवर्ती इतिहासकारों ने इस इतिहास-ग्रन्थ का आश्रय ग्रहण किया है।

सन् 1929 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित इतिहास-ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा, जो मूलतः काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी- शब्द-सागर' की भूमिका में लिखा गया था, जिसे बाद में पुस्तक का रूप दिया गया। इसके प्रारम्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा -- ' जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का सँचित प्रतिविम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामँजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत-कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।'

आचार्य शुक्ल ने हिन्दी का आविर्भाव काल सातवीं शताब्दी से मानते हुए भी हिन्दी साहित्य का आरम्भ विक्रमी सं0 1050 से माना तथा सम्पूर्ण हिन्दी साहित्येतिहास को चार काल-खण्डों में विभक्त किया। प्रत्येक काल का नामकरण उसकी प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर ही किया। आचार्य शुक्ल ने कवियों और साहित्यकारों के जीवन-चरित सम्बन्धी इतिवृत्त के स्थान पर उनकी रचनाओं

के साहित्यिक मूल्याँकन को प्रमुखता दी है। इस क्षेत्र में उन्होंने चुने हुए कवियों को ही लिया है और उनके विवेचन में उनकी साहित्यिक महत्ता व लघुता का ध्यान रखते हुए उन्हें तदनुसार ही स्थान दिया है। आचार्य द्वारा इतिहास की रचना उस समय हुई थी जबकि हिन्दी का अधिकाँश प्राचीन साहित्य अज्ञात, लुप्त एवं अप्रकाशित अवस्था में पड़ा हुआ था, उसका प्रामाणिक अध्ययन-विश्लेषण नहीं हो पाया था। उस युग की सीमित सामग्री को जो रूप उन्होंने विवेचनात्मक तौर पर दिया है, वह निश्चय ही उनकी स्वतंत्र चेतना एवं विवेचना शक्ति का परिचायक है। उनका रसवादी सिद्धांत लोकमंगल भावना की कसौटी, काव्य में मानव-समाज का प्रतिविम्ब तथा साहित्यिक धारा को विकसित करने वाली शक्तियों का विश्लेषण आदि काव्य, कवि तथा युग के उत्कर्ष के निर्धारण के आधार रूप में गृहीत हुए हैं। विभिन्न काव्यधाराओं और युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों के निर्धारण में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है।

उन्होंने भक्ति काल को चार भागों में बाँटा है - पहले निर्गुण-धारा और सगुण-धारा में फिर प्रत्येक को दो-दो शाखाओं - ज्ञानाश्रयी शाखा व प्रेमाश्रयी शाखा तथा रामभक्तिशाखा व कृष्णभक्तिशाखा में। रीतिग्रन्थकारों के आचार्यत्व एवं कवित्व का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उनकी उपलब्धियों तथा सीमाओं के सम्बन्ध में जो निर्णय आचार्य शुक्ल ने दिये, वे बहुत कुछ अंशों में आज भी मान्य हैं। भक्तिकाल की ही भांति रीतिकाल में भी नामकरण, सीमा-निर्धारण, परम्पराओं व काव्यधाराओं का वर्गीकरण वर्गविशेष के एकपक्षीय बोध का सूचक है जिससे इस काल के रीतिमुक्त प्रेममार्गी कवियों, वीररसात्मक काव्यों के रचयिताओं तथा राजनीति एवं वैराग्य सम्बन्धी मुक्तकों के रचयिता कवियों के साथ न्याय नहीं हो पाता। उन्होंने साहित्यिक परम्पराओं और प्रवृत्तियों को युगविशेष की चित्तवृत्ति के प्रतिविम्ब के रूप में ही ग्रहण किया, उन तत्त्वों और स्रोतों की उपेक्षा की जिनका सम्बन्ध पूर्व प्रम्परा से है। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने पूरे मध्यकाल की विभिन्न धाराओं और प्रवृत्तियों को तदयुगीन मुस्लिम प्रभाव की देन के रूप में स्वीकार कर लिया - जैसे भक्ति-आंदोलन तदयुगीन निराशा की देन है, संत-मत इस्लाम के एकेश्वरवाद के प्रभाव का सूचक है, प्रेमाख्यान-परम्परा सूफी मसनवियों से अनुकृत है, आदि। वस्तुतः संस्कृत साहित्य की पौराणिक परम्पराओं, प्राकृत-अपभ्रंश के प्रेमाख्यानों व मुक्तकों की धाराओं, सिद्धों व नाथपंथियों की गुह्य वाणियों की उपेक्षा करके मध्यकालीन हिन्दी-काव्य की विभिन्न काव्यधाराओं के वर्तमान स्वरूप की आलोचना भले की जा सके,

किन्तु उसके आधार-स्रोतों का अनुसन्धान और उनके विकास-क्रम की ऐतिहासिक व्याख्या सम्भव नहीं है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का इतिहास' में भाषा और साहित्य का आलोचनापरक विकास प्रदर्शित किया है। उन्होंने स्वदेशी साहित्य की महिमा का गुणगान किया है।

आचार्य शुक्ल के लगभग एक दशाब्दी बाद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' प्रस्तुत की। इसमें आचार्य द्विवेदी ने परम्परा का महत्व स्थापित करते हुए उन धारणाओं का खण्डन किया, जो युगीन प्रभाव के एकांगी दृष्टिकोण पर आधारित थीं। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के अनन्तर आचार्य द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य: उदभव और विकास', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' आदि इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। हिन्दी साहित्य के इतिहास को विशेषत: मध्यकालीन काव्य के स्रोतों व पूर्व परम्पराओं के अनुसंधान तथा उनकी अधिक सहानुभूतिपूर्ण व यथातथ्य व्याख्या करने की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी का योगदान अप्रतिम है। आचार्य शुक्ल की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को सबल प्रमाणों के आधार पर उन्होंने खण्डित किया है। निष्कर्ष रूप में जहाँ द्विवेदीजी ने परम्परा पर बल दिया है, वहाँ आचार्य शुक्ल ने युग-स्थिति पर, । अत: दोनों विद्वानों के मत परस्पर पूरक हैं।

आचार्य द्विवेदी के साथ-साथ ही इस क्षेत्र में डा0 रामकुमार वर्मा अवतरित हुए। इनका 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' सन 1938 ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में सं. 750 से 1750 विक्रमी तक की कालावधि को ही ग्रहण किया गया है। डा0 वर्मा ने इतिहास को सात वर्गों में विभक्त किया है। उन्होंने स्वयंभू को हिन्दी का पहला कवि मानते हुए हिन्दी साहित्य का आरम्भ सं0 750 विक्रमी से स्वीकार किया है। काल-विभाजन एवं नामकरण करने में आचार्य शुक्ल का अनुसरण किंचित परिवर्तन के साथ किया है। अनेक कवियों के काव्य-सौन्दर्य का आख्यान करते समय डा0 वर्मा की लेखनी काव्यमय हो उठी है। शैली की सरसता एवं प्रवाहात्मकता के कारण इनका इतिहास लोकप्रिय हुआ है।

सन् 1935 में डा0 गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' लिखा। डा0 सुमनराजे इन्हें साहित्य में वैज्ञानिक पद्धति का अनुसँधाता एवं प्रयोक्ता मानती हैं। डा0 गुप्त ने हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में 'भरतेश्वर बाहुबली' के रचयिता शालिभद्र सूरि को मान्यता दी है। वे बीसलदेव रासो,

पृथ्वीराज रासो आदि को 1350 ई. के पूर्व की रचना मानते हुए भी विकास-क्रम में मध्यकाल की निश्चित सीमा स्वीकार करते हैं। जिससे इसमें चरितकाव्यों का निर्णय, सूफी काव्य परम्परा और नाथपंथ का समुचित विवेचन नहीं हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को सही पृष्ठभूमि नहीं उपलब्ध हो पायी है।

डा0 रामखेलावन पाण्डेय ने 'हिन्दी साहित्य का नया इतिहास' नामक ग्रन्थ लिखा। इनका साहित्येतिहास सम्बन्धी विचार नवीन तथा कलात्मक है। इनका कहना है कि उन अंतरँग वृत्तियों और स्थितियों का अन्वेषण करना होगा, जिनके माध्यम से निर्दिष्टि अवधि की अंतरंग सांस्कृतिक चेतना और साहित्य-बोध की निर्दिष्टता की जा सके।

अन्य परवर्ती इतिहासकारों ने कुछ ऐसे शोध प्रबन्ध व समीक्षापरक ग्रन्थ लिखे जो हिन्दी साहित्य के इतिहास की आंशिक रूप में नूतन व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। डा0 मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', डा0 वासुदेवसिंह कृत 'हिन्दी साहित्य का उदभवकाल', परशुराम चतुर्वेदी कृत 'उत्तरी भारत की संत परम्परा', डा0 विजयेन्द्र स्नातक का 'राधावल्ल्भ सम्प्रदाय और उसका साहित्य', पं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र का 'हिन्दी साहित्य का अतीत', श्री चन्द्रकांत बाली का 'पंजाब-प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास', डा0 टीकमसिंह तोमर का 'हिन्दी वीरकाव्य', डा0 केसरी नारायण शुक्ल, डा0 श्री कृष्णलाल, डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एवं भोलानाथ तिवारी के आधुनिक काल सम्बन्धी विभिन्न शोध-प्रबन्ध, डा0 सियाराम तिवारी का 'मध्यकालीन खण्डकाव्य', डा0 इन्द्रपालसिंह का 'रीति कालीन प्रबन्ध काव्य', डा0 सरला शुक्ल और डा0 हरिकान्त श्रीवास्तव आदि के प्रेमाख्यान सम्बन्धी शोध प्रबन्ध आदि महत्वपूर्ण हैं।

कालविशेष के इतिहास-लेखन की परम्परा में डा0 बच्चनसिंह ने 'आधुनिक साहित्य का इतिहास' लिखा है। कुछ विद्वानों ने साहित्येतिहास के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों तथा उसके विभिन्न काल-खण्डों की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने उद्देश्य से अनेक नूतन प्रयास किये हैं, जिनमें डा0 सुमनराजे की 'साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप', डा0 राममूर्ति त्रिपाठी की 'आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', डा0 शिव कुमार मिश्र की 'हिन्दी साहित्येतिहास के सिद्धान्त', डाओ शम्भूनाथसिंह की 'हिन्दी साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि' आदि कृतियाँ विशेषत: उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार ज्यों-ज्यों साहित्य-लेखन की परम्परा आगे बढ़ती जाती है तथा साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में नये-नये तथ्यों का उदघाटन होता जा रहा है, त्यों-त्यों

साहित्येतिहासकार का कार्य भी गुरुतर होता जा रहा है। हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की परम्परा सर्वथा नवीन ऐतिहासिक दृष्टि को खोजती और प्राप्त करती हुई नव-तत्त्व विवेचन की ओर अप्रतिहत रूप से अग्रसर है। नित्य नवीनता की उपलब्धि एवं उसका वैज्ञानिक आकलन ही साहित्यकार का विशिष्ट दायित्व है।

काल-विभाजन और नामकरण

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में काल-विभाजन के लिये प्रायः चार पद्धतियों का अवलम्ब लिया गया है। पहली पद्धति के अनुसार, सम्पूर्ण इतिहास का विभाजन चार काल खण्डों में किया गया है।

आदिकाल
भक्तिकाल
रीतिकाल
आधुनिककाल

आचार्य शुक्ल द्वारा और उनके अनुसरण पर नागरीप्रचारिणी सभा के इतिहास में, इसी को ग्रहण किया गया है। दूसरे क्रम के अनुसार केवल तीन युगों की कल्पना ही विवेकसम्मत है।

आदिकाल
मध्यकाल
आधुनिककाल

भारतीय हिन्दी परिषद के इतिहास में इसे ही स्वीकार किया गया है और डा0 गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने वैज्ञानिक इतिहास में इसी का अनुमोदन किया है। इसके पीछे तर्क यह है कि मध्यकालीन साहित्य की चेतना प्रायः एक है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में या उसके आगे-पीछे उसमें कोई ऐसा मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ जिसके आधार पर युग-परिवर्तन की मान्यता सिद्ध की जा सके। संत-काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य, रीतिकाव्य आदि की धाराएँ पूरे मध्यकाल में पाँच शताब्दियों तक अखण्ड रूप से प्रवाहित होती रहीं, उनमें मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। तीसरी पद्धति साहित्य का विभाजन विधा-क्रम से करती है। इसका आधार यह है कि समस्त साहित्य-राशि का एकत्र अध्ययन करने की अपेक्षा कविता तथा गद्य-साहित्य की विविध विधाओं के इतिहास का वर्गीकृत अध्ययन साहित्य-शास्त्र के अधिक अनुकूल है। इनके अतिरिक्त एक पद्धति और है जो शुद्ध कालक्रम के अनुसार

वस्तुगत विभाजन को ही अधिक यथार्थ मानती है। इसके प्रवक्ताओं का तर्क है कि किसी विचारधारा अथवा साहित्यिक दृष्टिकोण का आरोपण करने से परिदृष्य विकृत हो जाता है और यथार्थ-दर्शन में बाधा पड़ती है - अतः स्वाभाविक कालक्रम के अनुसार ही सामग्री का विभाजन करना समीचीन है।

जार्ज ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन करने का प्रयास किया। काल-विभाजन पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा 'सामग्री को यथासम्भव काल-क्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वह सर्वत्र सरल नहीं रहा है और कतिपय स्थलों पर तो यह असम्भव सिद्ध हुआ है। अतएव वे कवि, जिनके समय मैं किसी भी प्रकार स्थिर नहीं कर सका, अन्तिम अध्याय में...दे दिये गये हैं।....प्रत्येक अध्याय सामान्यतया एक काल का सूचक है। भारतीय भाषा-काव्य के स्वर्णयुग 16वीं 17वीं शती पर मलिक मुहम्मद की कविता से प्रारम्भ करके ब्रज के कृष्णभक्त कवियों, तुलसीदास के ग्रन्थों और केशव द्वारा स्थापित कवियों के रीति सम्प्रदाय को सम्मिलित करके कुल 6 अध्याय हैं जो पूर्णतया समय की दृष्टि से विभक्त नहीं हैं, बल्कि कवियों के विशेष वर्गों की दृष्टि से बंटे हैं।' अपका काल-विभाजन इस प्रकार है--

चारणकाल 700 से 1300 ई. तक
पन्द्रहवीं शती का पुनर्जागरण
जायसी की प्रेम कविता
व्रज का कृष्ण सम्प्रदाय
मुगल दरबार
तुलसीदास
रीति सम्प्रदाय
तुलसीदास के अन्य परवर्ती
अठारहवीं शताब्दी
महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान

ग्रियर्सन के इस वर्गीकरण में दूसरे, पाँचवें, नौवें तथा दसवें नामकरण में ऐतिहासिकता का प्राधान्य है, साहित्यिकता का नहीं, जबकि साहित्य इतिहास के काल-विभाजन में साहित्यिक प्रवृत्तियों पर ही बल होना चाहिये।

इसके उपरान्त मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में काल-विभाजन का प्रयास किया, जो जार्ज ग्रियर्सन के काल-विभाजन की तुलना में कहीं अधिक प्रौढ़, विकसित तथा तर्कसंगत है, यथा-

आरम्भिक काल 700 से 1444 वि0 तक।
माध्यमिक काल 1445 से 1680 वि0 तक।
अलंकृत काल 1681 से 1889 वि0 तक।
परिवर्तन काल 1890 से 1925 वि0 तक।
वर्तमान काल 1926 से अबतक।

मिश्रबन्धुओं का काल-विभाजन पद्धति की दृष्टि से सम्यक एवं सरल है, परन्तु नामकरण में एकरूपता का अभाव है, क्योंकि 'अलंकृत काल' नाम साहित्य की आन्तरिक प्रवृत्ति अथवा वर्ण्यविषय अथवा कवियों के सम्प्रदाय विशेष का द्योतन करता है, जबकि पहला, दूसरा और चौथा नाम विकासावस्था को व्यक्त करता है तथा अन्तिम युग विशेष का संकेतमात्र ही देता है। इतना ही नहीं वरन अपभ्रंश युग को हिन्दी साहित्य का आदिकाल मानना भाषा वैज्ञानिक भूल भी है।

इसके उपरान्त 1920 ई. में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर उनका नामकरण इस प्रकार किया है--

वीरगाथा काल
भक्तिकाल
रीतिकाल
आधुनिक काल

इनमें से भक्तिकाल और आधुनिककाल को तो यथावत स्वीकार कर लिया गया है, परन्तु वीरगाथा काल और रीतिकाल के विषय में विवाद रहा है। जिन वीरगाथाओं के आधार पर शुक्लजी ने 'वीरगाथा काल' का नामकरण किया है, उसमें से कुछ अप्राप्य हैं और कुछ परवर्ती काल की रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त जो साहित्य इस कालावधि में लिखा गया है, उसमें सामन्तीय और धार्मिक तत्त्वों का प्राधान्य होने पर भी कथ्य और माध्यम के रूपों की ऐसी विविधता और अव्यवस्था है कि किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर उसका सही नामकरण नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में 'आदिकाल' जैसा निर्विशेष नाम, जो भाषा और साहित्य की आरम्भिक अवस्था मात्र का द्योतन करता है, अधिक समीचीन है। रीतिकाल के संदर्भ में मतभेद सीमित है।

आधुनिक काल को शुक्लजी ने तीन चरणों में विभक्त किया है और उन्हें प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उत्थान कहा है। प्रथम और द्वितीय उत्थान के विषय में उन्होंने यह संकेत भी कर दिया है कि इन्हें क्रमशः 'भारतेंदु काल' और

'द्विवेदी काल' भी कहा जा सकता है। तीसरे उत्थान को कदाचित उसके प्रवाहमय रूप के कारण, उन्होंने कोई नाम नहीं दिया। पहला काल-खण्ड जीवन और साहित्य में पुनर्जागरण का युग था, जब अतीत की गौरव-भावना के परिप्रेक्ष्य में नवजागरण की चेतना विकसित हो रही थी। अत: इसे 'पुनर्जागरण काल' नाम दिया जा सकता है और चूँकि भारतेंदु के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व में, जिन्होंने अपने जीवन काल में इस युग का नेतृत्व किया और जिनका प्रभाव मरणोपरान्त भी बना रहा, यह चेतना सम्यक प्रतिफलित हो रही थी, इसलिये इसका नामकरण उनके नाम पर भी करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। प्राय: इसी पद्धति और युक्ति से द्वितीय उत्थान का भी नामकरण किया जा सकता है। उसे हम औचित्यपूर्वक 'जागरण-सुधार-काल' या विकल्पत: 'द्विवेदी-युग' कह सकते हैं। तीसरे चरण की सर्वप्रमुख साहित्य-प्रवृत्ति है - छायावाद, । अत: उसका उचित नाम 'छायावाद-काल' ही हो सकता है।उसके परवर्ती काल की चेतना इतनी जल्दी-जल्दी बदल रही है कि किसी एक स्थिर आधार को लेकर उसका नामकरण नहीं किया जा सकता। आरम्भ में प्रगतिवाद का दौर था जो कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गया। तदन्तर प्रयोगवाद का आविर्भाव हुआ जो थोड़े समय तक इसके समानान्तर चलकर 1953 के आसपास नवलेखन में परिणत हो गया। अत्याधुनिक लेखन का दावा है कि नवलेखन का युग भी 1960 के बाद खत्म हो गया है और इसके बाद की साहित्य-चेतना-यथार्थ-बोध की प्रखरता के कारण अपनी पूर्ववर्ती साहित्य-चेतना से भिन्न है। अत: इस अस्थिर और त्वरित गति से बढ़ते हुए, साहित्य-प्रवाह को किसी एक नाम में कैसे बाँधा जा सकता है। कुछ आलोचक पूर्वार्ध को 'प्रगति-प्रयोग-काल' और उत्तरार्ध को 'नवलेखन काल' कहना चाहते हैं और कुछ इस पूरे काल-खण्ड को 'छायावादोत्तर काल' के नाम से अभिहित करते हैं। इनमें से पहले दोनो नामों में प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखाँकित किया गया है, जबकि दूसरा छायावाद के अवशिष्ट प्रभाव, विस्तार तथा विरोधी प्रतिक्रिया को अधिक महत्व देता है। स्वतंत्रता की प्राप्ति इसी युग की घटना है, पर यह साहित्यिक चेतना को कोई नया मोड़ नहीं दे सकी, इसलिये नामकरण में उसकी कोई विशेष संगति नहीं है। यदि इस तर्क के आधार पर कि इतिहास को बहुत छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त करने से समग्र दर्शन में बाधा आती है, अथवा यह मानकर कि समसामयिक साहित्य का स्वरूप स्थिर होने में कुछ देर लगती है, वर्तमान युग को एक नाम ही देना है तो 'छायावादोत्तर काल' नाम अभावात्मक होते हुए भी असंगत नहीं है।

डा0 रामकुमार वर्मा के काल-विभाजन के अन्तिम चार काल-खण्ड तो आचार्य शुक्ल के ही विभाजन के अनुरूप हैं, केवल 'वीरगाथा काल' के स्थान पर 'चारणकाल' नाम अवश्य दे दिया गया है, किन्तु इसमें एक विशेषता 'सन्धिकाल' की है, जो वस्तुतः गुण-वृद्धि का सूचक कम एवं दोष-वृद्धि का द्योतक अधिक है। कुछ विद्वानो ने तो 'चारण काल' नामकरण भी असंगत बताया है, उनके मतानुसार उस युग के काव्य रचयिता चारण नहीं -- भाट, भट्ट अथवा ब्रम्हभट्ट थे। इसी प्रकार 'सन्धिकाल' नामकरण द्वारा रूढ़ि-त्याग एवं नवीनता-ग्रहण का साहस अवश्य दिखाया गया है, परन्तु उसमें भ्रामकता अधिक है, निश्चयात्मकता कम।

'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' की पूर्व पीठिका में डा0 गणपति चन्द्र गुप्त ने काल विभाजन में कुछ संशोधन कर वर्गीकरण को नया रूप देने का प्रयास किया है। आपने आचार्य द्विवेदी द्वारा दिये गये नामों - आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल को यथावत स्वीकार कर आधुनिक काल में कुछ परिवर्तन कर काल-विभाजन को अद्यतन स्वरूप प्रदान किया है --

आदि काल 650-1350 ई. तक।

भक्ति काल 1350-1650 ई. तक।

रीति काल 1650-1857 ई. तक।

आधुनिक काल 1857 से....

भारतेन्दु काल 'पुनर्जागरण-काल', 1857-1908 ई. तक,

द्विवेदी काल 'जागरण-सुधार काल', 1908-1915 ई. तक,

छायावाद काल 1915-1938 ई. तक, 'पहली छायावादी कविता' 1912 में प्रकाशित हुई थी तथापि उसका जोर 1915 से हुआ,

छायावादोत्तर काल -.....

प्रगति-प्रयोग काल 1938-1953 ई. तक,

नवलेखन काल 1953 ई. से....

आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

आधुनिक रीतिकाल के बाद का काल है। सन 1857 से लेकर अब तक आधुनिक काल कहलाता है। सन 1857 में एक ऐसी घटना घटी कि सारा देश हिल और सिहर गया और उसका परिणाम अति दूरगामी सिद्ध हुआ - यह थी प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटना। इसके बाद भारत में एक नयी चेतना

जागी और रीतिकाल के विलासितापूर्ण मादक प्रभाव से मुक्त होकर वह नवयुग की अंगड़ाई लेने लगा – और सन 1857 ई. में आधुनिक काल का जन्म हुआ। इस समय भारतेंदु हरिश्चंद्र जो आधुनिक गद्य के निर्माता और जनक कहे जाते हैं, 7 वर्ष के थे और कविता करने लगे। इस काल में धर्म, साहित्य, कला तथा दर्शन के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ। यह आधुनिक काल विभिन्न राजनितिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संपर्क और सम्नाय्व्य का परिणाम है। इस काल की साहित्यिक प्रवृतियाँ तथा विशेषताओं में काफी विविधता है। इसमें भारतेंदु युग से लेकर नयी कविता तक का काल समाविष्ट है, किन्तु इतने दीर्घकाल में अनेक काव्यधाराओं के बाद भी कुछ सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं–

1. राष्ट्रीयता एवं अतीत का गौरवगान –

राष्ट्रीयता हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। आधुनिक काल के प्रारंभ से हिंदी कवियों ने भारत माता तथा उसकी संतानों की दुर्दशा में छटपटाते देखा। उनका हृदय भक्ति, रीति और श्रृंगार परंपरा से हटकर राष्ट्र प्रेम की ओर मुड़ गया। इन कवियों ने देशवासियों को उनके अतीत गौरव याद दिलाकर उनमें उत्साह का भाव भरा। भारतेंदु युग के बाद दिवेदी युग और बाद में भी यह भावना बनी रही। भारतेंदु हरिश्चंद, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, 'यामनारायण पाण्डेय आदि कवियों ने देश का अतीत गौरव गाकर राष्ट्रीयता की धारा प्रवाहित की है।

2. छायावाद –

भारतेंदु युग और द्विवेद्वी युग में रीतिकालीन श्रृंगार धारा जो क्षीण पड़ गयी थी। छायावाद नामक एक नयी प्रवृत्ति के रूप में प्रथम विश्व युद्ध के बाद उभरी। इसमें व्यक्तिगत धरातल पर प्रभाव और कल्पना लोक में प्रकृति प्रेम और नारी सौन्दर्य को चित्रित किया गया है। इस प्रवृत्ति में कवियों का अतृप्त प्रणय भावना, वेदना से रो पड़ी है। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि इस धारा के कवि हैं।

3. रहस्यवाद –

छायावादी काव्य की ही यह एक उपधारा है। भक्तिकालीन कवियों के रहस्यवाद से इसमें बड़ी भिन्नता है। प्रकृत्ति के सभी उपकरणों में चेतना का

आरोप ही रहस्यवाद है। कतिपय भिन्नता के कारण इसे नवीनता रहस्यवाद भी कहा जाता है। वह आधुनिक काल में छायावादी कवियों में पल्लवित हुई और बाद तक चलती आई है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, अज्ञेय आदि कवियों के काव्य में यह धारा देखी जा सकती है।

4. प्रगतिवाद –

प्रगतिवाद पूंजीवाद व्यवस्था के विरोध में दीन हीन मजदूरों एवं शोषितों के समर्थन की एक प्रवृत्ति है। इसमें छायावादी सौन्दर्य भावना, रूढ़िवादी संस्कृति, आदर्शवाद आदि का भी विरोध पाया जाता है। सन 1936 के बाद हिंदी में यह प्रवृत्ति पनपी। निराला, पन्त, अंचल, अश्क, नागार्जुन, रामविलाश शर्मा, अमृत राय, यशपाल, राजेन्द्र यादव आदि ने इस प्रवृत्ति को विकसित करने का सराहनीय कार्य किया है।

5. प्रयोगवाद –

इस काव्य प्रवृत्ति के नवीन काव्य शिल्प में जीवन के नए मूल्यों तथा यथार्थवादी प्रवृत्तियों को चित्रित किया गया। इस कार्य के लिए अज्ञेय ने सन 1943 में तार सप्तक का सम्पदन किया, सन 1953 तक यह प्रवृत्ति तेजी के साथ विकसित होती रही। बौद्धिकता, मनोविश्लेषन, नवीन जीवन मूल्य तथा नवीन शिल्प प्रयोग इस धारा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि इस धारा के प्रमुख साहित्यकार है।

नव लेखन आधुनिक साहित्यकार की नवीनतम प्रवृत्ति है। नव लेखन की प्रवृत्ति कविता में नयी कविता, नाटक में नए नाटक, कहानी के क्षेत्र में नयी कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में नया उपन्यास तथा आलोचना के क्षेत्र में नयी आलोचना है। इसमें मानवता के स्थान पर व्यापक मानवता, बौद्धिकता के स्थान पर शुद्ध बौद्धिकता, व्यंग के स्थान पर तीखा व्यंग और यथार्थ आदि है।

7. अन्य विशेषताएं –

हालावाद, यथार्थवाद, प्रतीकवाद, आदर्शवाद आदि साहित्यिक प्रवृतियों का भी आधुनिककाल में उदय और विकास हुआ है। ये सभी विशेषताएँ कुछ समय तक ही अस्तित्त्व में रही हैं।

8. खड़ीबोली का विकास -

इस युग में खड़ीबोली का विकास गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से हुआ। इस युग में ब्रज, अवधी आदि भाषाएँ लुप्त होती चली गयीं .

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल में गद्य का विकास विविध रूपों में हुआ। नवीनता, बौद्धिकता, देश प्रेम, प्रतीकात्मकता उपमानों की नवीनता आदि इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। डॉ.बच्चन सिंह के शब्दों में - 'आधुनिक काल अपने ज्ञान विज्ञान और प्रवृत्तियों के कारण मध्यकाल से अलग हुआ। यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से सम्बद्ध है, जिसमें नवीन आशाएँ उभरी और भविष्य का नया स्वप्न देखा जाने लगा। '

हिंदी की विभिन्न बोलियाँ और उनका साहित्य

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं, भारत में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

मोटे तौर पर हिंद (भारत) की किसी भाषा को 'हिंदी' कहा जा सकता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था। पर वर्तमानकाल में सामान्यत: इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड की भाषा के लिए होता है जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी

जैसा ऊपर कहा गया है, अपने सीमित भाषाशास्त्रीय अर्थ में हिंदी के दो उपरूप माने जाते हैं - पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसैनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत पाँच बोलियाँ हैं – खड़ी बोली, हरियाणी, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, रामपुर, मुरादाबाद, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, के आसपास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाटू या हरियाणवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसमें पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आसपास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रांतों के शब्दों और प्रयोगों का भी ग्रहण है। कन्नौजी गंगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमंडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती-जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोड़ा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। बुंदेलखंड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं जिनकी काव्यभाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं – अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध में बोली जाती है। इसके दो भेद हैं – पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकांशत: पश्चिमी अवधी मिलती है और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोकसाहित्य रचा गया है।

बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी।

बिहारी की तीन शाखाएँ हैं – भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी

का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियों में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। इसमें प्राचीन साहित्य तो नहीं मिलता पर ग्रामगीतों के अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिए कैथी लिपि का व्यवहार होता है। पर आधुनिक मगही साहित्य मुख्यत: देवनागरी लिपि में लिखी जा रही है। मगही का आधुनिक साहित्य बहुत समृद्ध है और इसमें प्राय: सभी विधाओं में रचनाओं का प्रकाशन हुआ है।

मैथिली एक स्वतंत्र भाषा है जो संस्कृत के करीब होने के कारण हिंदी से मिलती जुलती लगती है। परन्तु, मैथिली हिंदी से अधिक बांग्ला के निकट है।

मैथिली गंगा के उत्तर में दरभंगा के आसपास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परंपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

मैथिली भाषा भारत और नेपाल के संविधान में राजभाषा के रूप में भी दर्ज है। नेपाल में दूसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा मैथिली है।

राजस्थानी का प्रसार पंजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं। जिसमें चारणों का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परंपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ हैं- मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती है। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं - पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परंबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भेद हैं - कुमाउँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नहीं मिलता।

आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान् पहाड़ी को राजस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं। पश्चिमी पहाड़ी हिमाचल प्रदेश में बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियों में मंडियाली, कुल्लवी, चाम्बियाली, क्योंथली, कांगड़ी, सिरमौरी, बघाटी और बिलासपुरी प्रमुख हैं।

प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है।-

(क) हिन्दी क्षेत्र - हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: सत्रह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में इस प्रकार विभक्त कर के रखा जा सकता है- पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाडी हिन्दी और बिहारी हिन्दी।

(ख) अन्य भाषा क्षेत्र– इनमें प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं- दक्खिनी हिन्दी (गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि), बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी तथा शिलंगी हिन्दी (बाजार-हिन्दी) आदि।

(ग) भारतेतर क्षेत्र - भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। सीमावर्ती देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रूस, जापान, चीन तथा समस्त दक्षिण पूर्व व मध्य एशिया में हिन्दी बोलने वालों की बहुत बडी संख्या है। लगभग सभी देशों की राजधानियों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढी-पढाई जाती है। भारत के बाहर हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ - ताजुज्बेकी हिन्दी, मारिशसी हिन्दी, फीजी हिन्दी, सूरीनामी हिन्दी आदि हैं।

4

प्रयोजनमूलक हिन्दी

प्रयोजनमूलक हिन्दी के संदर्भ में 'प्रयोजन' शब्द के साथ 'मूलक' उपसर्ग लगने से प्रयोजनमूलक पद बना है। प्रयोजन से तात्पर्य है उद्देश्य अथवा प्रयुक्ति। 'मूलक' से तात्पर्य है आधारित। अत: प्रयोजनमूलक भाषा से तात्पर्य हुआ किसी विशिष्ट उद्देश्य के अनुसार प्रयुक्त भाषा। इस तरह प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य हिन्दी का वह प्रयुक्तिपरक विशिष्ट रूप या शैली है जो विषयगत तथा संदर्भगत प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषिक संरचना द्वारा प्रयुक्त की जाती है। विकास के प्रारम्भिक चरण में भाषा सामाजिक सम्पर्क का कार्य करती है। भाषा के इस रूप को संपर्क भाषा कहते हैं। संपर्क भाषा बहते नीर के समान है। प्रौढ़ा की अवस्था में भाषा के वैचारिक संदर्भ परिपुष्ट होते हैं और भावात्मक अभिव्यक्ति कलात्मक हो जाती है। भाषा के इन रूपों को दो नामों से अभिहित किया जाता है। प्रयोजनमूलक और आनन्दमूलक। आनन्द विधायक भाषा साहित्यिक भाषा है। साहित्येतर मानक भाषा को ही प्रयोजनमूलक भाषा कहते हैं, जो विशेष भाषा समुदाय के समस्त जीवन-संदर्भो को निश्चित शब्दों और वाक्य संरचना द्वारा अभिव्यक्त करने में सक्षम हो। भाषिक उपादेयता एवं विशिष्टिता का प्रतिपादन प्रयोजनमूलक भाषा से होता है।

प्रयोजनमूलक हिंदी की परिभाषाएँ

भारत के विभिन्न हिंदी विद्वानों ने प्रयोजनमूलक हिंदी की कई परिभाषाएँ दी हैं वे निम्नवत् प्रस्तुत हैं –

डॉ. मोटूरी सत्यनारायण–

जीवन की आव्यश्क्ताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लायी जाने वाली हिंदी ही प्रयोजनमूलक हिंदी है।

डॉ. रघुवीर सहाय–

प्रयोजनमूलक हिंदी की परिकल्पना यह मानकर चलती है कि वह एक ऐसी शब्दावली होगी जो ज्ञान के सम्प्रेषण में काम आएगी और इसलिए बाकी शब्दावली से भिन्न होगी या उसपर आश्रित नहीं होगी द्य

प्रोफ. न. वी. राजगोपालन–

प्रयोजनमूलक भाषा, भाषा का वह रूप है, जिसका प्रयोग किसी प्रयोग विशेष अथवा कार्य विशेष के संदर्भ में होता है।

डॉ. शिवेंद्र वर्मा–

प्रयोंमुलक हिंदी से तात्पर्य विषयबद्ध एवं परिस्थितिबद्ध हिंदी भाषा रूप से है।

डॉ. महेंद्रसिंह राणा–

प्रयोजनमूलक हिंदी से तात्पर्य है - हिंदी का वह प्रयुक्तिपर्क विशिष्ट रूप जो विषयगत, भूमिकागत, संदर्भगत प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषिक संरचना में प्रयुक्त किया जाता है और जो प्रशासन, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के अनेक विधि क्षेत्रों का कथ्य को अभिव्यंजित करने में सक्षम है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी की विशेषताएं

प्रयोजनमूलक हिन्दी की संरचना, संचेतना एवं संकल्पना के विश्लेषण से उसमें अन्तर्निहित कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ उद्घाटित होकर सामने आती है, जिनमें प्रमुख हैं–

(अ) अनुप्रयुक्तता– प्रयोजनमूलक हिन्दी का सबसे बड़ा गुण या विशेषता है, उसकी अनुप्रयुक्तता (Appliedness) अर्थात् प्रयोजनीयता। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का विशिष्ट रूप विशिष्ट प्रयोजन के अनुसार अनुप्रयुक्त होता है। विश्व भर में बहुत सारी भाषाएँ ऐसी हैं जिनका अस्तित्त्व

व्यवहार तथा साहित्य के क्षेत्र से ही बना हुआ है। प्रशासन, प्रचालन तथा विज्ञान-प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों को अभिव्यक्त करने की उनकी क्षमता उचित मात्रा में विकसित नहीं हो पाती है। अर्थात् उन भाषाओं का अनुप्रयुक्त पक्ष अत्यधिक कमजोर होता है। ऐसी भाषाओं के नवीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कालान्तर में लगभग समाप्त-सी हो जाती है। फलतः उनका बहुमुखी सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं हो पाता। हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूप का सर्वकष विकास इसलिए सम्भव हो सका है कि उसमें अनुप्रयुक्तता की महत्तम विशेषता विद्यमान रही है। अनुप्रयुक्तता की दृष्टि से हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूपों में राजभाषा, कार्यालयी, वाणिज्यिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में प्रयुक्त हिन्दी का समावेश होता है।

(आ) वैज्ञानिकता– प्रयोजनमूलक हिन्दी की दूसरी अहम् विशेषता है उसकी वैज्ञानिकता। किसी भी विषय के तर्क-संगत, कार्य-कारण भाव से युक्त विशिष्ट ज्ञान पर आश्रित प्रवृति को वैज्ञानिक कहा जा सकता है। इस दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिन्दी सम्बन्धित विषय-वस्तु को विशिष्ट तर्क एवं कार्य-कारण सम्बन्धों पर आश्रित नियमों के अनुसार विश्लेषित कर रूपायित करती है। प्रयोजनमूलक हिन्दी की अध्ययन तथा विश्लेषण की प्रक्रिया विज्ञान की विश्लेषण एवं अध्ययन प्रक्रिया से भी अत्यधिक निकटता रखती है जिन्हें विज्ञान के नियमों के अनुसार सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक कहा जा सकता है। इसी के साथ-साथ प्रयोजनमूलक हिन्दी के सिध्दान्तों एवं प्रयुक्ति में कार्य-कारण भाव की नित्यता भी दृष्टिगत होती है जिसे किसी भी विज्ञान का सबसे प्रमुख आधार माना जाता है। विज्ञान की भाषा तथा शब्दावली के अनुसार ही प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा तथा शब्दावली में स्पष्टता, तटस्थता, विषय-निष्ठता तथा तर्क-संगतता विद्यमान है। अतः स्पष्ट है कि प्रयोजनमूलक हिन्दी अपनी अन्तर्वृत्ति, प्रवृति, प्रयुक्ति, भाषिक संरचना और विषय विश्लेषण आदि सभी स्तरों पर वैज्ञानिकता से युक्त है।

(इ) सामाजिकता– हिन्दी की प्रयोजनमूलकता मूलतः सामाजिक गुण या विशेषता है। सामाजिकता का सम्बन्ध मानविकी से है। अतः प्रकारान्तर से प्रयोजनमूलक हिन्दी का अभिन्न सम्बन्ध मानविकी से माना जा सकता है। प्रयोजनमूलक हिन्दी के निर्माण एवं परिचालन का सम्बन्ध समाज तथा उससे जुड़ी विभिन्न ज्ञान-शाखाओं से है। सामाजिक परिस्थिति, सामाजिक भूमिका तथा सामाजिक स्तर के अनुरूप प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयुक्ति-स्तर तथा भाषा-रूप

प्रयोग में आते हैं। इतना ही नहीं, सामाजिक विज्ञान की तरह प्रयोजनमूलक हिन्दी में अन्तर्निहित सिद्धान्त और प्रयुक्त-ज्ञान मनुष्य के सामाजिक प्रयुक्तिपरक क्रियाकलापों का कार्य-कारण सम्बन्ध से तर्क-निष्ठ अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। अत: प्रयोजनमूलक हिन्दी में सामाजिकता के तत्त्व एवं विशिष्टता अनिवार्यत: विद्यमान देखे जा सकते हैं।

(ई) भाषिक विशिष्टता– यह वह विशेषता है जो प्रयोजनमूलक हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता को रूपायित कर उसे सामान्य या साहित्यिक हिन्दी से अलग करती है। अपनी शब्द-ग्रहण करने की अद्‌भुत शक्ति के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी ने अनेक भारतीय तथा पश्चिमी भाषाओं के शब्द-भण्डार को आवश्यकतानुसार ग्रहण कर अपनी शब्द-सम्पदा को वृद्धिगत किया है। प्रयोजनमूलक हिन्दी में तकनीकी एवं परिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है जो उसकी भाषिक विशिष्टता को रेखांकित करता है। प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा सटीक, सुस्पष्ट, गम्भीर, वाच्यार्थ प्रधान, सरल तथा एकार्थक होती है और इसमें कहावतें, मुहावरे, अलंकार तथा उक्तियाँ आदि का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया जाता है। इसकी भाषा-संरचना में तटस्थता, स्पष्टता तथा निर्वैयक्तिकता स्पष्ट रूप से विद्यमान रहती है और कर्मवाच्य प्रयोग का बाहुल्य दिखाई देता है। इसी प्रकार, प्रयोजनमूलक हिन्दी में जो भाषिक विशिष्टता तथा विशिष्ट रचनाधर्मिता दृष्टिगत होती है, वह बोलचाल की हिन्दी तथा साहित्यिक हिन्दी में दिखाई नहीं देती। यही उसकी विशेषता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी का सृजन

जवाहरलाल नेहरू ने चालीस साल पहले यह बात कही थी 'मैं अंग्रेजी का इसलिए विरोधी हूँ क्योंकि अंग्रेजी जानने वाला व्यक्ति अपने को दूसरों से बड़ा समझने लगता है और उसकी दूसरी क्लास-सी बन जाती है। यही तथाकथित इलीट क्लास होती है। जबकि भारत को छोड़कर शेष विश्व में इलीट क्लास की भाषा फ्रेंच को माना जाता है।' वस्तुत अंग्रेजी को दोयम दर्जे की भाषा सम्पूर्ण विश्व में माना जाता है, क्योंकि वह गुलामी का प्रतीक और गुलामियत की भाषा है। हिंदी दुनिया की दूसरी बड़ी भाषा है जबकि हकीकत यह है कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी के बाद आता है। सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं की दृष्टि से हिंदी ही विश्व में दूसरे नंबर पर है, स्पेनिश तीसरे, फ्रेंच चौथे और अंग्रेजी पाँचवें स्थान पर आती हैं। चीनी भाषा (मन्दारिन)को पहले स्थान पर माना

गया है पर शुद्ध चीनी भाषा जानने वालों की संख्या हिंदी जानने वालों से काफी कम है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विदेशियों में हिंदी भाषा सीखने और जानने वालों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि हो रही है।

आज संचार का युग है। इस युग में संचार माध्यमों ने अपनी एक अलग पहचान बना ली है। पिछले कुछ दशकों से जनसंचार माध्यमों का अभूतपूर्व उदय हुआ है। सांस्कृतिक, शिक्षा, विकास और सामाजिक विकास में सूचना और संचार का काफी अहम योगदान रहा है। देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में संचार तंत्र काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अब यह बहस का मुद्दा हो गया है कि संचार माध्यम हिंदी को बना रहा है या बिगाड़ रहा है। कुछ लोग इसे व्यवसायिक हिंदी का नामकरण कर अलग रास्ता दे रहे हैं। यह प्रयोजन मूलक हिंदी है। यह चौतरफा फल-फूल रही है। फैल रही है। बांग्मय की आदि-भाषा संस्कृत से आसूत हिन्दी का भाषाई और साहित्यिक इतिहास सर्वथा एवं सर्वदा समृद्ध रहा है ! संस्कृत, अपभ्रंश, अबहट, प्राकृत और पाली से होती हुई हिन्दी ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, अंगिका, बज्जिका जैसी उपभाषाओं के साथ आज खड़ी बोली की संज्ञा धारण कर चुकी है! समस्त साहित्यिक गुणों से लैस एवं सुव्यवस्थित वर्णमाला और सुगम, सुदृढ़ व्याकरण के बावजूद इक्कीसवीं सदी की व्यावसायिकता जब हिन्दी को केवल शास्त्रीय भाषा कह कर इसकी उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाने लगी तब इस समर्थ भाषा ने प्रयोजनमूलक हिन्दी का कवच पहन न केवल अपने अस्तित्व की रक्षा की, वरण इस घोर व्यावसायिक युग में संचार की तमाम प्रतिस्पर्धाओं को लाँघ अपनी गरिमामयी उपस्थिति भी दर्ज कराई।

संचार में भाषा की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। जनसंचार का काम भाषा के बिना असंभव है। जनसंचार का काम हिंदी पत्र पत्रिकाएं देश की आजादी के पहले से ही करती आ रहीं हैं। हिंदी को जानने व समझने वालों का एक बहुत बड़ा वर्ग है भारत में। हिंदी के विकास की यात्रा में हिंदीतर भाषी प्रदेशों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। 1857 में कलकत्ता विश्व विद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की गई थी। एक हिंदीतर भाषी नलिन मोहन सांन्याल सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिंदी में एम.ए. (अंग्रेजी माध्यम में) किया। भूदेव मुखोपाध्याय ने 1887 में आज के हिंदीभाषी प्रदेश बिहार में हिंदी का पाठ्यक्रम तैयार करवाया था। हिंदी के पहले समाचार पत्र उदंत मार्तंड का प्रकाशन जुगल किशोर शुक्ल द्वारा कोलकाता में हुआ था। यह एक हिंदीतर भाषी प्रदेश है। आज के दिनों में

भी हिंदीतर भाषी प्रदेशों में हिंदी के पत्र काफी लोकप्रिय हैं। हिंदी दैनिक समाचार पत्र राजस्थान पत्रिका का बैंगलुरु से पिछले 13-14 वर्षों से लगातार प्रकाशन हो रहा है। बच्चों की लोकप्रिय पत्रिका चंदामामा का प्रकाशन चेन्नई से हुआ। इसके संपादक हिंदीतर भाषी शौरि रेड्डी थे। हैदराबाद से कभी कल्पना निकलती थी। आज वहां हिंदी मिलाप चल रहा है। कोलकाता देश को सन्मार्ग देता है। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह से भी सरकारी अखबार द्वीप समाचार हिंदी में निकलता है। आज हिंदी के अखबारों की प्रसार संख्या सर्वाधिक है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी की लोकप्रियता बढ़ाने के अलावा समाज में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करने में सराहनीय योगदान किया है।

यही प्रयोजनमूलक हिंदी आज पत्रकारिता की भाषा है जिसमें खरबों के देशी-विदेशी निवेश हो रहे हैं। किंतु ऐसा नहीं है कि प्रयोजनमूलक संज्ञा पाने के बाद हिंदी पत्रकारिता का उदय हुआ है। हिंदी तो पत्रकारिता की भाषा तब से है जब इसका प्रयोजन बिल्कुल असंदिग्ध था। स्पष्ट शब्दों में कहें तो हिन्दी पत्रकारिता का शंखनाद हिन्दी साहित्यकारों के द्वारा अठारहहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही किया जा चुका था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका अवर्णनीय है। आधुनिक हिंदी साहित्य के युगपुरूष भारतेंदु हरिश्चंद्र की कवि-वचन सुधा और हरिश्चन्द्र मैग्जिन इसका प्रमाण है। उसके बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखन लाल चतुर्वेदी, आयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध से लेकर प्रेमचंद तक सभी नामचीन साहित्यकार हिन्दी पत्रकारिता के आकाश में दैदीप्यमान नक्षत्र की तरह उज्ज्वल रहे हैं। आज से दो दशक पहले तक पत्र पत्रिकाओं के स्तम्भ सीमित होते थे - धर्म, साहित्य, संस्कृति, ज्योतिष, राजनीति, समाज-सुधार, समाज कल्याण, आदि। आज फैशन, फिल्म, इंटरनेट, मोबाइल, एसएमएस, ब्लॉग, शेयर बाजार, आदि से जुड़े समाचार भी प्रमुखता पाते हैं। इन सब विषय वस्तुओं के अलावा स्थानीय छाप लिए हिंदी एक नए रंग में देखने को मिलती है।

यह कहना कि प्रयोजनमूलक हिंदी आधुनिक युग की देन है मेरे ख्याल से तर्कसंगत नहीं है। आधुनिक युग ने हिन्दी को केवल प्रयोजनमूलक नाम दिया है कोई प्रयोजन नहीं। अगर यह कहें कि हिंदी आज प्रयोजनमूलक है तो यह भी मालूम होना चाहिए कि हिन्दी निस्प्रयोजन कब थी ? अगर हिंदी निस्प्रयोजन होती तो लगभग चार सौ साल पूर्व रचित तुलसीदास के रामचरित मानस की एक-एक

चौपाई आज चरितार्थ नहीं होती। अगर व्यावसायिकता की बात करें तो भारत के साथ-साथ मलेशिया, फिजी, मोरिशस, कैरेबिआई द्वीप समूह के अतिरिक्त दुनिया भर में पढ़े जाने वाला रामचरित मानस भारत के प्रतिष्ठित गीता प्रेस, गोरखपुर से सर्वाधिक छपने वाली किताब का खिताब पा चुका है। तो जिस भाषा में ऐसे एक-दो नहीं बल्कि अनंत कालजयी साहित्य के सृजन की क्षमता हो वह निस्प्रयोजन कैसे हो सकती है? आखिर किसी भी भाषा का प्रयोजन क्या है? अभिव्यक्ति ! और यही अभिव्यक्ति लोकहित का उद्देश्य धारण कर देश और काल की सीमा से परे चिरंजीवी हो साहित्य कहलाने लगता है। इस प्रकार इस बात में कोई दो राय नहीं कि हिन्दी में अभिव्यक्ति और साहित्य-सृजन दोनों की अपार क्षमता है। अत: यह संस्कृत तनया अपने जन्मकाल से ही प्रयोजनवती रही है। सो मेरा उद्देश्य हिन्दी का प्रायोजन अथवा इसकी प्रयोजनमूलकता सिद्ध करना कतई नहीं है। किंतु आज जिस प्रयोजनमूलक हिंदी की चर्चा जोर-शोर से की जा रही है उससे मुंह चुराना भी उपयुक्त नहीं है।

साहित्य से अलग के क्षेत्र जैसे विज्ञान, चिकित्सा, विधि, प्रशासन आदि में जिस भाषा का प्रयोग होता है वह भाषा जीवन व्यवहार और ज्ञानपरक विचार-विश्लेषण-मूल्यांकन विवेचन और प्रस्तुतिकरण की भाषा होती है। उसकी एक अलग तकनीकी शब्दावली होती है, जिसके प्रयोग के बिना उसके कार्य को आगे बढ़ाया ही नहीं जा सकता। चूंकि हिंदी की बोलियों में विज्ञान, चिकित्सा, विधि, प्रशासन आदि क्षेत्रों संबंधी चिंतन अनुशासन का विकास हुआ ही नहीं था इसलिए उसकी शब्दावलि की कोई बोलीगत परंपरा विकसित नहीं थी। आधुनिक पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा, विधि, प्रशासन आदि की शब्दावली के लिए हिंदी शब्दावलि में पर्याय निर्धारित करने के प्रश्न पर काफी विवाद उठा। एक वर्ग संस्कृत के धातुओं को लेने के पक्ष में था तो दूसरा वर्ग अरबी-फारसी। यह टकराव का कारण बना। शब्दावलि तैयार तो की गई पर न तो यह पूर्ण है न ही निर्दोष। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों विज्ञान, चिकित्सा, विधि, प्रशासन आदि में हिंदी को कार्य का माध्यम बनाने के प्रयास को आज तक गंभीरतापूर्वक नहीं लिया गया है। चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो या कार्य क्षेत्र, विभिन्न विषयों के लोग हिंदी माध्यम से अपने को दूर रखने की कोशिश ही करते रहे।

सरकारी क्षेत्र के सृजनात्मक लेखन की बात करें तो हम पाते हैं कि प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी के उपयोग के सरकारी प्रयास का समुचित माहौल ही नहीं बना। अनुवाद की प्रक्रिया हिंदी में सोचने, समझने और लिखने की सहज

स्थिति से दूर हटती गई। रोजमर्रा के व्यवहार के अभाव में प्रशासनिक हिंदी में असहजता ही नहीं आई बल्कि यह अटपटी हिंदी बनकर रह गई। कार्यालयों में यह बात आए दिन सुनी जा सकती है कि हिंदी को खतरा अंग्रेजी से नहीं, अपनों से है, खास तौर से शुद्धतावादियों से। कार्यालय को कठिन और दफ्तर को सरल, वेतन को कठिन और तनख्वाह को सरल सिद्ध करते हुए ऐसे लोग हिंदी के संस्कृतकरण के खिलाफ लड़ाई लड़ते रहते हैं। ऐसे लोगों का तर्क है कि तत्सम शब्दों के इस्तेमाल से हिंदी संकीर्ण होती जा रही है। वे हिंदी को शुद्धतावादियों के खेमे से बाहर निकाल कर सर्वग्राह्य बनाने के भरसक प्रयास में ये जुटे रहते हैं। आज हिंदी के कई रूप देखने को मिलते हैं, छत्तीसगढ़ी हिंदी, झारखंडी हिंदी, मुंबइया हिंदी, बिहारी हिंदी, अंडमान की हिंदी, कर्नाटक की हिंदी, हैदराबादी हिंदी, असमिया हिन्दी और राजस्थानी हिन्दी इत्यादि-इत्यादि। हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में हिंदी भाषी क्षेत्रों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। वस्तुत हिन्दी के दुश्मन हिन्दी भाषी लोग ही हैं जो कभी अपनी कूपमन्डूकता से बाहर निकल ही नहीं पाये।

हिन्दी को प्रयोजनमूलक कहने की आवश्यकता क्यों पड़ी। दरअसल हिन्दी का साहित्य बहुत पुराना है। यह भाषा संस्कृत के बहुत समीप है। आज भी संस्कृत के मूल शब्द हिन्दी में तत्सम और उनके विकृत रूप तद्भव नाम से उपयोग में है। अत: इसका इतिहास भी उसी अनुपात में पुराना होना स्वाभाविक ही है। नब्बे के दशक में काशी हिंदू विश्वविद्यालय की पहल पर हिंदी के पौराणिक पाठ्यक्रम से आम तौर पर अप्रसांगिक हो चले अंशों को काट कर और वर्तमान परिदृश्य में उपयोगी तत्वों को जोड़ कर एक ऐसा पाठ्यक्रम विकसित किया गया जो आम-जरूरतों को पूरा कर सके। बेशक, मशीनी युग की भाग-दौड़ में वही चीज स्वागतयोग्य है जिसका सीधा और तीव्र प्रभाव पड़ता हो। परिवर्तन का नियम शाश्वत है। फलस्वरूप हिंदी को भी पौराणिकता की चारदीवारी से निकलकर आधुनिकता का आवरण ओढ़ना पड़ा। दैनिक जीवन की छोटी-बड़ी तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाजार के मानदंड पर खड़ा होना पड़ा। और हिन्दी जैसी समर्थ, उदार और लोचदार भाषा तो ऐसे परिवर्तनों के लिए तैयार ही थी, अंतत: बन गई प्रयोजनमूलक। प्रयोजनमूलक अर्थात् बाजारू या प्रयुक्तिपरक। मतलब बिना लाग-लपेट उतनी ही और वैसी ही हिन्दी जो विनिर्दिष्ट आवश्यकता को संतुष्ट कर सके। आज हिंदी केवल शास्त्रीय लेखन की भाषा नहीं अपितु बाजार और कार्यालयी काम-काज की भाषा है।

विश्व का दूसरा सबसे बड़ा मीडिया उद्योग अंग्रेजी के बाद हिन्दी उद्योग पर आधारित है। प्रयोजनमूलक हिंदी में लालित्य, अलंकार और सौंदर्य कतई आवश्यक नहीं बल्कि प्रभावोत्पादकता और सम्प्रेषणीयता ही वरेन्य है। अभिप्राय यह है कि अकादमिक हिन्दी के अतिरिक्त प्रयोजनमूलक हिंदी के रूप में एक ऐसी भाषा का विकास हुआ है जो जन-संचार अर्थात् मास-कम्युनिकेशन की भाषा है। जिस भाषा में रोमांच है, जिसमें ट्विस्ट है, जिसमें टेस्ट है और जिसे हिन्दी भाषियों के अतिरिक्त हिन्दीतर भाषी भी आसानी से समझ सकते हैं। प्रयोजनमूलक हिन्दी वह है जो लालित्य के बोझ से न दब कर खरी-खरी कहती है। ऐसा नहीं कि इसमें सौन्दर्य नहीं है। किंतु इसका सौन्दर्य अलंकारों से नहीं साधारणीकरण से है। सफल संवाद-अदायगी, हमेशा की तरह आज भी इसकी मूलभूत विशेषता है। आज हिन्दी केवल "स्वान्तः सुखाय या रसिक समाज हर्षाय" ग्रंथों की भाषा नहीं है। वरन लाखों हाथों को काम और करोड़ो लोगों के पेट की आग बुझाने की भाषा है और यही है हिंदी की प्रयोजनमूलकता का सच है जो हिन्दी की छवि को सत्यम, शिवम और सुन्दरम की शाश्वतता प्रदान करता है।

विज्ञान की चरम उन्नति से हिंदी को भी नए आयाम मिले हैं। वर्तमान युग आई. टी. युग है। और सूचना प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में भारत दुनिया भर में अपनी धाक मनवा चुका है। विज्ञान की इस शाखा में पूरा विश्व भारतीय मस्तिष्क का कायल है। दूसरी बात कि सूचना प्रोद्यौगिकी के विकास ने पूरी दुनिया को एक सूत्र में पिरो दिया है। यहीं से तकनीक के एक नए व्यवसाय का उदय होता है, जिसका नाम है आउटसोर्सिंग। अर्थात् तकनीक हस्तांतरण या दुनिया के किसी कोने में बैठ कर दूसरे कोने को तकनीकी समाधान देना। आज आउटसोर्सिंग बिजिनेस में भारत का कोई सानी नहीं है। पश्चिमी देशों में तो आउटसोर्सिंग के लिए टर्म ही बन गया है, "It's been Bangalored". क्योंकि पश्चिमी देशों के मुकाबले भारतीय अभियंता किसी तकनीक को काफी कम लागत और कम समय में कुशलता के साथ विकसित कर देते हैं। यह भी कारण है कि बहुत बड़ी संख्या में विदेशी दृष्टि भारत की ओर लगी हुई है। जाहिर है, कहीं भी व्यवसाय करने के लिए वहाँ की भाषा समझना अनिवार्य है। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इस कार्य के लिए बिहारीलाल की सतसई या विद्यापति की पदावली को तो काम में लाया नहीं जा सकता। अतः भारत में जो भाषा यह काम बड़े पैमाने

पर कर सकती है, वही प्रयोजनमूलक हिंदी है। बात चाहे सॉफ्टवेयर की हो या अन्य उपभोक्ता उत्पादों की, विश्व की बड़ी से बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनी की नजर आज भारतीय बाजार पर टिकी हुई है। और बिना हिंदी के भारतीय बाजार पर कब्जा करना अगर असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर है। और जो भाषा इस बाजार को चलाने में उपयुक्त है वही प्रयोजनमूलक हिंदी है। यही वजह है कि अभियंत्रण जैसी तकनीकी विधा के बाद अब हिंदी जैसे शास्त्रीय विधा के शिक्षकों की पश्चिमी देशों में भारी मांग हो रही है। हाल ही में प्रतिष्ठित अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका "फोर्ब्स" में कहा गया था कि आगामी दो वर्षों में यूरोप और अमेरिका के देश लगभग पचास हजार हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति के बारे में सोच रहे हैं।

जनसंचार के सबसे सशक्त माध्यम सिनेमा और टेलीविजन ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में वैश्विक क्रांति दी है। हिंदी फिल्म भारत के हर कोने में देखी और पसंद की जाती है। विदेशों में भी हिंदी सिनेमा सितारों की लोकप्रियता काफी बढ़ी है। अंग्रेजी फिल्में हिंदी में डब करके प्रस्तुत की जा रहीं हैं। प्रयोजनमूलक हिंदी का सबसे बड़ा उपयोग मीडिया और विज्ञापन के क्षेत्र में है। टेलीविजन पर विज्ञापन की दुनिया में हिंदी का बोलबाला है। विज्ञापन की दुनियां का हिंदी के बगैर काम नहीं चलता। विज्ञापन गुरु यह जान और मान चुके हैं कि माल अगर बेचना है तो उन्हें हिंदी में ही बाजार में उतरना पड़ेगा। हां ये जो हिंदी परोसी जा रही है उसे कुछ लोग "हिंगलिश" की संज्ञा देते हैं। परन्तु यह सर्वग्राह्य हिंदी है। आज हर कोई हिंदी बोल समझ लेता है, लिख पढ़ भले न पाए। इस सुखद स्थिति में हिंदी को लाने का बहुत बड़ा श्रेय हिंदी सिनेमा और हिंदी धरावाहिक को जाता है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता।

आज लोग यह समझ चुके है कि "अगर पूरे हिन्दुस्तान को कोई संदेश देना है तो हिंदी को माध्यम बनाना ही होगा"। हिंदी ही भारत के जनसंचार माध्यमों की भाषा है। आज अनेक विदेशी उत्पादों के विज्ञापन भारत में हिंदी में किए जाते हैं, ऐसी हिंदी में जिसे उस कंपनी के सी.ई.ओ. से लेकर भारत के गांवों का किसान तक समझ जाता है। शीतल पेय कोकाकोला का विज्ञापन कहता है "पीयो सर उठा के", मतलब गर्व से पीयो। जो इसका यह अर्थ नहीं समझ पायेंगें वो इतना तो समझ ही जायेंगे की सर को ऊपर कर के कोकाकोला पीने में मजा आता है। लेकिन कहा जाए कि "कृपया अपने मस्तक को उर्ध्व कर कोकाकोला का पान करें" तो इसमें नाहक ज्यादा समय और ज्यादा ऊर्जा लगेगा

और सुनने में शायद ये कुछ कोमल कान्त लगे किंतु अधिकांश हिन्दीभाषी भी इसका अभिप्राय नहीं समझ पायेंगें। यहां कोमल शब्दों वाले दूसरे मधुर वाक्य का कोई प्रयोजन नहीं है जबकि चार सामान्य शब्दों वाला पहला वाक्य अपने अभिप्राय का वहन करने में कहीं अधिक सफल है, तो यही है प्रयोजनमूलक हिंदी और मजबूरन बाजार की नियामक शक्तियों को हिन्दी की ताकत के समक्ष झुक कर कहना पड़ रहा है 'ठन्डा मतलब कोकाकोला' या 'डर के आगे जीत है माउन्टेन ड्यू'।

प्रयोजनमूलक हिंदी में शामिल घटकों में प्रमुख हैं, मीडिया के विविध आयाम, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, अनुवाद, सृजनात्मक लेखन और भाषा के प्रयुक्तिपरक अनुप्रयोग। दरअसल प्रयोजनमूलक हिंदी की संकल्पना की परिधि में पत्रकारिता, जन-संपर्क और विज्ञापन भी इसी में आ जाते हैं। अत: हिंदी की पत्रकारिता की भाषा, शैली, इतिहास और व्यापार का अध्ययन, प्रयोजनमूलक हिंदी के दायरे में आ जाता है। आज जिस प्रकार हिंदी मीडिया बूम पर है और इसमें जिस रफ्तार से देशी और विदेशी निवेश हो रहे हैं, उसे देखते हुए इसमें व्यवहृत भाषा, प्रयोजनमूलक हिंदी का वर्तमान तो सुदृढ़ है ही भविष्य भी उज्ज्वल नजर आता है। कृति पर पाठकों की प्रतिक्रिया सादर आमंत्रित हैं।

प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। इसके बोलने व समझने वालों की संख्या के अनुसार विश्व में यह तीसरे क्रम की भाषा है। यानी कि हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। अत: स्वाभाविक ही है कि विश्व की चुनिंदा भाषाओं में से एक महत्वपूर्ण भाषा और भारत की अभिज्ञात राष्ट्रभाषा होने के कारण, देश के प्रशासनिक कार्यो में हिन्दी का व्यापक प्रयोग हो, राष्ट्रीयता की दृष्टि से ये आसार उपकारक ही है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी हिन्दी के भाषिक अध्ययन का ही एक और नाम है, एक और रूप है एक समय था जबकि सरकारी-अर्द्धसरकारी या सामान्यत: कार्यालयीन पत्राचार के लिए अंग्रेजी एकमात्र सक्षम भाषा समझी जाती थी। अंग्रेजी की उक्त महानता आज, सत्य से टूटी चेतना की तरह बेकार सिद्ध हो रही है चूंकि हिन्दी में अत्यन्त बढ़िया, स्तरीय तथा प्रभावक्षम पत्राचार संभव हुआ है। अत: जो लोग हिन्दी को अविकसित भाषा कहते थे, कभी खिचड़ी तो कभी क्लिष्ट भाषा कहते थे या अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी को नीचा दिखाने की

मूर्खता करते थे उन्हें तक लगने लगा है कि हिन्दी वाकई संसार की एक महान भाषा है, हरेक दृष्टि से परिपूर्ण एक सम्पन्न भाषा है।

राजभाषा के अतिरिक्त अन्य नये-नये व्यवहार क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार होता है, जैसे रेलवे प्लेटफार्म, मंदिर, धार्मिक संस्थानों आदि में। जीवन के कई प्रतिष्ठित क्षेत्रों में भी अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग किया जाता है। विज्ञान और तकनीकी शिक्षा, कानून और न्यायालय, उच्चस्तरीय वाणिज्य और व्यापार आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी का व्यापक प्रयोग होता है। व्यापारियों और व्यावसायियो के लिए भी हिन्दी का प्रयोग सुविधाजनक और आवश्यक बन गया है। भारतीय व्यापारी आज हिन्दी की उपेक्षा नहीं कर सकते, उनके कर्मचारी, ग्राहक सभी हिन्दी बोलते हैं। व्यवहार के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रयोजनों से हिन्दी का प्रयोग किया जाता है। बैंक में हिन्दी के प्रयोग का प्रयोजन अलग है तो सरकारी कार्यालयो में हिन्दी के प्रयोग का प्रयोजन अलग है। हिन्दी के इस स्वरूप को ही प्रयोजनमूलक हिन्दी कहते हैं।

प्रयोजनमूलक रूप के कारण हिन्दी भाषा जीवित रही। आज तक साहित्यिक हिन्दी का ही अध्ययन किया जाता था, लेकिन साहित्यिक भाषा किसी भी भाषा को स्थित्यात्मक बनाती है और प्रयोजनमूलक भाषा उसको गत्यात्मक बनाती है। गतिमान जीवन में गत्यात्मक भाषा ही जीवित रहती है। प्रचलित रहती है। आज साहित्य तो संस्कृत में भी है, लेकिन उसका गत्यात्मक रूप-प्रयोजनमूलक रूप समाप्त हो गया है, । अत: वह मृतवत हो गयी है। हिन्दी का प्रयोजनमूलक रूप अधिक शक्तिशाली तथा गत्यात्मक है। हिन्दी का प्रयोजनमूलक रूप न केवल उसके विकास में सहयोग देगा, बल्कि उसको जीवित रखने एवं लोकप्रिय बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

इस प्रकार विभिन्न प्रयोजनों के लिए गठित समाज खंडों द्वारा किसी भाषा के ये विभिन्न रूप या परिवर्तन ही उस भाषा के प्रयोजनमूलक रूप हैं। अंग्रेजी शासन में यूरोपीय संपर्क से हमारा सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक ढांचा काफी बदला, धीरे-धीरे हमारे जीवन में नई उद्‌भावनाएं (जैसे पत्रकारिता, इंजीनियरिंग, बैंकीय) पनपी और तदनुकूल हिन्दी के नए प्रयोजनमूलक भाषिक रूप भी उभरे। स्वतंत्रता के बाद तो हिन्दी भाषा का प्रयोग क्षेत्र बहुत बढ़ा है और तदनुरूप उसके प्रयोजनमूलक रूप भी बढे हैं और बढ़ते जा रहे हैं। साहित्यिक विधाओं, संगीत, कपड़ा-बाजार, सट्‌टाबाजारों, चिकित्सा, व्यवसाय, खेतों, खलिहानों, विभिन्न शिल्पों और कलाओं, कला व खेलों के अखाड़ों, कोर्टों

कचहरियों आदि में प्रयुक्त हिन्दी पूर्णतः एक नहीं है। रूप-रचना, वाक्य रचना, मुहावरों आदि की दृष्टि से उनमें कभी थोड़ा कभी अधिक अंतर स्पष्ट है और ये सभी हिन्दी के प्रयोजनमूलक परिवर्त या उपरूप हैं।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयोगात्मक क्षेत्र

प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूपों का आधार उनका प्रयोग क्षेत्र होता है। राजभाषा के पद पर आसीन होने से पूर्व हिन्दी सरकारी कामकाज तथा प्रशासन की भाषा नहीं थी। मुसलमान शासकों के समय उर्दू या अरबी और अंग्रेजों के समय अंग्रेजी थी। स्वतंत्रता के बाद भारत के राजभाषा हिन्दी बनी जिसके फलस्वरूप साहित्य लेखन ही नहीं बल्कि भारत में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और टेक्नोलाजी के प्रस्फुटन और फैलाव के कारण विभिन्न क्षेत्रों के साथ सरकारी कामकाज तथा प्रशासन के नये अनछुए क्षेत्र से गुजरना पड़ा जिसको देखते हुए प्रशासन, विधि, दूरसंचार, व्यवसाय, वाणिज्य, खेलकूद, पत्रकारिता आदि सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली गठन की ओर संतोषप्रद विकास एवं विस्तार किया गया। अतः प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रमुख प्रयुक्तियाँ देखा जा सकता है--

साहित्यिक प्रयुक्ति- साहित्य किसी भी भाषा की अनिवार्य आवश्यकता है। लेखबद्ध साहित्यिक भाषा काफी विशिष्टताएँ लिये होती हैं, इसलिए वह लेखकों तथा विशिष्ट पाठकों तक सीमित रहती है। साहित्यिक भाषा में जनसामान्य के जीवन के साथ दर्शन, राजनिति, समाजशास्त्र तथा संस्कृति का आलेख पाया जाता है। हिन्दी भाषा की साहित्यिक प्रयुक्ति की परम्परा बहुत पुरानी है। हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं तथा उसके विशेषताओं को समेटने की क्षमता है। यह भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं की शब्दावली ग्रहण कर समस्त युगचेतना अभिव्यक्ति प्रदान करने की कोशिश की है। अतः हिन्दी भाषा की साहित्यिक अत्यधिक सजग और सर्वसमावेशी है।

वाणिज्य प्रयुक्ति- हिन्दी भाषा की दूसरी महत्वपूर्ण प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति 'वाणिज्यिक' है। औद्योगिक क्रांति के बाद इसकी व्याप्ति मात्र राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय तथा बहुआगामी है जिसके अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, परिवहन, बीमा, बैंकीग तथा निर्यात-आयात आदि क्षेत्रों का समावेश होता जिसमें निश्चित शब्दावली और निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा, साहित्यिक वाक्य रचना से काफी भिन्न होती है जैसे, सोने में उछाल, चाँदी मंदा,

तेल की धार ऊँची आदि। अत: हिन्दी भाषा की वाणिज्यिक प्रयुक्ति का क्षेत्र काफी विस्तृत और साथ ही लोकप्रिय है।

कार्यालयी प्रयुक्ति- हिन्दी भाषा की अत्यन्त आधुनिक एवं सर्वोपयोगी प्रयुक्ति में 'कार्यालयी' प्रयुक्ति आता है। जिसका प्रयोग सरकारी, अद्ध-सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों में काम-काज के रूप में प्रयोग होता है। प्रशासनिक भाषा और बोलचाल की भाषा में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। कार्यालयी भाषा की अपनी विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली, पद-रचना तथा आदि होते है। कार्यालयीन हिन्दी में काम-काज के रूप में मसौदा लेखन, टिप्पणी लेखन, पत्राचार, संक्षेपण, प्रतिवेदन, अनुवाद आदि में प्रयुक्त होता है।

विज्ञापन एवं जनसंचार प्रयुक्ति- हिन्दी की प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति के रूप में विज्ञापन और जन-संचार की भाषा तेजी से उभरकर सामने आयी है। आकर्षक वाक्य-विन्यास, शब्दों का उचित चयन तथा वैशिष्टयपूर्ण प्रवाहमय भाषिक संरचना विज्ञापन भाषा प्रयुक्ति के मुख्य तत्त्व आते हैं। विज्ञापन की भाषा चूँकि व्यापार, व्यवसाय, तथा वाणिज्य से सम्बन्ध रखती है, । अत: उसमें आकर्षक, मोहक, भाषा शैली, श्रव्यता, संक्षिप्तता आदि गुणों का होना नितांत आवश्यक है। वर्तमान युग में हिन्दी के विज्ञापन भाषा का रूप जन संचार के माध्यमों (समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियों, दूरदर्शन, सिनेमा) आदि आते है। अत: किसी भी देश की जन-संचार उस देश की सशक्त प्रगतिशीलता को दर्शता है।

विधि एवं कानूनी भाषा प्रयुक्ति- कानूनी भाषा का प्रयुक्ति का सीधा सम्बन्ध राज-भाषा, अनुवाद-प्रक्रिया तथा तकनीकी शब्दावली से माना जाता है। कानूनी प्रक्रिया एवं अदालतों में तकनीकी शब्दावली होने के कारण जनसामान्य के लिए जटिल, नीरस तथा उबारू प्रतित होता था इसी को देखते हुए विधि एवं कानून की क्षेत्र में संसकृत, हिन्दी, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को ग्रहण किया गया और इस प्रकार कानून एवं विधि की भाषा में प्रयोग होने वाले तकनीकी शब्दावली, विशिष्ट पद विन्यास, लम्बे संयुक्त वाक्य-रचना को सुचारू रूप से चलाने प्रतिष्ठित हुआ।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा प्रयुक्ति- वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिन्दी से तात्पर्य है, हिन्दी का वह रूप जो विज्ञान और तकनीकी शब्दावली से मुख्यात: सम्बन्ध रखता है। राजभाषा प्रयोग सम्बन्धी राष्ट्रपति ने 27 अप्रैल, 1960 के आदेशानुसार भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन वैज्ञानिक और तकनीकी

शब्दावली आयोग की स्थापना 1961 में की गई। विज्ञान एंव टेक्नोलाजी की भाषा सामान्य व्यवहार की भाषा से सर्वथा भिन्न होती है, । अतः वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशिष्टता (एकरूपता) में ढालने के लिए हिन्दी, संस्कृत, के साथ अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का प्रयोग किया गया। आज विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्रों में अनुप्रयुक्त हो रहा है, विज्ञान, गणित, विधि, अंतरिक्ष, दूरसंचार, टेक्नोलाजी आदि।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के अवरोध

ब्रिटिश शासकों ने अपने उपनिवेशों में एक महत्वपूर्ण कार्य किया था, अंग्रेजी को प्रतिष्ठित करने का। उन्होंने जिस अंग्रेजी को आरोपित किया, उसका उद्देश्य अपने शासन के लिए योग्य कर्मचारियों को तैयार करना था। जनता से संपर्क के लिए वे हिन्दी सीखते थे और शासन के लिए भारतीय भाषाओं को हेय बताकर अंग्रेजी के एक व्यावहारिक रूप का प्रचार कर रहे थे। इसके लिए उन्होंने जीवन-यापन से जुड़े क्षेत्रों में अंग्रेजी को अनिवार्य कर दिया। 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिली। राष्ट्रीयता की प्रबल भावना के कारण स्वदेश और स्वभाषा का समर्थन सभी राष्ट्र नेताओ ने किया। संविधान निर्माताओं ने बिना किसी संशय के हिन्दी को राजभाषा घोषित कर दिया। राजभाषा के साथ ही प्रयोजनमूलक भाषा का विकास प्रारंभ होता है। शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भाषा का संबंध समस्त सामाजिक प्रयोजनों से जुड़ जाता है। अतः 26 जनवरी 1950 से ही प्रयोजनमूलक हिन्दी की निर्माण प्रक्रिया प्रारंभ हुई और समस्त सरकारी और गैर सरकारी संगठनों, शिक्षालयों, संचार माध्यमों, उद्योगों और तकनीकी संस्थानों का उद्देश्य अपनी भाषा के माध्यम से कार्र्य करना था।

अंग्रेजी शासकों के इन कृत्यों ने ही कालान्तर में शब्दावली का रोना रोकर 15 वर्षो तक हिन्दी के विकास को अवरूद्ध किया और अंग्रेजी को बनाए रखा। सरकारी व्याप से बने कोश जन सामान्य तक नहीं पहुंचे। उन्हें प्रतीक्षा थी राष्ट्रीयता के जोश की समाप्ति की। उसमें वे सफल रहे और राष्ट्रीयता की लहर का स्थान वोट-बैंक की राजनीति ने ले लिया। क्षेत्रीय भाषाओं के विरोध का नया स्वर गूंजा और उत्तर बनाम दक्षिण, हिन्दी बनाम अहिन्दी के नाम पर अंग्रेजी का और अंग्रेजी के बल पर देशी अंग्रेजी का शासन बना रहा।

इस प्रकार राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा का स्वप्न अधूरा रहा। इसके बावजूद प्रयोजनमूलक हिन्दी का विकास अवरूद्ध नहीं हुआ। सरकारी तंत्र

की उपेक्षा के बावजूद विश्व को उपभोक्ता बाजार मानने वाली विदेशी कंपनियों ने विज्ञान एवं सूचना के क्षेत्र में हिन्दी को महत्व दिया। भारतीय चैनलों से अधिक विदेशी कंपनियां हिन्दी प्रदेश में हिन्दी को अपनाकर आगे बढ़ रही हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि वोट बैंक पर नहीं, पूंजी बैंक पर है और इस पर नियंत्रण करने के लिए चित्रपट जगत, वाणिज्यिक प्रतिष्ठान और सूचनातंत्र हिन्दी की उपेक्षा नहीं कर सकते।

इस तरह प्रयोजनमूलक हिन्दी के मार्ग में अनेक अवरोध स्वतंत्रता प्राप्ति से आ रह हैं और उनका सामना करते हुये भारत की यह भाषा अपना अस्तित्त्व अधिक प्रभावशाली बनाये जा रही है।

प्रयोजनमूलक हिंदी– स्वरूप और संरचना

भाषा, मनुष्य के पास ऐसा साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति एक-दूसरे के संर्पक में आता हैं। चूँकि भाषा का प्रयोग समाज में किया जाता है और समाज बहुमुखी होता है। अतः भाषा में अनेकरूपता देखने को मिलती है। इसी अनेकरूपता के कारण भाषा में विभिन्न प्रकार के 'विकल्पन' दिखाई देते हैं। भाषा में प्राप्त होने वाले क्षेत्रीय, सामाजिक एवं प्रयोजनमूलक रूप भाषा विकल्पनों के ही उदाहरण हैं जो विभिन्न प्रकार के प्रयोक्ताओं द्वारा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न संदर्भों में, भाषा का प्रयोग किए जाने के फलस्वरूप विकसित होते हैं।

भाषा विकल्पनों को दो भांगो में बांटा जाता है। 'प्रयोक्ता सापेक्ष' तथा 'प्रयोग सापेक्ष'। प्रयोक्ता सापेक्ष विकल्पों का कारण भाषा का प्रयोक्ता होता है। ये विकल्पन दो प्रकार के होते हैं-क्षेत्रीय विकल्पन तथा सामाजिक विकल्पन। क्षेत्रीय विकल्पनों का संबंध प्रयोक्ता के रहने के स्थान (भौगोलिक क्षेत्र) से होता है तथा भाषा के ये रूप 'क्षेत्रीय रूप' कहलाते हैं। सामाजिक विकल्पन उन भाषा विकल्पनों को कहते है जो प्रयोक्ता के सामाजिक स्तर भेद के कारण दिखाई देते है। भाषा के ऐसे शब्दों को 'सामाजिक शैलियां' कहा जाता है। प्रयोग सापेक्ष विकल्पनों के केन्द्र में 'भाषिकी प्रयोग' होता है। इसको भी दो भागो में विभक्त किया जाता है- प्रयुक्ति सापेक्ष विकल्पन तथा भूमिका सापेक्ष विकल्पन। प्रयुक्ति सापेक्ष विकल्पन भाषा के वे भेद हैं जो भाषा के किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होने पर सामने आते हैं। कार्यालयीन भाषा, तकनीकी क्षेत्र की भाषा, पत्रकारिता की भाषा आदि भाषा रूप प्रयुक्ति रूप है। जहाँ तक बात 'भूमिका

सापेक्ष विकल्पनों' की है, इनका संबंध इस बात से है कि भाषा का प्रयोग करते समय प्रयोक्ता वक्ता की भूमिका का निर्वाह कर रहा है अथवा श्रोता की। देखा जाए तो भाषा, वक्ता और श्रोता के बीच संवाद का ही परिणाम होती है।

इस तरह 'प्रयोजनमूलक हिंदी के विभिन्न रूप' हिंदी की प्रयुक्ति सापेक्ष विकल्पन हैं। ये वे रूप हैं - जो अलग-अलग उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, अलग-अलग विषय क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग होने के कारण विकसित हुए हैं। इनकी अपनी शब्दावली तथा संरचना विशिष्ट होती है तथा उसी प्रयोग क्षेत्र में प्रयुक्त हो सकती है। इसकी संरनात्मक विशेषताओं की चर्चा हम आगे करेंगे।

प्रयोजनमूलक भाषा– संरचनात्क विशेषताएँ–

प्रयोजनमूलक हिंदी, हिंदी की एक प्रयुक्ति है। इसकी आधारभूत संरचना तो वही है जो हिंदी भाषा की है, पर विशिष्ट प्रयोजनों के लिए, विशिष्ट संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण इसकी संरचना और शब्दावली विशिष्ट हो जाती है। अत: आम बोलचाल की हिंदी जानने वाला मातृभाषाभाषी यदि किसी प्रयुक्ति को सीखना चाहता है तो उसे उसके लिए प्रयास करना पड़ता है। सामान्य हिंदी तथा साहित्यिक हिंदी से तुलना करते हुए प्रयोजनमूलक हिंदी की प्रमुख संरचना विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. प्रयोजनमूलक हिंदी की आधारभूत सरंचना तो वही है जो सामान्य हिंदी की अर्थात् वाक्यों में पदों का क्रम इस प्रकार रहता है–

कर्ता-क्रिया (अकर्मक)

(i) चपरसी भाग गया।

(ii) सचिव नहीं आए।

कर्तृता-क्रि0 वि0 पदबंध-क्रिया

(iii) कर्मचारी अपने-अपने घर चले गये।

(iv) मंत्री जी कार से पहुँचे।

कर्तृता-पूरक-क्रिया

(v) शीला एक क्लर्क है।

(vi) मीरा अपने घर में थी।

(vii) जॉन बहुत बीमार है।

कर्तृता-कर्म-क्रिया (सकर्मक)

(viii) लिपिक ने पत्र टंकित किया।

(ix) अधिकारी ने आदेश जारी किया।

कर्त्ता–कर्म–कर्म–क्रिया

(अप्रत्यक्ष) (प्रत्यक्ष) (द्विकर्मक)

(x) सहायक ने चपरासी को फाइल सौंप दी।

कर्त्ता–कर्म–पूरक–क्रिया

(xi) सचिव टाइपिस्ट को मूर्ख समझते हैं।

2. प्रयोजनमूलक भाषा की संरचना के वाक्यों को देखकर ही यह अनुमान किया जा सकता है कि इनको बोलने वाला कौन होगा। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य अवलोकनीय हैं।

(i) सुबह उठकर प्राणायाम करना चाहिए।

(ii) रोज ठंडे पानी से स्नान करना चाहिए।

(iii) सुबह घूमने अवश्य ही जाना चाहिए।

उपर्युक्त वाक्यों को देखकर ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वाक्य किसी स्वास्थ्य अधिकारी अथवा डॉक्टर ने कहे हैं। इसी तरह से आपको आदेश दिया जाता है कि समय से कार्य समाप्त किया करें, तत्काल टिप्पणी प्रस्तुत करें।

इन वाक्यों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि ये वाक्य कर्यालयीन हिंदी के तथा किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा किसी कनिष्ठ अधिकारी से कहे गये हैं। इस तरह का अनुमान आम बोलचाल की भाषा या साहित्यिक भाषा में लगाना संभव नहीं है।

3. प्रयोजनमूलक भाषा के प्रयोग–संदर्भ सुनिश्चित होते हैं। एक संदर्भ में प्रयुक्त होने वाली वाक्य संरचनाओं का प्रयोग यदि कोई व्यक्ति भिन्न संदर्भ में या बोलचाल की भाषा में करता है तो उसकी स्थिति हास्यास्पद हो सकती है। जैसे–आपको सूचित किया जाता है कि आप शीघ्र ही पूरे ऋण का भुगतान कर दें, आपको आदेश दिया जाता है कि आप समय से कार्यालय आया करें, यदि आपने आवेदन प्रस्तुत नहीं किया तो आपके विरूद्ध कार्रवाई की जाएगी। इस तरह के आदेशात्मक वाक्यों के प्रयोग 'प्रशासनिक या कार्यालयीन हिंदी' में देखने को खूब मिलते हैं। परंतु यदि कोई व्यक्ति इसी तरह के आदेशात्मक वाक्यों का प्रयोग अपने घर में पत्नी के साथ करने लगे, जैसे–आपको सूचित किया जाता है कि रोज सुबह आठ बजे नाश्ता पेश किया करें तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस व्यक्ति की अपने घर में क्या दशा होगी।

4. प्रयोजनमूलक भाषा की प्रकृति औपचारिक होती है। जबकि आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग अनौपचारिक संदर्भों में किया जाता है। औपचारिक संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण यहाँ वाक्य संरचनाएँ रूढ़ हो जाती हैं। बोलचाल की भाषा में जो सहजता और लचीलापन दिखाई देता है वह प्रयोजनमूलक भाषा में नहीं मिलता। उदाहरण के लिए आम बोलचाल की भाषा में वक्ता तथा श्रोता परस्पर संबोधन करते समय आम, तुम या तू सर्वनामों में से किसी भी सर्वनाम का प्रयोग करते हुए इस प्रकार के वाक्यों का पयोग कर सकते हैं। जैसे–

(i) आप मेरे घर मत आइए। (औपचारिक)

(ii) तुम मेरे घर मत आना। (अनौपचारिक)

(iii) तू मेरे घर मत आना। (अनौपचारिक)

सामान्य भाषा के वार्तालाप में तू, तुम तथा आप सर्वनामों का चयन श्रोता की अवस्था, पद, स्टेटस, घनिष्ठता, मन:स्थिति, पारस्परिक संबंध आदि के आधार पर किया जाता है, परंतु प्रयोजनमूलक भाषा में ये मानदंड काम में नहीं आते। यहाँ तो प्रत्येक स्थिति में एक वचन कर्ता के रूप में आप सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है।

औपचारिक रूप होने के कारण प्रयोजनमूलक भाषा वस्तुत: भाषा का 'लिखित रूप' रूप होती है।

सामान्य भाषा की तरह प्रयोजनमूलक भाषा का प्रयोग बोलचाल के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि सीखने के लिए प्रयास करने और निरंतर अभ्यास की आवश्यकता होती है।

5. प्रयोजनमूलक भाषा की प्रकृति 'सूचना प्रधान' होती है। इसके माध्यम से कोई न कोई सूचना तथा संदेशा देने का कार्य किया जाता है। जैसे–पत्रकारिता और जनसंचार की हिंदी में निम्नलिखित वाक्य वस्तुओं के महंगे या सस्ते होने की सूचना दे रहे हैं।

(i) सोना उछला, चाँदी लुढ़की।

(ii) तिलहन गरम, दालें नरम।

अथवा इसी तरह से प्रशासनिक हिंदी के सूचना–प्रधान वाक्य विलोकिए–

(i) कल से कार्यालय प्रात: 9:30 से खुला करेगा।

(ii) अधिकारियों को समयोपरि भत्ता नहीं दिया जा सकता।

6. प्रयोजनमूलक भाषा समान्य बोलचाल की भाषा या साहित्यिक भाषा से इस मायने में भी भिन्नता रखती है कि यहाँ केवल अभिधात्मक–प्रयोग ही मान्य

हैं। आम बोलचाल की भाषा तथा साहित्यिक भाषा में तो लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग मिलते हैं, परंतु प्रयोजनमूलक भाषा में इस तरह के प्रयोगों का निषेध है। इसी प्रकार साहित्यिक हिंदी में अंलकारप्रधान शैली तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग भी खूब मिलता है, परंतु प्रयोजनमूलक भाषा इस प्रकार के प्रयोगों की अनुमति नहीं देती। उदाहरण के लिए कार्यालयीन हिंदी में अधिकारी दूसरे अधिकारी के लिए नाराज या प्रसन्न होते हुए भी इस तरह के वाक्यों का प्रयोग नहीं कर सकता–

(i) आपके निर्णय के कारण इस कर्यालय की तो नैया ही डूब गई।

(ii) आपके क्रियाकलापों का ही परिणाम है कि हमारे कार्यालय के मुँह पर कालिख पुत गई।

(iii) आपने मेरे प्रमोशन के लिए जो टिप्पण लिखा था उससे मेरे सूने जीवन में बहार आ गई।

7. इसी तरह से जहाँ सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा में अनेकार्थी संरचनाओं का प्रयोग बड़े ही सहज रूप में किया जाता है, वहीं प्रयोजनमूलक भाषा में केवल ऐसे वाक्यों का प्रयोग ही संभव है जिनका केवल एक ही अर्थ निकलता हो। यहाँ यह कोशिश की जाती है कि लेखक जिस बात को कहना चाहता है पाठक उस बात को उसी अर्थ में ग्रहण करे। उदाहरण के लिए सामान्य भाषा में हम इस तरह का वाक्य बोल सकते हैं, जैसे–मोहन ने दौड़ते हूए शेर को मार डाला। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं। मोहन दौड़ रहा था और उसने शेर को मार डाला तथा शेर दौड़ रहा था और मोहन ने शेर को मार डाला। पर इस तरह के अनेकार्थी वाक्य प्रयोजनमूलक हिंदी में इस्तेमाल नहीं किए जा सकते।

8. प्रयोजनमूलक भाषा का प्रयोग अलग–अलग प्रयोग क्षेत्रों में होता है, । अत: उसके भिन्न–भिन्न प्रयुक्ति रूप विकसित हो जाते हैं तथा प्रत्येक प्रयुक्ति की अपनी पारिभाषिक शब्दावली भी विकसित हो जाती है। इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उसी प्रयुक्ति क्षेत्र में ही किया जा सकता है। यदि किसी दूसरी प्रयुक्ति में भी वही शब्द किसी कारण से आता भी है तो उसकी अर्थछटा भिन्न हो जाती है। यहाँ कुछ प्रयुक्तियों के पारिभाषिकी शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

बैंकिंग हिंदी– खपत, वसीयत, रकम बैंकर, नोटिस, चेक, बिल, लेजर, खाता आदि।

परिवहन के क्षेत्र की हिंदी– सवारी, कुली, डामर, चालू, खपत, यातायात आदि।

विधि के क्षेत्र की हिंदी– करार, अनुबंध, दस्तावेज, दंड, दांडिक, कार्रवाई, अपराध आदि।

सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रायः कर्तृवाच्य के वाक्यों का प्रयोग अधिक किया जाता है, जबकि प्रयोजनमूलक भाषा में अकर्तृवाच्य (कर्मवाच्य) के प्रयोग अधिक मिलते हैं क्योंकि 'कर्तृवाच्य के वाक्यों में वक्ता द्वारा कर्ता के कार्य को महत्व दिया जाता है तथा 'कर्मवाच्य' के वाक्यों में उसी कर्ता के कार्य को निरस्त किया जाता है।

प्रयोजनमूलक भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियों में कर्मवाच्य के अधिक वाक्य मिलने का करण यही है कि प्रशासनिक भाषा में कार्य करने वाला या आदेश निकालने वाला कोई एक अधिकारी नहीं होता, जिसके कार्य को वक्ता द्वारा महत्व दिया जाए। यहाँ आदेश व्यक्ति नहीं बल्कि सरकार देती है और सरकार किसी एक अधिकारी का नाम नहीं है बल्कि एक व्यवस्था का नाम है। यहाँ किसी भी कार्य के लिए एक व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होता, बल्कि पूरी व्यवस्था ही उत्तरदायी होती है। यही कारण है कि प्रशासनिक हिंदी में कोई भी उच्च अधिकारी अपने कनिष्ठ अधिकारी से इस तरह के वाक्य (कर्तृवाच्य) प्रायः प्रयुक्त नहीं करता–

(i) मैं आपको सूचित करता हूँ कि.....

(ii) मैं आपकों आदेश देता हूँ कि.....

इनके स्थान पर प्रायः इस तरह के वाक्य (कर्मवाच्य) देखने को मिलते हैं।

(i) आपको सूचित किया जाता है।.....

(ii) आपको आदेश दिया जाता है।.....

10. जहाँ तक प्रयोजनमूलक हिंदी की विभिन्न प्रयुक्तियों का संबंध है, जनसंचार एवं पत्रकारिता की हिंदी को छोड़ कर अधिकांश का विकास अंग्रेजी की संरचनाओं का हिंदी में अनुवाद करने के फलस्वरूप हुआ है। हमने अंग्रेजी के संरचनात्मक ढाँचे में हिंदी की संरचनाओं को फिट करने की कोशिश की है, अतः लगभग सभी प्रयुक्तियों की वाक्य-संरचना अंग्रेजी के प्रभाव से ग्रसित है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि प्रयोजनमूलक भाषा में स्वभाविकता के स्थान पर दुरूहता एवं अटपटापन अधिक आ गया है।

इस तरह उपर्युक्त संरचनात्मक विशेषताएँ प्रयोजनमूलक हिंदी को आम बोल-चाल की हिंदी अथवा साहित्यक हिंदी से भिन्न करती हैं। प्रयोजनमूलक हिंदी के जितने भी प्रयुक्ति रूप विकसित हुए हैं जैसे-कार्यालयीन हिंदी, बैंकिंग हिंदी, जनसंचार एवं पत्रकारिता की हिंदी, वाणिज्य एवं व्यापार की हिंदी आदि इन सभी संरचनाओं पर यदि ध्यान दिया जाए तो उनमें ऊपर वर्णित सभी संरचनात्मक विशेषताओं के दर्शन होते हैं। हाँ, इनकी शब्दावली अपने-अपने संदर्भ एवं आवश्यकताओं के अनुरूप विशिष्ट हो जाती है। जनसंचार एवं पत्रकारिता की हिंदी को छोड़कर हिंदी की अधिकांश प्रयुक्तियों का विकास अनुवाद की बैशाखी के सहारे हुआ है। अत: उनकी संरचना में वह सहजता और स्वभाविकता नहीं है जो एक सामान्य प्रयुक्ति में होनी चाहिए। अंग्रेजी से अनुवाद करने के प्रयास में अधिकांश प्रयुक्तियाँ असहज एवं बोझिल हो गई हैं। जो भी है, आज प्रयोजनमूलक हिंदी के विभिन्न प्रयुक्ति रूप अपने-अपने विषय क्षेत्र में अपना स्वरूप खड़ा कर चुके हैं और उनके स्वरूप के निर्माण में उस प्रयुक्ति की शब्दावली एवं सरंचना का अक्षुण्ण प्रभाव है।

प्रशासनिक हिन्दी एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी

डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा के तर्क से देखें तो साहित्यिक हिन्दी एवं बोलचाल की हिन्दी के अलावा प्रशासनिक हिन्दी भी प्रयोजनमूलक हिन्दी का अंग है और कुछ विद्वान ऐसा मानते भी हैं तथा ऐसा मानने में कोई सैद्धांतिक आपत्ति नहीं है। इसका कारण यह है कि प्रयोजनमूलक भाषा का विशिष्ट गुण यह है कि चूँकि यह कार्यविशेष के क्षेत्र में प्रयुक्त होती है इस कारण यह प्रयुक्तिपरक होती है। प्रयुक्तिपरक होना ही इसका विशेष लक्षण है। प्रशासनिक हिन्दी की भी अपनी प्रयुक्तियाँ होती हैं। इस कारण प्रशासनिक हिन्दी को प्रयोजनमूलक हिन्दी का अंग माना जा सकता है। हमने अपनी पुस्तक में राजभाषा हिन्दी का विवेचन अलग अध्याय में किया है। राजभाषा हिन्दी का प्रयोग संघ के प्रशासनिक कार्यों में होता है। हमने राजभाषा हिन्दी का प्रयोजनमूलक हिन्दी से अलग स्वतंत्र अध्याय में विवेचन जानबूझकर किया है। राजभाषा हिन्दी के सम्बंध में प्रचलित गलत एवं भ्रामक मान्यता का खण्डन करने के लिए यह जरूरी था। इसके अतिरिक्त हम यह भी कहना चाहते हैं कि प्रशासनिक हिन्दी एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी में संरचनागत अन्तर हैं। प्रयोजनमूलक हिन्दी की वाक्य रचना मानक हिन्दी अथवा जनभाषा हिन्दी के अनुरूप कर्ता प्रधान है जबकि प्रशासनिक हिन्दी कर्म प्रधान

भाषा है। प्रशासन में कर्ता की प्रधानता नहीं होती। कर्म की प्रधानता होती है। कहने अथवा लिखनेवाला सरकार की ओर से आदेश एवं निर्देश देता है। अन्य राज्य सरकारों, संस्थाओं, प्रतिष्ठानों आदि में प्रयुक्त प्रशासन की भाषा में भी यही होता है। इस कारण प्रशासनिक हिन्दी में 'मैंने पद त्याग दिया' अथवा 'मैंने पद छोड़ दिया' जैसी वाक्य रचना नहीं होती। प्रशासनिक हिन्दी में कर्म प्रधान रचनाएँ मिलती हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. (अमुक) को पद छोड़ना पड़ा।
2. नियमों का पालन करना चाहिए।
3. सत्र शुरु हो चुका है।
4. स्वीकृति प्रदान की जाती है।
5. (अमुक) की खरीद की जानी है।
6. (अमुक) अधिनियम संशोधित किया गया।
7. पत्र स्पष्ट अक्षरों में लिखा जाना चाहिए।
8. आँकड़े सही पाए गए।

राजभाषा हिन्दी का विवेचन इन कारणों से हमने अपनी पुस्तक में अलग अध्याय में किया है। प्रयोजनमूलक हिन्दी की विवेचना करते समय इसी कारण प्रशासनिक हिन्दी के सम्बंध में विचार नहीं किया जाएगा। इस पुस्तक के संदर्भ में, प्रशासन के क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट प्रयोजनों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हिन्दी 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' है। इसका प्रयोग कार्य विशेष के लिए होता है इस कारण यह प्रयुक्तिपरक होती है। हमारे जीवन में अन्य जितने विविध प्रयोजन हैं, उद्देश्य हैं अथवा सरोकार हैं उनको अभिव्यक्त करनेवाली प्रयोजनमूलक हिन्दी के भी उतने ही भेद हैं, उतने ही प्रयुक्तिपरक रूप हैं। इनकी गणना सम्भव नहीं है।

जनभाषा हिन्दी तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी का अन्तर तथा 'प्रयुक्ति' (रजिस्टर)

हम फिर दोहराना चाहते हैं कि बोलचाल की जनभाषा हिन्दी तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी का मुख्य अन्तर प्रयुक्ति का है। जनभाषा की अपनी कोई विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली नहीं होती। किसी कार्य क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाली विशिष्ट शब्दावली ही 'प्रयुक्ति' है जिसके लिए अंग्रेजी में "Register" शब्द का प्रयोग होता है। पारिभाषिक दृष्टि से अंग्रेजी में यह शब्द समाजभाषा वैज्ञानिकों

द्वारा प्रयुक्त हुआ है जिसका पारिभाषिक अर्थ है। "एक रजिस्टर एक विशेष उद्देश्य के लिए या किसी विशेष सामाजिक सेटिंग में इस्तेमाल भाषा की एक किस्म है"। इसका अर्थ यही है कि विशेष कार्य क्षेत्र में जब हम अपनी भाषा का इस्तेमाल करते हैं तो उसकी विशिष्ट किस्म हो जाती है। यह विशिष्ट किस्म उस कार्य क्षेत्र की विशिष्ट शब्दावली, वाक्यांशों और मुहावरों के कारण बनती है। जितने कार्य क्षेत्र होंगे उनकी उतनी ही प्रयुक्तियाँ होंगी। समाजभाषावैज्ञानिक सामाजिक संदर्भों के अनुरूप भाषा प्रयोगो के बदलाव को भी 'रजिस्टर' के नाम से पुकारते हैं मगर हमने हिन्दी के संदर्भ में प्रयुक्ति को विशेष कार्य क्षेत्रों के विशेष उद्देश्यों अथवा प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल के लिए प्रयुक्त किया है। सामाजिक संदर्भों के अनुरूप जब हम अपनी भाषा में बदलाव करते हैं उस बदलाव को हमने भाषा की सामाजिक शैलियाँ माना है, भाषा की प्रयुक्तियाँ नहीं। हमारे विवेचन के हिसाब से विशेष कार्य क्षेत्र के अनुकूल भाषा का रूप रजिस्टर है, प्रयुक्ति है तथा सामाजिक संदर्भों के अनुरूप भाषिक बदलाव (उदाहरण के लिए औपचारिक भाषा शैली एवं अनौपचारिक भाषा शैली) सामाजिक शैलियाँ हैं। इसकी सैद्धांतिक विवेचना हमने अपनी 'भाषा एवं भाषाविज्ञान' शीर्षक पुस्तक में की है। व्यक्ति के कार्य क्षेत्र अनगिनत हैं। इसी के अनुरूप भाषा की प्रयुक्तियाँ भी अनगिनत हैं। कहावत है – 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता'। इसी प्रकार कार्य क्षेत्र अनगिनत तथा भाषा की प्रयुक्तियाँ भी अनगिनत। प्रत्येक कार्य क्षेत्र में कुछ विशिष्ट शब्दों का चलन हो जाता है। जब पहली बार कोई व्यक्ति किसी अपरिचित कार्य क्षेत्र में जाता है तो वहाँ कुछ नए शब्दों को सुनता है। एक दो दिन में वह उस कार्य क्षेत्र के उन विशिष्ट शब्दों के प्रयोग का आदी हो जाता है।

साहित्यिक हिन्दी एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी का अन्तर

साहित्यिक भाषा और प्रयोजनमूलक भाषा का अन्तर यह है कि साहित्य में लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है, विचलन या विपथन होता है जबकि प्रयोजनमूलक भाषा में वाच्यार्थ होता है। प्रत्येक प्रयुक्ति का अपना निश्चित अर्थ होता है। इस कारण व्यक्त शब्द का अर्थ एकार्थक होता है। प्रयुक्ति इसी कारण रूढ़ हो जाती है। उस कार्य क्षेत्र में कार्य करने वाला उस प्रयुक्ति के विशिष्ट किन्तु रूढ़ अर्थ से सहज ही परिचित हो जाता है, उसके प्रयोग का अभ्यस्त हो जाता है। प्रयुक्ति एक शब्द की भी हो सकती है एकाधिक शब्दों से बने वाक्यांश की भी हो सकती है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी एवं केन्द्रीय हिन्दी संस्थान

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रशिक्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है। जब जिस राज्य अथवा केन्द्र से जिस कार्य क्षेत्र के व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने की माँग आई, संस्थान ने उस माँग के अनुरूप पाठ्य सामग्री का निर्माण करके अपना प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया। उदाहरण के लिए संस्थान ने सन् 1993-94 में, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की माँग पर उनके सेवारत अधिकारियों को दूरस्थ शिक्षा माध्यम से हिन्दी सीखने की सामग्री का निर्माण किया। वैज्ञानिक क्षेत्र की हिन्दी, तकनीकी विषयों की हिन्दी, व्यापार-वाणिज्य की हिन्दी, पत्रकारिता की हिन्दी, बैंकों की हिन्दी आदि प्रयोजनमूलक हिन्दी के भेदों को जानने तथा उनका विश्लेषण करने के लिए संस्थान ने प्रयोजनमूलक हिन्दी का अनुसंधानमूलक सर्वेक्षण किया तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी के विकास की योजनाओं को वैज्ञानिक आधार दिया। संस्थान प्रयोजनमूलक अध्ययन अध्यापन की दृष्टि से हिन्दी पाठ्यक्रमों/पाठ्यचर्याओं का संसाधन, पुनर्गठन एवं आधुनिकीकरण करता रहता है। प्रयोजनमूलक हिन्दी के क्षेत्र में संस्थान की विशेषज्ञता को ध्यान में रखकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने सन् 1998-99 में, संस्थान को स्नातक स्तर के प्रयोजनमूलक हिन्दी पाठ्यक्रम के पुनर्गठन एवं संशोधन का कार्य सौंपा जिसे संस्थान ने पूरा किया तथा पाठ्यक्रम को अद्यतन रूप प्रदान किया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के शिक्षण को उच्च शिक्षा में आवश्यक विकल्प के रूप में स्वीकार कर लिया है और अब देश के दिल्ली, पुणे, हैदराबाद, लखनऊ आदि कई विश्वविद्यालयों में व्यवसायोन्मुख तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी के पाठ्यक्रम चल रहे हैं।

प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास के कारण

जब किसी भाषा का प्रयोग भिन्न-भिन्न संदर्भों में अलग-अलग प्रयोजनों के लिए किया जाता है, जब उस विशिष्ठ संदर्भ में उस भाषा की शब्दाबली और संरचना विकसित हो जाती है। उदाहरण के लिए आज हिंदी का प्रयोग केवल बोलचाल या साहित्य की भाषा तक ही सीमिति नहीं है। बल्कि न जाने कितने विषय क्षेत्रों में उसका बखूवी प्रयोग हो रहा है। चाहे सरकारी कार्यालय हो, या बैंक हों, विज्ञान और तकनीकी का क्षेत्र हो, व्यवसाय हो, पत्रकारिता या मीडिया का क्षेत्र हो सभी क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है। इन सभी क्षेत्रों की

हिंदी की आज अपनी-अपनी 'पारिभाषिक शब्दावली' और 'विशिष्ट सूचनाएँ विकसित हो चुकी है जो भाषा रूप को दूसरे से अलग करती है, भाषा के इन्हीं रूपों को हिंदी 'बैंकिंग हिंदी', 'जनसंचार माध्यमों की हिंदी', 'वाणिज्य एवं व्यापार की हिंदी', 'पत्रकारिता की हिंदी', 'सेना में हिंदी', 'रेलवे में हिंदी' आदि न जाने कितने हिंदी के प्रयोजनमूलक रूप विकसित हो चुके हैं। प्रयोजनमूलक भाषा की प्रयोजनमूलक शैलियों को ही 'प्रयुक्ति' कहा जाता है। तकनीकी ढंग से कहें तो कह सकते हैं कि कार्यालयीन हिंदी अथवा 'पत्रकारिता की हिंदी आदि सभी रूप हिंदी की प्रयुक्तियाँ जो अपने-अपने विषय क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग होने के फलस्वरूप विकसित हुए हैं। उदाहरण के लिए पत्रकारिता की हिंदी में सोना/चांदी महँगे/सस्ते नहीं होते बल्कि 'सोना उछलता है' और चाँदी लुढ़कती है', दालें नरम पड़ती हैं तो 'तिलहन गरम हो जाता है', जैसे- सोना उछला, चाँदी लुढ़की, दालें नरम, तिलहन गरम।

भारत जैसे देश में प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास के कारणों पर विचार करें तो इस दशा में तीन महत्वपूर्ण कारण हमारे सामने आते हैं– भारतीय संविधान में हिंदी को राजभाषा बनाया जाना तथा उसके विकास के लिए विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाएँ किया जाना, तरह:तरह के तकनीकी उपकरण तथा कम्प्यूटर तथा आदि की सुविधाएँ उपलब्ध कराया जाना तथा सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में योगदान दिया जाना, ये तीनों ऐसे घटक हैं जिनके कारण प्रयोजनमूलक हिंदी का विकास विभिन्न विषय क्षेत्रों में तीव्रता के साथ हुआ।

देश की स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान निर्माताओं द्वारा हिंदी को राजभाषा का जो दर्जा दिया गया और उसके फलस्वरूप देश में जो स्थितियाँ उभरीं, उन्हें प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास का 'संवैधानिक कारण' समझना चाहिए। देश में विभिन्न तकनीकी उपकरणों और कम्प्यूटर के विकास ने जो प्रयोजनमूलक हिंदी के विभिन्न रूपों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इसके अतिरिक्त प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास में सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

1. संवैधानिक कारण

हिंदी के प्रयोजनमूलक भाषा रूपों के विकास के संवैधानिक कारणों में सबसे महत्वपूर्ण घटना है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में हिंदी को

राजभाषा का गौरव प्राप्त होना। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से ही गांधी जी तथा देश के अन्य बड़े-बड़े नेताओं ने हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' के रूप में स्वीकृति प्रदान की थी। स्वतंत्रता पूर्व जो प्रयास हुए उनमें एक ही भावना काम कर रही थी कि हिंदी इस देश की ऐसी भाषा है जो सारे भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँध कर आगे बढ़ा सकती है। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के जब हमारा संविधान बना तो संविधान निर्माताओं ने पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने की शक्ति रखने वाली हिंदी को केवल प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए ही सीमित कर दिया। जो भाषा स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन में राष्ट्रीय जनजागरण की प्रतनिधि थी, वह संविधान निर्माताओं द्वारा संघ की राजभाषा बन कर रह गई।

आजादी प्राप्त 1947 होने के बाद 1950 में भारत 'गणतंत्र' बना और 26 जनवरी, 1950 को इसका संविधान लागू हुआ। संविधान में यह व्यवस्था की गई कि 'देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाले हिंदी ही संघ की राजभाषा होगी।' लेकिन संविधान निर्माताओं ने यह अनुभव किया कि हिंदी उस समय तक राजभाषा के कार्यों का निर्वाह कर पाने के लिए सक्षम नहीं है।

अत: संविधान में यह व्यवस्था की गई कि 1965 तक राजभाषा के रूप में अंग्रेजी का ही प्रयोग पूर्ववत् चलता रहेगा' तथा इस दौरान हिंदी में पारिभाषिक शब्दावली, संरचनाएँ आदि विकसित करने का कार्य किया जायेगा। इन दोनों व्यवस्थाओं का संबंध संविधान के अनुच्छेद 343 के खंड (1) तथा (2) से है। बात यहीं तक रहती तो भी कोई बात न थी। इसी अनुच्छेद के खंड (3) में संसद को यह अधिकार भी दे दिया गया कि 1965 के बाद भी संसद चाहे तो 'राजभाषा अंग्रेजी' के प्रयोग को जारी रखने के बारे में व्यवस्था दे सकती है।

इन 15 वर्षों की अवधि के दौरान हिंदी के कार्य को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रपति के दो आदेश निकले। पहला आदेश 27 मई, 1952 को निर्गत हुआ। इस आदेश के द्वारा राज्य के राज्यपालों, उच्च न्यायालय के न्यायधीशों तथा उच्चतम न्यायधीशों की नियुक्ति की अधिसूचनाओं के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी और अंतराष्ट्रीय अंकों के अलावा देवनागरी के अंकों को प्राधिकृत किया गया।

राष्ट्रपति का दूसरा आदेश सन् 1959 में जारी हुआ और इसमें संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया। 'इन प्रयोजनों में जनता से पत्र-व्यवहार, प्रशासनिक रिपोर्ट तथा संसद में प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट, सरकारी संकल्पों तथा विधायी अधिनियमों, हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाने वाली राज्य सरकारों के बीच

परस्पर पत्र व्यवहार, संधियों और करारों, अन्य देशों की सरकारों तथा उनके दूतावासों एवं अन्तराष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र-व्यवहार आदि सम्मिलित किए गए।

अनुच्छेद 343 की व्यवस्थाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 15 वर्ष की अवधि में यह कोशिश तो की गई कि हिंदी का प्रयोग ज्यादा बढ़े पर संसंद को यह अधिकार देकर कि 15 वर्ष बाद भी वह चाहे तो अंग्रेजी के प्रयोग को बनाए रख सकती है, वास्तव में हिंदी को राजभाषा का जो दरजा मिलना चाहिए था, नहीं मिला। हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए सन् 1952 तथा सन् 1955 में जो प्रयास-उपाय किए गए थे उनसे एक ओर हिंदी का प्रयोग बढ़ा तो अवश्य, पर दूसरी ओर सन् 1965 की समयावधि समाप्त होने को आ रही थी। सन् 1963 में 'राजभाषा अधिनियम' द्वारा हिंदी को देश की एकमात्र राजभाषा घोषित किया जाना था, परंतु इसको लेकर कुछ प्रदेशों (विशेषकर तमिलनाडु) में हिंदी का विरोध बढ़ने लगा। देश में एक वर्ग ऐसा खड़ा हो गया जो यह चाहता था कि अंग्रेजी ही इस देश की राजभाषा बनी रहे।

हिंदी विरोधी इन आंदोलनो के चलते इस अधिनियम में संशोधन (1967) किया गया। सन् 1967 में किए गए संशोधन द्वारा हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी को सह-राजभाषा के रूप में अपना लिया गया।

हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी को भी सह-राजभाषा के रूप में अपनाने के पीछे संविधान निर्माताओं के मन में संभवत: यह भावना रही होगी कि किसी तरह देश में उभरे भाषाई तनावों को पहले कम करने की कोशिश की जाए तथा धीरे-धीरे हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाय।

संविधान के अनुच्छेद 344 (1) में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया था कि वे निर्धारित अवधि के बाद सरकारी क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग की स्थिति को देखते हुए 'राजभाषा आयोग' का गठन कर सकते हैं।

इसी व्यवस्था के तहत 7 जून, 1955 को 'राजभाषा आयोग' का गठन का आदेश निकाला गया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1956 में प्रस्तुत की तथा उक्त आयोग की संस्तुतियों की जाँच के लिए 3 दिसंबर को एक समिति गठित की। समिति में 20 सदस्य लोकसभा से तथा 10 सदस्य राज्यसभा से नामित किए गए। समिति ने फरवरी 1959 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें निम्नलिखित संस्तुतियाँ की गयीं-

राज्य शिक्षा और सरकारी कामकाज के लिए विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को अपनाया जाए।

–संघ के सरकारी कामकाज के लिए किसी एक भाषा को अपनाया जाए।

–अंग्रेजी से हिंदी की ओर परिवर्तन धीरे–धीरे किया जाए।

1965 तक अंग्रेजी मुख्य राजभाषा रहे तथा हिंदी सह–राजभाषा तथा 1965 के बाद हिंदी को संघ की मुख्य राजभाषा बनाया जाए तथा अंग्रेजी सह राजभाषा के रूप में चलती रहे।

आगे चल कर राजभाषा (संशोधन) अधिनियम 1967 तथा राजभाषा नियम 1976 के आने से हिंदी के प्रयोग की स्थितियों में और भी वृद्धि हुई। राजभाषा अधिनियम के साथ ही सरकार की भाषा–नीति सम्बन्धी संकल्प 18 जनवरी, 1968 को जारी किया गया। इसके अंतर्गत सरकारी कामकाज में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए वार्षिक–कार्यक्रम बनाए जाने और इनसे संबधित मूल्यांकन–रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व केंद्र सरकार को दिया गया। इसी संकल्प में संविधान की आठवीं–अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाओं के विकास की जिम्मेदारी केंद्र सरकार को सौंपी गई।

25 जून, 1975 को, गृह–मंत्रालय के अधीन 'राजभाषा विभाग' की स्थापना की गई और राजभाषा अधिनियम 1963 और 1967 में किए गए प्रावधानों को व्यवहार में लाने हेतु 'राजभाषा नियम 1976' के रूप में भारत के राजपत्र में 17 जुलाई, 1976 को प्रकाशित किया गया। राजभाषा नियम 1976 की महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं।–

जो पत्र हिंदी में प्राप्त होते हैं, उनके उत्तर हिंदी में दिए जाएँगे।

हिंदी और अंग्रेजी में जारी होने वाले सभी दस्तावेज दोनों भाषाओं में जारी किए जाएँगे।

जिन अधिकारियों/कर्मचारियों ने मैट्रिक या उसके समकक्ष–स्तर का हिंदी–ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन्हें हिंदी का कार्यसाधक–ज्ञान प्राप्त माना जाएगा।

फाइल पर हिंदी में टिप्पणी या मसौदा लिखने वाले कर्मचारी से उसका अंग्रेजी अनुवाद नहीं माँगा जाएगा।

प्रत्येक कार्यालय–प्रधान की यह जिम्मेदारी होगी, वह देखे कि राजभाषा–अधिनियम तथा राजभाषा नियमों का अनुपालन समुचित रूप से हो रहा है या नहीं?

इस प्रकार भारतीय संविधान ने हिंदी को राजभाषा का दरजा तो दिया पर 1965 तक अंग्रेजी में सरकारी कामकाज चालू रखने की यथास्थिति बनाए रखी। 1965 के बाद जब अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को स्थानापन्न करने की बात सामने आयी तो कुछ हिंदीतर प्रदेशों द्वारा इसका खूब विरोध किया गया। राष्ट्रीयता पर राजनीति हावी होती गई और यह स्थिति कभी नहीं आई कि सरकारी-स्तर पर हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित किया जाता। आज स्थिति यह है सरकारी कामकाज में हिंदी और अंग्रेजी दोनों में कार्य किया जा रहा है फिर भी देखा जाए तो भारतीय सामाजिक मानसिकता में बदलाव नहीं आया। व्यवहार के स्तर पर अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहा। सरकारी पत्राचार, टिप्पण, प्रारूपण आदि क्षेत्रों में अंग्रेजी में कार्य अनुवाद की बैशाखी के माध्यम से विकसित हुआ।

जो भी हो, आज पूरे देश में हिंदी का प्रयोग संपर्क-भाषा के रूप में बढ़ा है। हिंदीतर प्रदेशों में अब लोगों को यह अनुभव होने लगा है कि इस देश में रहना है, अपने बच्चों को शिक्षा, नौकरी आदि के क्षेत्र में आगे बढ़ना है तो केवल अपने क्षेत्र में सिमट कर नहीं बैठा जा सकता। यदि अपने क्षेत्र से बाहर निकल कर देश के किसी भी क्षेत्र में जाना है तो केवल अंग्रेजी से काम नहीं चल सकता। गत दस-पंद्रह वर्षों में स्थिति में तेजी से परिवर्तन हुआ है। आज देश के किसी भी कोने में चले जाइए, संपर्क-भाषा हिंदी के माध्यम से संप्रेषण किया जा सकता है। 'मीडिया' और केबल टी.वी.' ने इस क्षेत्र में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है।

इस तरह हिंदी को राजभाषा के रूप में संविधान द्वारा प्रतिष्ठित किए जाने से धीरे-धीरे यह स्थिति उभरी कि हिंदी का प्रयोग न केवल सरकारी कामकाज में बल्कि अलग-अलग क्षेत्रों में भी होना प्रारंभ हुआ। बैंक वाणिज्य एवं व्यापार, विज्ञान, जनसंचार माध्यम, पत्रकारिता, विज्ञापन, रेल, सेना आदि क्षेत्रों में अनुवाद के सहारे ही सही हिंदी का प्रयोग आरंभ हुआ। धीरे-धीरे इन क्षेत्रों के अपने-अपने कार्य क्षेत्र से संबधित शब्दावली एवं संरचनाओं का विकास हुआ। इस तरह इन सभी क्षेत्रों में प्रयोजनमूलक हिंदी के अलग-अलग रूप विकसित हुए।

2. तकनीकी कारण

आज का युग विज्ञान और तकनीकी का युग है। सूचनाओं का जिस प्रकार आज विस्फोट हो रहा है, वैसा आज से पहले कभी नहीं हुआ। कंम्प्यूटर के आगमन से आज ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बड़ा बदलाव दिखाई देता है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ आज कम्प्यूटर ने अपनी उपयोगिता

साबित न की हो। जहाँ तक भाषाओं के अध्ययन, विश्लेषण, प्रचार एवं प्रसार की बात है, उसके लिए भी यांत्रिक उपकरणों तथा कम्प्यूटर की मदद से हम अपने लक्ष्य को बहुत ही सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ तक प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास की बात है, यांत्रिक उपकरणों एवं कम्प्यूटरों की मदद से विभिन्न कार्य-कलाप सुगमता एवं तीव्रता से संपन्न किए जा सकते हैं। अनुवाद के कार्य में कंम्प्यूटर काफी उपयोगी साबित हुआ है। अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करने की तुलना में किसी भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषा में अनुवाद करना अपेक्षाकृत आसान कार्य है, क्योंकि यहाँ एक तो समान शब्दावली काफी मात्रा में मिलती है दूसरे सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश भी समान है। अनुवाद कार्य के लिए दो चीजों का विशेष महत्व होता है। 'कोश' तथा 'भाषिक विश्लेषण'। कंम्प्यूटर के अनुवाद के लिए द्विभाषी कोश तैयार करना बहुत जरूरी है। प्रारंभ में भाषा विश्लेषण और कंप्यूटर प्रोग्रामिंग को साथ-साथ रखा गया था। लेकिन आगे चलकर यह अनुभव किया गया कि दोनों को अलग-अलग रखना ही ठीक होगा क्योंकि भाषिक विश्लेषण में यदि किसी कारण से कुछ परिवर्तन करना पड़ता है तो सारा प्रोग्राम ही बदलना पड़ सकता है। आज कम्प्यूटर से हिंदी में काम किया जाना आंरभ हो गया है। चाहे वह पुस्तक हो या चाहे पत्र-पत्रिकाएँ हों, कम्प्यूटर की मदद से हम अनुवाद कार्य कम समय में तीव्रता से कर सकते हैं। जब विश्व में विदेशी भाषाओं के विकास में कम्प्यूटर और यांत्रिक उपकरण इतने उपयोगी साबित हुए हैं तो प्रयोजनूलक हिंदी के विकास के लिए भी इनका उपयोग किया जाए तो हम अपने लक्ष्य को सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। आज हिंदी में कार्य किए जाने के लिए, राजभाषा विभाग के प्रयत्न से, विभिन्न प्रकार की यांत्रिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं परंतु वे अभी भी पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में और भी तेजी से कार्य करने की आवश्यकता है।

3. संस्थागत कारण

प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास में सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार की संस्थाओं की विशिष्ट भूमिका रही है। जहाँ तक गैर-सरकारी संस्थाओं का सवाल है, इनमें से अधिकांश स्वतंत्रता पूर्व से ही हिंदी की सेवा कर ही हैं। दूसरी ओर सरकारी संस्थाओं और संगठनों की ओर से यह कार्य स्वतंत्रता के बाद संविधान द्वारा हिंदी को राजभाषा का दरजा दिए जाने के बाद आरंभ हुआ है। सरकारी संगठनों के प्रयासों से जहाँ हिंदी के प्रयोजनमूलक रूप को विकसित

होने का अवसर मिला है वहीं गैर-सरकारी संस्थाओं के द्वारा हिंदी का सर्वांगीण विकास हुआ है।

गैर सरकारी संस्थाएँ–भारत में स्वतंत्रता-आंदोलन के साथ ही साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आंदोलन ने भी जन-जीवन को काफी प्रभावित किया था।

इ**न समस्त सामाजिक**-धार्मिक आंदोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ सहयोग कर लोगों के मन में स्वभाषा-प्रेम को जगाने तथा जनभाषा और साहित्य को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन सभी आदोलनों के प्रवर्तकों ने अंग्रेजी की तुलना में हिंदी को राष्ट्रीय-स्तर पर महत्व दिया और हिंदी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में जिन धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, वे इस प्रकार हैं-

धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाएँ
ब्रह्म समाज
आर्यसामाज
सनातन धर्म सभा
थियोसोफिकल सोसाइटी
रामकृष्ण मिशन
राधा-स्वामी संप्रदाय
हिंदी प्रचारक संस्थाएँ

हिंदी के प्रचार-प्रसार में सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं के अलावा अनेक स्वैच्छिक संस्थाएँ भी आगे आयीं। इनमें से अधिकांश की स्थापना स्वतंत्रता पूर्व हुई थी पर ये आज भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य में अपना-अपना सहयोग दे रही हैं। देश के हिंदीतर प्रान्तों में रह कर इन संस्थाओं ने वहाँ हिंदी के लिए एक अनुकूल वातावरण तैयार किया है और लगभग सभी संस्थाएँ नि:स्वार्थ भाव से आज भी अपना काम कर रही हैं। इनमें कुछ संस्थाएँ है–

नागरी प्रचारिणी सभा
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार-सभा, मद्रास
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा, पुणे
बंबई हिंदी विद्यापीठ, बंबई
हिंदी विद्यापीठ, देवघर
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
नागरी लिपि परिषद, दिल्ली

सारे देश में फैली हुई विविध स्वैच्छिक संस्थाओं के हिंदी प्रचार एवं प्रसार के कार्यक्रमों को कार्यान्वित किए जाने के फलस्वरूप ही आज हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा मिली है। कतिपय हिंदीतर प्रदेशों में जब-जब हिंदी के विरोध के स्वर तीव्र हुए उस समय इन स्वैच्छिक संस्थाओं ने हिंदी के अनुकूल वातावरण बनाए रखने में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ. मलिक मोहम्मद के अनुसार 'इन स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकर्ता राष्ट्रीय-भावना और सेवा-भाव से प्रेरित होकर हिंदी की सेवा में डटे रहे हैं। हिंदी भाषा और साहित्य के उन्नयन में इन संस्थाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। जबसे हिंदी को राजभाषा का पद मिला, तब से इन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र भी बहुत बढ़ गया।'

सरकारी संस्थाएँ

सरकारी संस्थाओं के लिए राष्ट्रपति के निर्देश– स्वतंत्रता के बाद संविधान द्वारा जब हिंदी को संघ की 'राजभाषा' का दर्जा दिया गया तो 'राजभाषा' के विकास, प्रसार एवं स्वरूप-निर्धारण का उत्तरदायित्व भी संघ-सरकार का हो गया। केंद्र सरकार द्वारा हिंदी के विकास एवं हिंदी प्रयोग की क्षमताओं को विकसित करने के उद्देश्य से शब्दावली निर्माण, अनुवाद कार्य, प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से शिक्षा-मंत्रालय (मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय), गृह-मंत्रालय, विधि-मंत्रालय तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को सौंपा गया तथा अन्य सभी मंत्रालयों को भी 'राजभाषा' के विकास हेतु कार्य किए जाने के निर्देश दिए गए। सरकारी स्तर पर हिंदी के विकास के लिए सभी मंत्रालयों ने उनको सौंपे गए कार्यों को पूरा करने के उद्देश्य से अनेक विभाग और अधीनस्थ कार्यालयों, संस्थाओं और संगठनों की भी स्थापना की। हर मंत्रालय में अपनी-अपनी हिंदी सलाहकार समितियाँ बनाई गयीं, जिनके अध्यक्ष उस मंत्रालय के मंत्री बनाए गए। इने समितियों में संसद के सदस्यों,

विभिन्न मंत्रालयों के अधिकारियों के अलावा गैर-सरकारी सदस्यों को भी सदस्य बनाया गया। सभी मंत्रालयों के हिंदी के कार्यक्रमों में एक समन्वय स्थापित करने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में 'केंद्रीय हिंदी समिति' का भी गठन किया गया। सभी मंत्रालय तथा उनके अधीनस्थ विभागों ने राजभाषा हिंदी के विकास के लिए विभिन्न योजनाएँ तथा कार्यक्रम संचालित किए, जिसके फलस्वरूप हिंदी का प्रयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिए अलग-अलग विषय क्षेत्रों में किया जाना आरंभ हुआ और प्रयोजनमूलक हिंदी की विभिन्न प्रयुक्तियों का विकास संभव हो सका।

प्रयोजनमूलक हिंदी– वैज्ञानिक और तकनीकी भाषा-रूप

जसपाली चौहान

भाषा और मनुष्य का आपसी संबंध कुछ इस प्रकार का है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा ही हमारे चिंतन, भाव-बोध तथा संप्रेषण का अन्यतम साधन है। हम न केवल भाषा के सहारे सोचते हैं, अपितु समझते-समझाते भी भाषा के सहारे हैं। भाषा ही हमारे स्मृति-कोश का एक मुख्य आधार है।

भाषा के जिस रूप का प्रयोग किसी विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति हेतु किया जाता है, उस भाषा-रूप का प्रयोजनमूलक भाषा (Functional Language) कहा जाता है।

हिंदी में 'फंक्शनल लैंग्वेज' के समानार्थी शब्द के रूप में 'प्रयोजनमूलक' शब्द का प्रयोग बीसवीं सदी के सातवें दशक से होने लगा है।

प्रयोजनमूलक हिंदी का तात्पर्य है-जीवन की विविध विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपयोग में लाई जाने वाली हिंदी। प्रयोनमूलक हिंदी का मुख्य लक्ष्य है-जीविकोपार्जन के विविध क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले भाषा-रूपों को प्रस्तुत करना बीसवीं शती के अंतिम पाँच दशकों में हिंदी केवल सामान्य बोलचाल तथा साहित्य तक ही सीमित न रहकर प्रशासन, न्याय, पत्रकारिता, वाणिज्य, बैंक, विज्ञापन, आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी प्रयुक्त हो रही है। ये सभी क्षेत्र औपचारिक भाषा-प्रयोग के क्षेत्र हैं, जिनके लिए हिंदी में, उन क्षेत्रों के भाषारूप को विकसित करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इस प्रकार विभिन्न व्यवसायों से संबंधित व्यक्तियों जैसे– व्यापारी, पत्रकार, डॉक्टर, वकील, प्रशासक, वैज्ञानिक

आदि के कार्यक्षेत्रों में प्रयुक्त विशिष्ट हिंदी का भाषा-रूप ही 'प्रयोजनमूलक' हिंदी कहलाता है।

आज हिंदी मात्र साहित्य-आस्वादन तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसका उपयोग जीविकोपार्जन से सम्बद्ध विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है।

इन विभिन्न क्षेत्रों को आधार बनाते हुए 'प्रयोजनमूलक' हिंदी के स्वरूप-निर्धारण हेतु, उसके विभिन्न भाषा-रूपों की चर्चा की जाती है, जैसे-

वाणिज्य-व्यापार सम्बद्ध हिंदी - जिसमें विभिन्न बाजार-मंडियों, बाजार-दलालों, सट्टा-बाजार आदि का भाषा रूप सम्मिलित है।

कार्यालय हिंदी - जिसमें विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी कार्यालयों तथा प्रशासन से सम्बद्ध भाषा-रूप सम्मिलित है।

तकनीकी हिंदी - जिसमें विभिन्न तकनीकी विषयों, विभिन्न क्षेत्रों विभागों जैसे- इंजीनियरिंग, कारपैन्टरी, लुहार-कार्य, प्रैस, फैक्टरी, मिल आदि के कार्यों के सैद्धान्तिक तथा प्रयोगिक क्षेत्रों तक सम्बद्ध भाषा रूप सम्मिलित है।

समाजशास्त्रीय हिंदी - जिसमे समाजशास्त्र या समाज विज्ञान से सम्बद्ध उच्चस्तरीय विषयों जैसे- दर्शनशास्त्र, योगशास्त्र, ज्योतिशास्त्र, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि विषयों के प्रस्तुतीकरण से सम्बद्ध भाषा रूप सम्मिलित हैं।

साहित्यिक हिंदी - जिसमें आनन्ददायक उच्च स्तरीय साहित्य की विभिन्न विद्याओं जैसे-कविता, कहानी, नाटक, समालोचना, निबंध आदि के प्रस्तुतीकरण से सम्बद्ध भाषा-रूप सम्मिलित है।

आज का युग विज्ञान और तकनीक का युग है। भारत भी विज्ञान और तकनीक के विकास से जुड़ा हुआ है। यहाँ भी विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा का ही वर्चस्व है। पर हिंदी भी इस क्षेत्र में तेजी के साथ पदार्पण कर रही है। इस क्रम में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का निर्माण और निर्धारण किया जा रहा है। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्त्वावधान में यह कार्य तेजी से सम्पन्न किया जा रहा है। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में हिंदी में भी लेखन किया जा रहा है। हिंदी के माध्यम से विद्यार्थियों को विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है। इस क्षेत्र में हिंदी ने काफी प्रगति की है, पर अभी उसे लम्बा रास्ता तय करना है।

5

प्रशासनिक हिन्दी

हमारे देश में काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैंड तक अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ बोली जाती हैं। इनमें विभिन्नता के होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। प्राचीन काल से भावनात्मक एकता के संदेश के साथ-साथ भारतीय साहित्य में देश की सांस्कृतिक गरिमा, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों को समान रूप से वाणी मिली है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाएँ भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस धरती पर सांस्कृतिक एकता की पावन गंगा प्रवाहित करती है।

भाषा मानव को मानव से जोड़ती है। यह विचारों के आदान-प्रदान में सहायक होने के साथ-साथ परंपराओं, संस्कृतियों और मान्यताओं तथा विश्वासों को समझने का माध्यम भी है। प्राचीनकाल से ही विभिन्न भाषाएँ इस देश में पारस्परिक स्नेह, भाई-चारे की भावना तथा सांस्कृतिक एकता और अखंडता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमका निभाती रही है। इस विचार से देखा जाए तो संस्कृत, हिन्दी तथा भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त अन्य प्रदेशिक भाषाएँ इस देश की सामाजिक संस्कृति के विकास के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

राष्ट्रीय एकता एवं प्रशासनिक हिन्दी

राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका की बात को आज समाजशास्त्री और भाषा वैज्ञानिक समान रूप से स्वीकार करने लगे हैं। यह बात इसलिए भी महत्व की है कि भाषा अगर एक ओर राष्ट्रीय एकीकरण का महत्वपूर्ण उपादान बन सकती है तो वहीं दूसरी ओर वह समाज में तनाव द्वंद, विद्वेष और विघटन की प्रवृत्ति को भी जन्म दे सकती है। अत: यह आवश्यक है कि भाषा की इस दुहरी संभावना को हम सजग भाव से समझें और एक ऐसी भाषा नीति को अपनाएं जो देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में सहायक हो, हमारी बहुभाषिक यर्थाथता के अनुकूल हो और जो राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में साधक हो। इधर हाल में अंग्रेजी में प्रकाशित दो लेख सामने आए हैं जिनमें इस समस्या को उठाने का प्रयास किया गया है पर भारत की भाषायी समस्या की पकड़ ढीली होने के कारण जो निष्कर्ष उनमें निकाले गये हैं वे न केवल भ्रांतिपूर्ण हैं बल्कि घातक भी हैं।। इनमें पहला लेख सुनंदा सान्याल का 'इज लेंग्वेज युनाइट पीपुल?' (1981) है और दूसरा कुलदीप नैयर का है 'ए गवर्नमेंट शुड नॉट ग्लोरीफाइ ए लैंग्वेज' (1982)। इन दानों लेखों की पृष्ठ भूमि में राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में हिन्दी-अंग्रेजी की भूमिका का प्रश्न रहा है। दोनों ही लेखों की ध्वनि यह रही है कि आज हम हिन्दी को जरूरत से ज्यादा महत्व दे रहे हैं और सरकार द्वारा हिन्दी को दिया जाने वाला समर्थन देश के हित में नहीं है। अपने पक्ष में इन दोनों सिद्धांतों ने कुछ निराले तर्क दिये हैं, जिसकी छानबीन आज आवश्यक है क्योंकि ये ही तर्क प्राय: हमें अन्य व्यक्तियों द्वारा भी सुनने को मिलते रहते हैं।

सुनंदा सान्याल का यह मत है कि हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा सामाजिक नियंत्रण के कहीं अधिक अवसर प्रदान कर सकती है। और यही कारण है कि आज कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए बेहिसाब खर्च करने में संकोच नहीं करता। उनके मत में अंग्रेजी भी भारत के लिए उसी प्रकार स्वभाषा है जिस प्रकार हिन्दी, अहिन्दी-भाषिओं के लिए। मिसाल के तौर किसी तेलुगु या तमिल भाषी के लिए अगर अंग्रेजी परायी भाषा है तो हिन्दी भी उसकी अपनी भाषा नहीं है। यह एक साफ और सीधी बात है। यह कहना केवल एक वाक्छल ही है कि भारतीय भाषा होने के नाते हिन्दी पर अधिकार प्राप्त कर लेना अंग्रेजी के मुकाबले अधिक आसान होना चाहिए। इस

तर्क में कोई बल नहीं है। कुलदीप नैयर यह तो स्वीकार करते हैं कि भारत में हिन्दी बोलने और समझने वालों की संख्या अन्य भाषाभाषियों की तुलना में सबसे अधिक है और लोकतन्त्र में संख्या को महत्व देना ही चाहिए। अत: हिन्दी को अन्तत: राजभाषा बनना ही है। लेकिन उनके अनुसार तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन को सफल बनाने की योजना वस्तुत: आग से खेलने जैसा है क्योंकि इससे भाषायी द्वेष बढ़ने की संभावना है। उनके अनुसार न तो हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की दृष्टि से सरकार को कोई कदम उठाना चाहिए और न ही भाषा को नियोजित करने के लिए प्रयत्न। हमें तो उस दिन की मात्र प्रतीक्षा करनी चाहिए जब दक्षिण के अहिन्दी भाषी प्रदेश स्वत: हिन्दी की स्वीकृति की घोषणा कर दें।

ऐसा लगता है कि कुलदीप नैयर 'भाषा नियोजन' की संकल्पना एवं प्रक्रिया से पूरी तरह अपरिचित हैं और सुनंदा सान्याल उनसे परिचित हैं, लेकिन भारत की भाषायी यर्थाथता को जानबूझकर नकारना चाहती हैं उनकी चिंता उस भाषा की खोज और स्थापना की तरफ सिमटी है जो या तो विशाल सभा पर प्रभुत्व रख सके या जो सामाजिक नियंत्रण का साधन और शस्त्र बन सके। संप्रेष्णीयता, संचार और एकीकरण की प्रक्रिया आदि को भाषा नियोजन का लक्ष्य बनाने की अपेक्षा वे राज्यों के लिए प्रभुता संपन्न भाषा की बात उठाते हैं और अंग्रेजी को उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानते हैं।

अंग्रेजी बनाम हिन्दी और हिन्दी बनाम अन्य क्षेत्रीय भाषाओं पर विचार करते समय हम प्राय: यह बात भूल जाते हैं कि अंग्रेजी को मात्र भाषा के रूप में ग्रहण करने वालों की संख्या नहीं के बराबर है। 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की पूरी आबादी 548, 195, 652 है पर अंग्रेजी को मातृभाषा के रूप में घोषित करने वालों की संख्या मात्र 191, 595 है। इसके अतिरिक्त हिन्दी को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या 208, 514005 है। हिन्दी कम से कम 6 राज्यों और 2 संघीय प्रदेशों की प्रमुख भाषा है, यथा राजस्थान (91.73 प्रतिशत), हरियाणा (89.42 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (88. 54 प्रतिशत), बिहार (79.77), दिल्ली (75.97 प्रतिशत) और चंडीगढ़ (55.96 प्रतिशत)। हिन्दी भाषी प्रदेशों के मुख्यमंत्री अगर अपने क्षेत्रों में भाषा और संप्रेषण की समस्या, उसके मानकीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा अन्य भाषाओं के साथ उसके सम्बंध के बारे में विचार करने के लिए किसी समय मिलते हैं तब कुलदीप नैयर ऐसे विद्वान चिंतित क्यों हो उठते हैं ? क्या उन्हें यह भय है कि बहुसंख्यक होने के बावजूद हिन्दी, जो अब तक

प्रभुता-संपन्न अंग्रेजी के नीचे दबी सिसक रही थी, अपना नया व्यक्तित्त्व ग्रहण कर लेगी?

इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना होगा किसी भाषा का अपना अखिल भारतीय रूप क्या है? संख्या की दृष्टि से हिन्दी पंजाब (20.01 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (6.13 प्रतिशत), अंडमान निकोबार (16.07 प्रतिशत) में दूसरी प्रमुख भाषा के रूप में है और कम से कम पांच प्रदेशों में तीसरे स्थान पर है, यथा जम्मू-कश्मीर (15.07 प्रतिशत), असम (5.34 प्रतिशत), महाराष्ट्र (5.02 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (2.28 प्रतिशत) एवं त्रिपुरा (1.48 प्रतिशत)। अंग्रेजी की शक्ति भारत में द्वितीय भाषा के रूप में है, यद्यपि उसके मात्रभाषियों की संख्या नगण्य है। पर भारत के द्विभाषिक समुदाय के 25.7 प्रतिशत लोग अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी पिछड़ी भाषा नहीं है क्योंकि द्वितीय भाषा के रूप में इसको अपनाने वालों की संख्या 26.8 प्रतिशत है। इस संदर्भ में हमें अंग्रेजी और हिन्दी के आधार पर जन्मी द्विभाषिकता की प्रकृति पर भी ध्यान देना चाहिए जिसकी ओर सुनंदा सान्याल पूरी तरह बेखबर हैं (भले ही वह समाजभाषा वैज्ञानिकों के मत से अपनी बात को पुष्ट करना चाहते हैं) हिन्दी, प्रमुखतः आधारभूत द्विभाषिकता, सामाजिक संप्रेषण व्यवस्था के उस स्तर से संबंध रखती है जो जन जीवन की अपनी दैनिक आवश्यकताओं का परिणाम होता है। इस टाइप की द्विभाषिकता की जननी सामाजिक आवश्यकताओं का वह स्तर है जो न किसी औपचारिक भाषा शिक्षण की अपेक्षा रखता है और न ही किसी लिखित भाषा या साहित्यिक मानदंड का। हम इस अन्तर्राज्यीय बस अड्डों, रेलवे प्लेटफार्मों, विभिन्न धार्मिक स्थलों आदि पर समान व्यवहार की भाषा के रूप में फलते-फूलते देख सकते हैं। इसके विपरीत अंग्रेजी जिस संभ्रात टाइप की द्विभाषिकता को जन्म देती है, वह दो भाषाओं के मानक रूप की अपेक्षा रखती है। यह बहुत कुछ औपचारिक परिस्थितियों के बीच दूसरी भाषा के सीखने का परिणाम होती है। स्पष्ट है हिन्दी की शक्ति, भारतीय जनजीवन की अपनी आवश्यकता और सामान्य जीवन की संप्रेषण संबंधी अनिवार्यता के साथ है जब कि अंग्रेजी की शक्ति (?) बौद्धिक चिंतन और संभ्रांत व्यक्तियों के लिए 'प्रभुता' स्थापन में निहित है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि भारत एक बहुभाषीय देश है। इसीलिए राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में इसकी भाषायी समस्या जटिल रूप में हमारे सामने उभरती है। प्रायः हम इन दोनों भाषा प्रकार्यों के अंतर को पकड़ नहीं पाते

इसलिए यह आवश्यक है कि हम संक्षेप में बहुभाषी देशों के संदर्भ में राजभाषा बनाम राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार कर लें।

बहुभाषी देश की संप्रेषण व्यवस्था अनिवार्यत: संपर्क भाषा अर्थात् बृहत्तर परिणाम पर 'लिंगुआ फ्रैंका' को जन्म देती है। राष्ट्रीय संदर्भ में कभी इसका रूप राजभाषा को जन्म देता है और कभी राष्ट्रभाषा को। राजभाषा का संबंध राष्ट्रवादिता (नेशनेलिज्म) से रहता है, वह राष्ट्र को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक सूत्रता में बांधने के काम में आने वाली प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा होती है। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि वह भाषा अपने देश की ही हो। राष्ट्रभाषा का संबंध राष्ट्रीयता (नेशनेलिज्म) से रहता है, उसके पीछे जातीय प्रमाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' की शक्ति काम करती है और उसके सहारे समाज राष्ट्र के स्तर पर समाज और संस्कृति के संदर्भ में तादातम्य स्थापित करता है और अपनी सामाजिक अस्मिता सिद्ध करता है। प्रत्येक देश राष्ट्रीयता और राष्ट्रवादिता के द्वंद का समाधान अपने ढंग से करता है। उदाहरण के लिए, घाना और गौंबिया ने राष्ट्रवादिता की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उस भाषा को देश की लिंगुआ फ्रैंका का स्तर दिया जो स्वतंत्रतापूर्वक शासकों (विदेशियों) की भाषा थी। इजरायल, थाइलैंड, सोमालिया, इथोपिया आदि देशों ने राष्ट्रीयता से अनुप्राणित होकर अंतरक्षेत्रीय स्तर पर फैली अपनी देश की लिंगुआ फ्रैंका को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया। पर भारत, श्रीलंका, मलेशिया आदि ऐसे देशों के सामने समस्या जटिल थी क्योंकि परंपरा अर्जित और संस्कृति-समर्थित इसमें कई समुन्नत भाषाएं राष्ट्रभाषा की दावेदार बनकर आईं। इन देशों ने अपना दूसरा ही रास्ता अपनाया।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार 'संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि 'देवनागरी' होगी पर उसी अनुच्छेद के खंड 2 के अनुसार संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि के लिए उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए वह पहले से ही प्रयोग की जाती थी। ऐसा बताया जाता है कि अंग्रेजी के स्थान पर प्रशासनिक व्यवहार क्षेत्र में तत्काल प्रयोग में लाने के लिए हिन्दी भाषा को न तो समर्थ माना गया और न ही उतनी विकसित। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इस एकाएक परिवर्तन से अहिन्दी भाषिओं को काफी असुविधा होगी जिससे प्रशासन तंत्र में काफी लंबी दरार पड़ जाएगी। इन सब बातों को ध्यान में रखकर यह व्यवस्था की गई कि 1965 तक स्थिति

यथावत् बनी रहे ताकि एक तरफ हिन्दी को समृद्ध कर उसे प्रशासनिक प्रयोजनों की समर्थ भाषा भी बना लिया जाए और अहिन्दी भाषिओं को इतना समय भी मिल जाए कि वे अन्य भाषा के रूप में हिन्दी में व्यावहारिक दक्षता प्राप्त कर लें।

संविधान के अनुच्छेद 344 (2) के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि 'संघ के राजकीय प्रयोजनो के लिए हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग' और 'संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी एक के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्वंधन (रिस्ट्रिक्शन)' के लिए आयोग संसदीय समिति का गठन करे। इस आधार पर सन 1955 में एक राजभाषा आयोग और उसकी सिफारिश पर विचार करने के लिए सन 1957 में एक संसदीय समिति का गठन किया गया। पूरी वस्तुस्थिति और सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए सन 1965 में आयोग और संसदीय समिति ने यह सिफारिश की कि अंग्रेजी का प्रयोग अभी भी यथावत् बना रहे और हिन्दी की समृद्धि और विकास में और गति लाने के लिए सरकार प्रयत्न करे। इन सिफारिशों को व्यावहारिक रूप से लागू करने के लिए संसद ने 1963 में एक राजभाषा अधिनियम पारित किया। इस राजभाषा अधिनियम की धारा 3 के अनुसार उन सभी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के प्रयोग की बात कही गई जिनमें वह प्रयुक्त होती आई थी। चार वर्ष बाद सन 1967 में राजभाषा (संशोधन) अधिनियम पारित हुआ। इस संशोधित अधिनियम के अनुसार यह छूट दी गई कि सरकारी कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में काम कर सकता है। जो क्षेत्र द्विभाषिकता के लिए अनिवार्य माने गये (जिनमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रयोग को अनिवार्य माना गया है) वे हैं –

(क) संकल्प, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचना, तथा प्रेम विज्ञप्ति

(ख) संसदीय रिपोर्ट तथा सरकारी कागज पत्र और

(ग) संविदा, करारनामा, लाइसेंस, परमिट, टेंडर, नोटिस, और सरकारी फार्म।

राजभाषा संशोधन अधिनियम ने हिन्दी–अंग्रेजी द्विभाषिक स्थिति की ही पुष्टि की है। इस अधिनियम ने यह भी निर्धारित किया है कि केंद्र सरकार के जितने भी कार्यालय व मंत्रालय हैं वे आपस में हिन्दी भाषा में पत्राचार कर सकते हैं, लेकिन उनके अंग्रेजी का अनुवाद तब तक संलग्न कर भेजा जाए जब तक संबद्ध मंत्रालय या कार्यालय के अधिकारी हिन्दी की व्यावहारिक दक्षता प्राप्त नहीं कर लेते। संविधान के अनुच्छेद 347 के अनुसार एक राज्य तथा दूसरे राज्य

तथा किसी राज्य और भारत संघ के बीच संप्रेषण माध्यम के लिए वह भाषा, राजभाषा के रूप में व्यवहार में लाई जाएगी जो संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए उस समय प्राधिकृत भाषा होगी। लेकिन इसके साथ उसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि यदि दो या अधिक राज्य इस बात का करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच परस्पर संप्रेषण व्यवस्था के लिए भाषा हिन्दी होगी तो संप्रेषण में लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा। सन 1967 के राजभाषा संशोधन अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच पत्र व्यवहार अंग्रेजी में तब चलता रहेगा जब तक अहिन्दी भाषी राज्य हिन्दी में पत्र व्यवहार करने के लिए स्वयं निर्णय नहीं ले लेते। ऐसी स्थिति में अगर एक राज्य दूसरे राज्य के साथ हिन्दी में पत्राचार करता है तो उसके साथ अंग्रेजी अनुवाद की प्रति भेजना आवश्यक है।

राजभाषा संशोधन अधिनियम नें द्विभाषिक प्रक्रिया को बढ़ावा ही दिया। यह गौर करने की बात है कि स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी तथा मान्य कांग्रेसी नेता (महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय आदि) सभी यह मानते रहे कि भारतवर्ष की राजभाषा के लिए यदि कोई भाष सर्वाधिक उपयुक्त है तो वह एकमात्र हिन्दी ही है। महात्मा गांधी ने तो दूसरे गुजरात शिक्षा सम्मेलन के सभापति पद से बोलते हुए 1917 में यह कहा था कि राष्ट्रीय भाषा वही हो सकती है जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो, जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम भाषा बनने की शक्ति रखती हो जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप से उपलब्ध हो अंग्रेजी किसी भी तरह इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती। उनके अनुसार हिन्दी ही एकमात्र वह भाषा थी जो उनके द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा करती थी जहां तक हिन्दी भाषा की व्यापकता और व्यवहार शक्ति की क्षमता का सवाल है गांधी जी के 1917 के भारत की स्थिति यह थी 'हिन्दी बोलने वाला जहां भी जाता है हिन्दी का प्रयोग करता है और कोई व्यक्ति इस पर आश्चर्य व्यक्त नहीं करता। हिन्दी बोलने वाले हिन्दू धर्मोपदेश और उर्दू बोलने वाले मौलवी संपूर्ण भारतवर्ष में धर्म और आचरण संबंधी अपने भाषण हिन्दी या उर्दू में देते पाये जाते हैं। औरों की बात तो दूर यहां तक कि अशिक्षित बहुसमाज भी उन्हें समझ लेता है। यह भी स्थिति है कि जब एक अशिक्षित गुजराती उत्तर भारत में आता है तो वह टूटी-फूटी हिन्दी बोलने की कोशिश करता पाया जाता है पर जब उत्तर भारत का कोई भइया बंबई में दरबान का काम करता है, वह बंबई

के सेठों से गुजराती में बात करने से इंकार कर देता है और ये उनके मालिक गुजराती सेठ हैं जो टूटी-फूटी हिन्दी भाषा में उनसे बात करते पाए जाते हैं। गांधी जी के अनुसार यह कहना गलत है कि मद्रास में भी बिना अंग्रेजी के काम नहीं चलाया जा सकता। उन्होंने हिन्दी के सहारे मद्रास में भी सफलतापूर्वक अपना काम चलाया।

गांधी जी या अन्य कांग्रेसी नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दिलाए जाने की कोशिश की। राष्ट्रभाषा यदि राष्ट्रीयता की भावना के सूचक रूप में सिद्ध होती है तब उसके दो लक्षण आपस में गुँधे रूप में मिलते हैं भीतरी तौर पर देश को एकताबद्ध करने की प्रवृत्ति और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बाह्य रूप में देश को विशिष्ट सिद्ध करने की प्रवृत्ति। हॉगन (1966) किसी भी अन्य इकाई की तरह राष्ट्रभाषा का भी काम अभ्यांतर अंतर और विभेद को कम करना और बाह्य अंतर और विभेद को उभारना होता है। इसका आदर्श होता है अभ्यांतर एकता और बाह्य विशिष्टता। अभ्यांतर एकता के लिए अगर बहुभाषी देशों में यह आवश्यक हो जाता है कि मातृभाषा के साथ ही एक अन्य भाषा 'लिंगुआ फ्रैंका' के रूप में उभरे तो बाह्य विशिष्टता के लिए यह भी जरूरी है कि 'लिंगुआ फ्रैंका' के रूप में राजभाषा का दर्जा पाने वाली भाषा स्वदेशी हो।

अभ्यांतर एकता और बाह्य विशिष्टता के रूप में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने का प्रयत्न स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भी होता रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का यह कहना था कि 'यह सच है कि कोई भी देश अपनी मातृभाषा के द्वारा ही आगे बढ़ सकता है। हम दूसरी भाषा सीख सकते हैं, बोल सकते हैं, लेकिन नये विचार उससे पैदा नहीं होते। नए विचार केवल अपनी मातृभाषा के द्वारा ही निकल सकते हैं। इसलिए हमें भारत की सभी भाषाओं को आगे बढ़ाना है, प्रोत्साहन देना है और हिन्दी का तो एक विशेष स्थान है ही। हम चाहते हैं कि जल्दी से जल्दी भारत के सभी लोग अगर हिन्दी न बोल सकें तो कम से कम समझ तो सकें मैं समझतीं हूं, यह काम आगे बढ़ रहा है। इतने बढ़े देश में, जहां इतनी भाषाएं हैं वहां देश की एकता के लिए आवश्यक है कि कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला जुला कर रख सके। इसीलिए हिन्दी को बढ़ाना हम सब का काम है'।

यह गौर करने की बात है कि स्वतंत्रता पूर्व के सभी प्रयत्न राष्ट्रभाषा के लिए थे जो भाषा (हिन्दी) के माध्यम से देश को एकताबद्ध कर उसे अंतर्राष्ट्रीय

नक्शे पर एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए थे। इसके भीतर अखिल भारतीय प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए सिद्ध भाषा प्राकार्य भी थे और संपूर्ण भूभाग की सांस्कृतिक एकता को एक ही सूत्र में आबद्ध करने वाले तत्त्व भी समाहित थे। पर भारतीय संविधान ने भाषा के संदर्भ में एकसूत्रता की कल्पना को केवल प्रशासनिक प्रयोजनों तक सीमित कर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास को संघ की राजभाषा मात्र तक सीमित कर दिया। भारतीय संविधान में जहां भी अखिल भारतीय स्तर पर संघ की भाषा के रूप में हिन्दी की बात की गई है उसे राजभाषा ही घोषित किया गया है। सच तो यह है कि हिन्दी के रूप में सिद्ध अभ्यांतर एकता और बाह्य विशिष्टता की राष्ट्रीय चेतना पर स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही दुहरा दबाव पड़ा जिसके प्रभाव से भारतीय संविधान के भाषा संबंधी अधिकनियम भी सर्वथा मुक्त नहीं कहे जा सकते।

यह तथ्य भाषा की अन्तर्निहित संकल्पना के भीतर है कि भाषा अपने भाषायी समाज के सदस्यों के भीतर सामाजिक अस्मिता की भावना को प्रश्रय देती है। हर भाषा न केवल विभिन्न बोलियों को अपने भीतर समेट कर एक समग्र इकाई के रूप में उभरती है वरन् मात्रभाषा के रूप में बोलियों को स्वीकृति देते हुए भी सामाजिक धरातल पर उनके बोलने वालों के बीच न केवल संपर्क साधने का काम करती है वरन् उनके भीतर तादात्म्य भाव पैदा कर एक समाज के सदस्य होने की धारणा को चेतनाबद्ध करती है। सामाजिक स्तर पर एक होने की यह चेतनाबद्ध धारणा भी 'अभ्यांतर एकता अर्थात् विभिन्न बोली भेद (अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी आदि) के बावजूद भी एकभाषी (हिन्दी) होने की धारणा और बाह्य विशिष्टता अर्थात् एक ही भूभाग की अन्य भाषाओं (तमिल, बंगला, गुजराती आदि) से भिन्न सिद्ध करने की प्रवृत्ति। बाह्य विशिष्टता जनपदीय उन समूहगत लक्षणों को उभारने का प्रयत्न करती है जो स्थानीय संस्कृति और साहित्य के धरोहर होते हैं और जो उस भाषायी समाज की सुख समृद्धि की संकल्पना को साकर करने में सहायक होते हैं। इसीलिए जब प्रशासन की सुविधा के लिए भारत को विभिन्न जनपदीय प्रदेशों के रूप में पुनर्गठित करने का प्रयास हुआ तब उसके इस भाषायी आधार की उपेक्षा न की जा सकी। प्रदेशों का भाषायी आधार क्या रहा है उसके बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। हां, यह तथ्य अवश्य हमारे सामने है कि वे सभी प्रदेश बहुभाषी हैं। पर प्रदेशों के गठन और सीमा निर्धारण के समय 'डामिनेंट' भाषा की संकल्पना से हम कभी अपने को मुक्त नहीं कर सके हैं। यही कारण है कि जब किसी

विकसित चेतना वाले भाषायी समाज को गौण स्थान मिला है और डामिनेंट भाषा का भाषायी समाज उसकी प्रगति में बाधक हुआ है। भाषायी दंगे का वीभत्स रूप भी सामने उभरा है।

संविधान की अष्टम अनुसूची में इस प्रकार आज 15 मान्य प्रादेशिक भाषाएं हैं। जिनमें से अधिकांश भाषायी समाज की अस्मिता की साधक हैं और बाह्य विशिष्टता के रूप में अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व की आकांक्षी हैं। इतिहास की जनपदीय सह-अनुभूतियां और साहित्य की भाषाबद्ध चेतना उनकी आकांक्षाओं में अपना रंग भरती है। स्थानीय सुख समृद्धि की लालसा और क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक सुरक्षा की भावना उनकी अपन अस्मिता में प्राण फूंकती है। इसलिए जब कभी भी अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय भाषा के रूप में किसी एक भाषा (भले ही बृहत्तर भागों में समझी जाने वाली और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के समय सर्वाधिक प्रयोग में आने वाली हिन्दी भाषा ही क्यों न हो) को मान्यता देने की बात उठी है, अन्य भाषायी समाज ने इस शंकालुभाव से देखा है। कहीं इससे उनके भाषायी समाज की विशिष्टता खंडित तो नहीं हो रही ? कहीं इसके परिणाम स्वरूप उनके समाज से आर्थिक विकास का रास्ता अवरुद्ध तो नहीं हो रहा ? कहीं कोई और भाषायी समाज बढ़कर उनकी जातीय चेतना को हीन सिद्ध तो नहीं कर रहा है ? दूसरी भावना यह भी सामने उभरी है कि भारत अगर एक राष्ट्र है तो जिस प्रकार 'हिन्दी भाषायी समाज' उसका एक अंग है, उसी प्रकार हम भी उसके एक अंग हैं, फिर एक अंग की भाषा पूरे राष्ट्र का प्रतीक बन 'राष्ट्रभाषा' कैसे और क्यों न बने ? यह भी तर्क उभारा गया है कि जिस प्रकार किसी राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके सभी सदस्य एक धर्म के मानने वाले हों, उनके खान पान, रीति-रिवाज और आचरण विचार रूढियां एक हों, इसी प्रकार उसके लिए यह भी जरूरी नहीं कि उसके लिए एक ही राष्ट्रभाषा (भाषा नहीं ?) हो। पर यह भी सच है कि भाषाओं की इस भिन्नता और सामाजिक अस्मिताओं के भेद के बावजूद यह हमेशा अनुभव किया जाता रहा है कि अलग-अलग भाषाओं के बीच कड़ी के रूप में कोई भाषा अवश्य होनी चाहिए। प्रशासन की सुविधा और अखिल भारतीय स्तर पर संप्रेषण व्यवस्था के लिए एक संपर्क भाषा देश की नियति है। इसलिए हिन्दी को एकनिष्ठ 'राष्ट्रभाषा' के रूप में मान्यता देने के पक्ष के समर्थक भी अधिकांशतः उसे प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए सिद्ध 'राजभाषा' का दर्जा देने के लिए सहमत हो गये।

लेकिन इसके साथ पाश्चात्य शिक्षा के वातावरण में पला और स्वतंत्रता पूर्व की विदेशी प्रशासन व्यवस्था का संस्कारग्रस्त व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग भी है जो राष्ट्रभाषा या राजभाषा की समस्या को हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के संबंधों में न ढूंढकर हिन्दी और अंग्रेजी की प्रतिद्वंद्विता के रूप में उभारना चाहता है। उनके तरकश के तीर रहे हैं अंतर्राष्ट्रीय संबंध, वैज्ञानिक उपलब्धियां, आर्थिक विकास, विकसित भाषा रूप आदि। इनके साथ उनका यह भी कहना है कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र को एक होने के लिए यह जरूरी नहीं कि उसकी राजभाषा, उस देश की ही कोई भाषा है। आखिर स्विट्जरलैंड में तीन राजभाषाएं हैं और उनमें से कोई भी उस देश की नहीं है। इसी प्रकार बेल्जियम की स्वीकृत दोनों राजभाषाओं में से दोनों ही तो उस देश की अपनी भाषाएं नहीं हैं और मान भी लें कि राजभाषा, उसी देश के बोलने वालों की कोई भाषा हो, तो अंग्रेजी भाषा को अब भारत की एक भाषा के रूप में ही मान लेना चाहिए क्योंकि एक ओर तो अखिल भारतीय स्तर पर प्रशासन के लिए यह पहले से ही सिद्ध भाषा है और दूसरी ओर यह भारतवर्ष के पूरे बुद्धिजीवी वर्ग की वह भाषा है जिसके माध्यम से वह आधुनिकतम ज्ञान ग्रहण और अभिव्यक्त करती है (ये सभी तर्क समस्या के एक आंशिक पक्ष को उभारते हैं और सोंचने-समझने की एक भ्रामक दिशा के परिणाम हैं।) यह अन्यत्र दिखलाया जा चुका है। यहां इतना कहना ही अलग होगा कि ये सभी तर्क उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक बहुत ही सीमित वर्ग की अधिकार रक्षा और प्रभुता शक्ति को अपने स्वार्थ हितों तक बांध रखने की भावना से मूलत: प्रेरित हैं। शासन तंत्र का प्रसार कर अगर उसमें जनता के अधिक से अधिक सहयोग लेने और उससे संबंध स्थापित करने की बात लोकतन्त्र की ध्वनि में है तो किसी ऐसी ही भाषा को राजभाषा के पद पर उठाना होगा जिसके बोलने समझने वाले सबसे अधिक हों और जिसका प्रचार और प्रसार बहुआयामी हो। आज की स्थिति में वह हिन्दी भाषा ही है। पर इसके साथ यह भी सच है कि उच्च शिक्षा प्राप्त यह अधिकारी वर्ग ही भारतीय प्रशासन की धुरी बना बैठा है और मात्र हिन्दी को राजभाषा का माध्यम बनाने से अगर किसी के हितों पर सबसे करारी चोट पड़ेगी तो वह यही वर्ग होगा। शासनतंत्र की व्यवहारिक सुविधा के लिए ही मूलत: हिन्दी अंग्रेजी की द्विभाषिक स्थिति संवैधानिक आवाज की विडंबना के रूप में सुनी जा रही है।

राजभाषा (प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा) और राष्ट्रभाषा (सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा) के बीच के यथार्थ साधनों के रूप में हिंडोलें लेती हिन्दी

की नियति की यही आवाज संविधान के अनुच्छेद 351 में मिलती है जहां उसकी भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम बनाने की बात की गई पर जिसको औपचारिक दृष्टि से केवल राजभाषा के दायित्व और सूचक तत्त्व के रूप में मान्यता दी गई है।

जैसा पहले संकेत दिया जा चुका है, फिशमैन (1971) ने इस नीति निर्णय के आधार पर कि किस भाषा को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया जाए राष्ट्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया है। उनके अनुसार क-टाइप के निर्णय लेने वाले राष्ट्रों का वर्ग है जो जातीय प्रमाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' की शक्ति के दबाव से मुक्त होकर अपने देश को एक सूत्रता में बांधने की ओर प्रवृत्ति हैं। इस वर्ग में उनके बुद्धजीवियों की आवाज सुनी जाती है जो 'आधुनिकता' से प्रभावित होकर अपने देश को समुन्नत करना चाहते हैं। इसके विपरीत ख-टाइप के निर्णय लेने वाले राष्ट्रों का वर्ग अपने चिंतन के पीछे हमेशा जातीय प्रामाणिकता और 'ग्रेट ट्रेडिशन' का दबाव महसूस करता है। यह वर्ग इस विचार से प्रेरित रहता है कि सामाजिक एकता और जातीय सामंजस्य की भावना को जाग्रत करने के लिए कोई एक स्वदेशी भाषा ही राष्ट्रभाषा की दावेदार बना सकती है। ग-टाइप के निर्णय लेने वाले राष्ट्रों की चिंतन प्रक्रिया जटिल होती है। ऐसे राष्ट्र यह मान कर चलते हैं कि क्षेत्रीयता की स्थानिक प्रवृत्ति से प्रेरित सामाजिक वर्ग का युग बीत गया और उससे ऊपर उठने का अर्थ ही होता है द्विभाषिक बनना। इस दृष्टि से द्विभाषिकता की स्थिति आज सामान्य व्यक्ति की ही नियति नहीं है अपितु यह स्थिति पूरे राष्ट्र की है। केवल राष्ट्र के धरातल पर सिद्ध प्रादेशिक (क्षेत्रीय) भाषाओं और अंतर क्षेत्रीय संपर्क सूत्र स्थापित करने वाली भाषा के बीच की द्विभाषिकता जरूरी नहीं अपितु देश को आधुनिक बनाने और दुनिया के अन्य देशों से संबंध स्थापित करने के लिए भी यह जरूरी है कि किसी एक विदेशी पाश्चात्य भाषा को स्वीकार कर दुहरी द्विभाषिकता को हम बढ़ावा दें।

निश्चय ही भारतवर्ष अगर किसी वर्ग में रखा जा सकता है, तो वह 'ग-टाइप' के निर्णय लेने वाले देशों का वर्ग। पर यहां की स्थिति उतनी सरल नहीं जितनी कि फिशमैन समझते हैं। राष्ट्रभाषा के चुनाव के पीछे यहां अनेक ऐसी प्रवृत्तियां काम करती रहीं है जिनका आपस में तालमेल बैठाना बहुत सरल न था। कम से कम चार निश्चित धाराएं तो सामने उभर कर आतीं हैं।

(1) राष्ट्रीयतावादी धारा यह मानकर चलती है कि संस्कृत भाषा संस्कृति सभ्यता की ही नहीं वरन् अनेक भारतीय भाषाओं की जननी है जिन

भाषाओं से इसका पारिवारिक संबंध नहीं भी रहा उसको भी यह प्रभावित करती रही है। जातीय प्रामाणिकता के ऐतिहासिक गौरव स्तंभ के रूप में यह भाषा आधुनिक सभी भारतीय भाषाओं का हृतकंपन है इसलिए एक राष्ट्र और उसके हृतकंपन को मूर्तमान करने वाली राष्ट्रभाषा संस्कृत भाषा के रूप में ही सिद्ध हो सकती है।

(2) अंतर्राष्ट्रीयतावादी धारा यह मानकर चलती है कि राष्ट्र को प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से एक तो होना ही है। इसके साथ उसे आर्थिक दृष्टि से समृन्नत और शैक्षिक दृष्टि से सुदृढ़ होने के लिए यह जरूरी है कि वह आधुनिक ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियो से परिचित हो। ऐसा तभी संभव है जब हम अधिक विकसित और वैज्ञानिक चिंतन प्रणाली को अधिक क्षमता से व्यक्त करने वाली अंग्रेजी भाषा को स्वीकार करें जो अब तक उच्च शिक्षा की माध्यम भाषा होने के कारण शिक्षित वर्ग के लिए सहज ही उपलब्ध है। इस विचारधारा के अनुसार आज कोरी राष्ट्रीय भावुकता से काम नहीं चल सकता। संपर्क और सहयोग के कारण अब तक विभिन्न राष्ट्रों से समूह के रूप में फैला संसार अब सिमटता जा रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के बिना आज किसी भी राष्ट्र के विकास की संभावना दु:स्वप्न मात्र है। इसके लिए हमें जो राष्ट्रभाषा चुननी है उसको एक आयाम पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को भी छूने की शक्ति रखनी चाहिए।

(3) क्षेत्रीय धारा वाले राष्ट्र को राजनीतिक इकाई मानते हैं और उसे इकाई मानते हुए भी अपनी प्रादेशिकता सत्ता और क्षेत्रीय अधिकारों के प्रति सजग और सतर्क हैं, उनके अनुसार जिस प्रकार भारतवर्ष अनेक धर्मों और अनेक प्रजातियों का देश है उसी प्रकार वह ऐसा बहुभाषायी देश भी जहां अनेक भाषाएं अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक संपदा के साथ फल-फूल रहीं हैं। इन सभी को अपनी सार्थकता है, अपने संदर्भ हैं और ये सभी राष्ट्रीय चेतना के सिद्ध रूप हैं। इनमें से किसी एक को राष्ट्रपद पर बैठाने पर अन्य सभी भाषायी समाजों के अपने विकास का रास्ता सापेक्षतया कठिन हो जाएगा। भारतवर्ष ऐसे लोकतांत्रिक देश में ऊपर उठने के लिए सबको समान सुविधा मिलनी चाहिए। इसलिए निष्कर्षत: इस धारा के समर्थक यह मानते पाए जाते हैं कि सभी प्रादेशिक भाषाएं भारत की राष्ट्रीय भाषाएं हैं।

(4) लोकवादी जनतांत्रिक धारा यह मानती है कि भारतवर्ष अनेक प्रदेशों का एक समुच्चय है पर इस समुच्चय की सिद्धि एक संघ के रूप में है। यह संघ

ही है जो एक ओर भारत को राजनीतिक इकाई का रूप देता है और दूसरी ओर राज्यों के अंतस्संबंधों के बीच कड़ी का काम भी करता है। इसी प्रकार प्रादेशिक भाषाओं की सता और सार्थकता को स्वीकार करती हुई वह उसके बीच कड़ी के रूप में सिद्ध होने वाली एक भाषा की धारणा को बढ़ावा देता है। उसके अनुसार भारत लोकतंत्र के सिद्धांत का प्रबल समर्थक भी है, । अत: अखिल भारतीय स्तर पर संपर्क सूत्र के रूप में स्वीकृत वही भाषा हो सकती है जिसके सामाजिक आयाम बहुमुखी और बहुस्तरीय हों, जिसको अन्य भाषा के रूप में बोलने और समझने वालों की संख्या सबसे अधिक हो और जो भारतीय संस्कृति की लोकवादी चिंतन धारा को मूर्तमान करने में सक्षम हों। ऐसी भाषा संप्रति हिन्दी ही है।

भारतीय संविधान में भाषा संबंधी अनुच्छेदों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माता इन चारों प्रवृत्तियों से अपरिचित न थे और उनका प्रयास यही रहा है कि जहां तक हो सके, इन चारों धाराओं के बीच एक सामंजस्य पैदा कर कम से कम भाषायी तनाव की स्थिति पैदा की जाए। लोकवादी और अन्तर्राष्ट्रीयवादी धारा को एक साथ समेटने को कोशिश का यह परिणाम है कि प्राथमिक राजभाषा के रूप में 'हिन्दी' और सहयोगी राजभाषा के रूप में अंग्रेजी को संविधान में स्वीकृत पाते हैं। इसी प्रकार क्षेत्रीय धारा के साथ समझौता करने के प्रयत्न को हम इस रूप में पाते हैं कि किसी भाषा को यहां तक कि हिन्दी को भी, राष्ट्रभाषा के नाम से संबोधित या परिभाषित नहीं किया गया है, और अष्टम अनुसूची में स्वीकृत भाषाओं के रूप में संस्कृत, उर्दू और सिंधी के साथ प्रादेशिक (राज्य भाषाओं) भाषाओं का नाम लिखा पाते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीयतावादी धारा को इसके साथ मिलाकर रखने की प्रवृत्ति को हम अनुच्छेद 351 में पाते हैं जो हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश रूप में यह विचार व्यक्त करता है कि हिन्दी को अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए विकसित किया जाए।

प्रशासनिक कार्य में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन

प्रशासनिक कार्य में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन को वर्तमान में सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावबोध के रूप में शासकीय मान्यता प्राप्त है। चूंकि भाषा

सरकार व जन साधारण के बीच में संवाद प्रेषण का माध्यम बनती है अतएव यह आवश्यक है कि प्रशासकीय कार्य में उपयोग की जाने वाली हिन्दी सरल, सहज तथापि संस्कारयुक्त एवं भाषा के मान्य नियमों के अनुकूल हो। इस दृष्टि से स्वतंत्रता के पश्चात जनसाधारण की दृष्टि से हिन्दी का जो सरल एवं सहिष्णु स्वरूप विकसित हुआ है वह राजभाषा हिन्दी या प्रशासनिक हिन्दी के रूप में परिभाषित किया गया है। श्री जय प्रकाश सक्सेना जी ने प्रस्तुत आलेख में राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक पृष्ठभूमि एवं उसके प्रशासनिक स्वरूप को रेखांकित किया है, साथ ही प्रशासनिक कामकाज की तात्कालिक आवश्यकता के संदर्भ में मूलत: अंग्रेजी कार्य को भी हिन्दी माध्यम से द्विभाषी सम्पन्न करने की युक्तियों की ओर भी इंगित किया। अपेक्षा है कि यह आलेख पाठकों की जानकारी को आलोकित करेगा – सम्पादक।

संविधान के लागू होने के साथ-साथ 26 जनवरी 1950 से संविधान की धारा 343 के अनुसार हिन्दी भारत संघ की राजभाषा बनी। धारा 351 में भारत सरकार को यह कर्तव्य सौंपा गया है कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाये एवं विकास करे ताकि हिन्दी भाषा सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। सरकारी कामों में इसका इस्तेमाल सुनिश्चित करने के लिये राष्ट्रपति जी ने सन् 1952 में कुछ कामों में हिन्दी के इस्तेमाल के लिये आदेश जारी किये। फिर 1955 में भी आदेश जारी किये गये। 27 अप्रैल 1960 को राष्ट्रपति जी ने विस्तृत आदेश जारी किये। इसके पश्चात राजभाषा अधिनियम 1963 बना और 1967 में इसका संशोधन भी हुआ। गृह मंत्रालय में राजभाषा विभाग बन जाने के पश्चात राजभाषा नियम 1976 बने और सभी क्षेत्रों में देश की राजभाषा हिन्दी को लागू करने के लिये जागृत भावना के अनुकूल सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग होने भी लगा जो निरन्तर बढ़ रहा है।

आदेशों का संकलन सन् 1974 में निकाला गया, दूसरा संस्करण 1980 में और तीसरा संस्करण 1986 में प्रकाशित हुआ। नियम 4 के परन्तुक (1) के अनुसार क्षेत्र 'क', 'ख' में स्थित किसी कार्यालय को संबोधित पत्र का अनुवाद दूसरी भाषा में भेजने की आवश्यकता नहीं है, जबकि परन्तुक (2) के अनुसार क्षेत्र 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के दूसरे कार्यालयों को यदि पत्र हिन्दी में भेजा जाता है तो उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद उसके साथ भेजा जाए।

अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसार दस्तावेज आदि हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषा में दिये जावें। अधिनियम की धारा 5 के अनुसार नियम,

विनियम या किसी उपविधि का राजपत्र में प्रकाशित हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ माना जाता है।

अब अनेक सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग होने लगा है। आशा है कि हिन्दी में कार्य की सीमा धीरे-धीरे बढ़ती जाएगी। हिन्दी में काम की शुरूआत होना अच्छी बात है, किन्तु इससे कभी-कभी उन व्यक्तियों को कठिनाई होती है जो हिन्दी अधिक नहीं जानते हैं। कारण यह है कि अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी में पर्याय देने वाले अनेक शब्दकोष हैं, लेकिन हिन्दी के प्रशासनिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय देने वाले अच्छे शब्दकोष उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी के पत्र कम हिन्दी जानने वालों के पास पहुँचते हैं तो उन्हें उनका ठीक आशय समझने में कठिनाई होती है। अतएव प्रशासकीय कार्य में साधारणत: बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जावे।

सरकारी पत्राचार के विभिन्न रूप पत्र, परिपत्र, कार्यालय ज्ञापन, अर्धशासकीय पत्र, अनौपचारिक टिप्पणी, पृष्ठांकन, अधिसूचना, संकलन, प्रेस, विज्ञप्ति, तार, मितव्यय पत्र, कार्यालय आदेश एवं अनुस्मारक हैं। इन सभी में हिन्दी में कार्य करना आसान है। सरकारी क्षेत्र में समय की कमी के कारण अधिकारियों को पत्र व्यवहार का विस्तार पूरी तरह पढना असंभव होता है। अत: आवश्यक है कि जिन मामलों पर उन्हें निर्णय या आदेश देना हो, उसके संबंध में पूरी सामग्री थोड़े से थोड़े शब्दों में प्रस्तुत हो जाये, जिससे उन्हें विषय का शीघ्र और सही ज्ञान प्राप्त हो सके। अत: प्रशासनिक कार्य में हिन्दी के सारलेखन का भी अपना पृथक महत्व है। इसका क्षेत्र सरकारी कामकाज तक ही सीमित नहीं है, बल्कि, पत्रकारिता, शिक्षा, न्यायालय आदि के क्षेत्रों में भी इसकी उपयोगिता छिपी नहीं है। सारलेखन का कौशल इसी में है कि वह विषय के विस्तार को सीमित और संक्षिप्त आकार में प्रस्तुत करे तथा मूल के मुख्य भावों की अभिव्यक्ति अवश्य हो जावे।

प्रशासनिक कार्य में हिन्दी के अनुवाद का भी उल्लेखनीय महत्व है। क्योंकि जहाँ अंग्रेजी पत्र की विषय वस्तु को आधार बनाकर हिन्दी माध्यम से कार्यवाही करनी होती है अथवा जहाँ द्विभाषी पत्र व्यवहार करना होता है या धारा 3 (3) के अन्तर्गत आने वाले सभी दस्तावेजों को द्विभाषी जारी करने की आवश्यकता होती है उस स्थिति में कार्य की गति को निर्वाध जारी रखने के लिये तत्काल अनुवाद करने की आवश्यकता उपस्थित हो जाती है। ऐसे में अधिकारी या कर्मचारी में विद्यमान अनुवाद क्षमता बहुत उपयोगी साबित होती है।

प्रशासनिक कार्य में हिन्दी अनुवाद का स्वरूप शब्दानुवाद, भावानुवाद, मिश्रित अनुवाद तथा वैज्ञानिक व तकनीकी अनुवाद जैसे विभिन्न रूपों में होना अपेक्षित है। शब्दानुवाद एक सरल प्रक्रिया है क्योंकि अंग्रेजी के उपयुक्त हिन्दी शब्द मिल जाने पर वाक्य रचना आसानी से हो जाती है। भावानुवाद में शैली से अधिक महत्व विषय का होता है। इसमें भाषा शैली के सौन्दर्य माधुर्य पर ध्यान न देकर विषय के कथ्य को स्पष्ट करना ही पर्याप्त होता है। मिश्रित अनुवाद में हिन्दी की वाक्य रचना में अंग्रेजी के जनसाधारण की बोलचाल में रचे बसे शब्दों को ज्यों का त्यों भी लिखा जा सकता है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों को हिन्दी माध्यम से प्रस्तुत करने में अधिक सहायक होती है। प्रशासनिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों के पाठक अथवा उपभोक्ता का आकर्षण भी अनुवाद की भाषा, शैली में न होकर मूल विषय वस्तु को साफ-साफ व्यक्त करने में ही होता है।

कुल मिलाकर प्रशासनिक हिन्दी के स्वरूप का मूल आधार है छोटे एवं सरल वाक्यों की रचना करना। उदाहरण स्वरूप कुछ वाक्य रचनाएं निम्नानुसार अनुकरणीय हैं–

छोटे वाक्य - उन पर बताई गई प्रक्रिया इस मामले पर लागू नहीं होगी। कृपया अनुमोदन मंजूरी प्रदान करें तदनुसार कार्रवाई की जाये। यथा प्रस्तावित कार्रवाई करें। इस बार स्थगन की मंजूरी मिलने की संभावना नहीं है। पात्रता प्रमाणित की जाती है। मांगी गई छुट्टी मंजूर की जाये। उत्तर आज भेज दिया जाना चाहिये। इसमें आपका व्यक्तिगत ध्यान अपेक्षित है।

बड़े वाक्य- निदेशक के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है। अनुमोदन के लिये नीचे लिखे मसौदे के अनुसार आवश्यक सूचना निकाल दें। मंत्रालय द्वारा अनुदेश जारी करने में कोई आपत्ति नहीं है।

कुल मिलकार प्रशासनिक हिन्दी के स्वरूप में शब्द या वाक्यों के आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन के लिये कोई गुंजाइश नहीं होती है। प्रशासनिक हिन्दी का प्रारंभिक और अंतिम उद्देश्य अपनी बात जन साधारण तक सरलतापूर्वक पहुँचाना ही होता है।

6

हिन्दी का वैश्विक प्रसार

भाषा और साहित्य की समृद्धि तथा भाषा भाषियों की संख्या आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी संसार की विशिष्ट एवं कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाषाओं में एक है। पिछले करीब एक हजार वर्षों से जब राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में संस्कृत का प्रचलन कम हो गया। हिन्दी राष्ट्रभाषा और संपर्क दोनों रूपों में भारत तथा आसपास के कुछ देशों में व्यहृत होती रही है। लेकिन स्वराज्य की प्राप्ति के बाद हिन्दी केवल भारत की राष्ट्रभाषा ही नहीं रह गई, बल्कि जब इसे संविधान में भारत की राजभाषा के रूप में भी स्वीकृत किया गया तो स्वभावत: ऐसा माना जाने लगा कि इसे देर-सबेर संयुक्त राष्ट्र संघ एवं संसार की अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं-संस्थानों में भी स्थान मिल जायेगा और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में इसे भी धीरे धीरे स्वत: मान्यता प्राप्त होगी। लेकिन जिन कारणों से भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ में या विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में स्थायी या विशेष महत्त्व नहीं प्राप्त हो सका, करीब-करीब उन्हीं कारणों से भारत की राजभाषा हिन्दी को भी वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका।

इसमें संदेह नहीं कि सन् 1947 की तुलना में आज कई दृष्टियों से स्थिति बदल गई है। जहाँ तक आंतरिक स्थिति की बात है, सबसे बड़ी बात यह हुई है कि आज देश में राष्ट्रीयता की वैसी ज्वलंत भावना नहीं है, जैसी भावना के बिना भारत जैसे देश की राजभाषा ही नहीं बल्कि अन्य आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का भी समाधान संभव नहीं है। आज अक्सर राष्ट्रीयता जैसी मूल्यों

की बात को भावुकता की बात कह कर टाल देना एक फैशन सा हो गया है। परंतु क्या यह वास्तविकता नहीं है कि बगैर भावना के मानव जीवन बंजर हो जाता है और उसका जीवन पशु के समान, क्योंकि सभी मान्यताओं और आदर्शों का मूल संबंध भावना से ही है। अत: राष्ट्रीयता की भावना के बगैर हमारी अनेक समस्याओं का न तो समुचित निदान संभव है और न उनका समाधान।

एक ओर तो यह ठीक है कि अंग्रेजी राज की तुलना में आज कई बातों में भारत सरकार के राजकाज में हिन्दी का भारत की संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग बढ़ा है, परंतु दूसरी ओर यह बात भी उतनी ही सही है कि स्वराज्य की प्राप्ति के बाद अंग्रेजी और अंग्रेजियत का दबदबा भी उतनी ही तेजी से बढ़ा है तथा आज सारे देश में छोटे-छोटे कस्बों में भी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय खुलते जा रहे हैं। यह इस बात का द्योतक है कि हमारी राष्ट्रीयता की भावना मंद पड़ गई है और हम भाषा जैसी राष्ट्रीय महत्त्व की बात पर भी आज राष्ट्रीय दृष्टि से विचार नहीं कर पा रहे हैं।

संविधान में स्वीकार किया गया था कि 26 जनवरी, 1965 के बाद हिन्दी भारत सरकार की राजभाषा होगी। लेकिन संविधान की इस मान्यता के साथ 15 वर्षों की अवधि में राजकाज की भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की जो बात थी, सरकार ने न केवल करीब-करीब इसकी उपेक्षा की बल्कि अंग्रेजी के समर्थकों की इस भावना को भी ठेस पहुँचाने में हिचकती रही है कि सन 1965 के बाद देश में अंग्रेजी नहीं रहेगी। इसीलिए न केवल देश के भीतर सरकारी कामकाज में बल्कि देश के बाहर के संपर्क में भी हिन्दी के व्यवहार को जो अधिकाधिक स्थान दिया जाना चाहिए था न तो उसके लिए कोई तैयारी की गई और न उस ओर कोई ध्यान ही दिया गया।

अत: स्वभावत: ऐसी स्थिति बन गई है कि यदि हम भारत सरकार का सरकारी कामकाज हिन्दी के माध्यम से करना चाहें तो भावनात्मक स्तर पर तो अनेक कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ेगा, साथ ही व्यावहारिक स्तर पर भी कुछ कठिनाइयाँ सामने आ जाएँगी। इस दृष्टि से सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हिन्दी को राजकाज की दृष्टि से संविधान के लागू होते ही जो तैयारी की जानी चाहिए उसकी ओर एकदम ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि इस दृष्टि से जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम था शिक्षा-दीक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी एवं अन्य सभी भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाएगा उसकी ओर कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए। उच्च शिक्षा के

स्वरूप, गठन और नीति के संबंध में विचार करने के लिए डॉक्टर राधाकृष्णन की अध्यक्षता में जिस शिक्षा आयोग का गठन किया गया था, उस आयोग के अंग्रेजी समर्थकों एवं भारतीय भाषा विरोधी रूप के कारण उस आयोग की सिफारिशों में भारतीय भाषाओं के विकास की ओर न केवल कोई ध्यान नहीं दिया गया बल्कि उसके लिए रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ खड़ी कर दी गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र ने औद्योगिक विकास की राष्ट्रीय नीति तो तय की, परंतु शिक्षा और सांस्कृतिक विकास की कोई राष्ट्रीय नीति आज तक तय नहीं की जा सकी। इसका अर्थ यह हुआ कि आज भी हमारे सामने यह स्पष्ट नहीं है कि हम भारत में किस प्रकार की समाज व्यवस्था कायम करना चाहते हैं।

भाषा का प्रश्न राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्न है। जहाँ तक भाषा के राजनीतिक पक्ष की बात है, उसका समाधान तो उसी रोज हो गया जिस रोज भारत स्वतंत्र हो गया था और भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष की दृष्टि तो भारत के निवासियों ने अपनी राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा की समस्या का समाधान अत्यन्त सहज और स्वाभाविक गति से उसी रोज ढूँढ लिया था, जिस रोज संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के स्थान पर धीरे-धीरे सारे देश में हिन्दी को ही देश भर के तीर्थ यात्री, व्यवसायी और पर्यटक संपर्क भाषा के रूप में काम में लाने लगे थे। इतना ही नहीं, अंग्रेजी राज्य काल में भी भारत की न केवल हिन्दी भाषी रियासतें बल्कि अनेक अहिन्दी भाषी रियासतों में भी न केवल राजकाज बल्कि संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रचलन था। अफसोस की बात यह है कि स्वराज्य की प्राप्ति के बाद इन देशी रियासतों के क्षेत्रों में भी न केवल हिन्दी का प्रचलन बंद कर दिया गया बल्कि उसके स्थान पर अंग्रेजी का ही एकछत्र राज्य हो गया।

हिन्दी फारसी या अंग्रेजी की तरह न तो विदेशी भाषा है और न संस्कृत की तरह देवभाषा। अतः संस्कृत, फारसी या अंग्रेजी की तरह राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होने के बाद भी इसका जनभाषा का स्वरूप सदा बना रहेगा। यही हिन्दी की सबसे बड़ी शक्ति भी है और सीमा भी। आरंभ से आज तक जिन अहिन्दी भाषियों ने हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में समर्थन किया, उनका ऐसा करने का कारण यह था कि हिन्दी इस देश की सबसे बड़ी जन समूह की भाषा थी और शेष भारत में भी यह समझी-बोली जाती थी। पर आज हिन्दी की इसी शक्ति को हिन्दी के विरोधी और अंग्रेजी के समर्थक यह कह कर हिन्दी के विरोध में

अपने ब्रह्मास्त्र के रूप में काम में लाते हैं कि चूंकि हिन्दी जन समूह विशेष की मातृभाषा है, । अत: इसके राजभाषा होने से उन लोगों को विशेष सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं। वे लोग यह भूल जाते हैं कि तमिल, बंगला, तेलुगु, कन्नड़ आदि भारत की उन सभी क्षेत्रीय भाषाओं की अपने क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता का आधार उनकी अपने-अपने क्षेत्र की जन भाषा ही होनी है। अत: यह स्पष्ट है कि हिन्दी के विरोध में प्रयोग किया जाने वाला यह तर्क दोधारी तलवार की तरह है वस्तुत: किसी भी जनतंत्र में यह ऐसा बचकाना तर्क है, जिसका प्रयोग जनतंत्र की जड़ पर ही कुठाराघात करता है।

नागपुर में हुए प्रथम हिन्दी सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को मान्यता प्रदान कराने के लिए पूरा प्रयत्न किया जाए। लेकिन अब तक इस दृष्टि से कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया है। यह ठीक है कि तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपना एक भाषण हिन्दी में दिया था, परंतु उन्होंने संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को मान्यता प्रदान करवाने के लिए सरकारी स्तर पर कोई ठोस कदम नहीं उठाया था। इसी प्रकार से निवर्तमान विदेश मंत्री श्री पी. वी. नरसिंहराव ने भले ही संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने भाषण का आरंभ हिन्दी में किया हो, लेकिन इसके लिए सरकारी तौर पर आज भी ठोस कदम नहीं उठाया गया है। इसके विपरीत दूसरी ओर स्थिति यह है कि आज भारत के बाहर संसार के करीब सौ विश्वविद्यालयों में हिन्दी पर शोध का भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। इससे यह तो असंदिग्ध है कि विश्व की एक समर्थ और समृद्ध भाषा के रूप में हिन्दी की मान्यता बढ़ती ही जा रही है। परंतु दूसरी ओर इस सच्चाई से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में हिन्दी को स्थान दिलाने के लिए जो प्रयास किया जाना चाहिए, वह आज तक नहीं किया जा सका है और इसके लिए भारत में जो तैयारी की जानी चाहिए, उसकी ओर भी नहीं के बराबर ध्यान दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ या इस प्रकार की अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं संस्थानों में हिन्दी का प्रयोग आरंभ करने के लिए न केवल भारत सरकार को उसके आर्थिक व्यय को वहन करना होगा बल्कि इसके साथ ही इस कार्य के लिए उसे बड़ी संख्या में दुभाषिए और अनुवादकों को भी उपलब्ध करना होगा। लेकिन अभी तक इसके लिए भारत में कोई कार्य शुरू नहीं किया जा सका है। यह ठीक है कि भारत में हिन्दी के साथ अंग्रेजी जानने वाले दुभाषिए और अनुवादक हजारों की संख्या में हैं, परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ की फ्रेंच, रूसी,

चीनी, स्पेनिश और अरबी जैसी अन्य मान्य प्राप्त भाषाओं के लिए आवश्यक संख्या में योग्य और प्रशिक्षित दुभाषियों एवं अनुवादकों का जो अभाव है उसके कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की दृष्टि से हिन्दी के प्रयोग में जो कठिनाई आने वाली है, उसके समाधान का मार्ग भारत को ही ढूँढना होगा।

इसी पृष्ठभूमि और इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर प्रथम एवं द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को मान्यता दिलाने के साथ-साथ विश्व हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की बात को भी सर्वसम्मत प्रस्ताव के रूप में स्वीकृत किया गया था। द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी सिखाने के लिए विश्व हिन्दी विद्यापीठ के रूप में वर्धा में एक संस्था की स्थापना की जा चुकी है। लेकिन अभी तक इसे केंद्रीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त नहीं हो सकी है। परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को व्यवहार में लाए जाने के लिए इतना ही काफी नहीं है। इसीलिए दिल्ली में विश्व हिन्दी विद्यापीठ के एक केंद्र की स्थापना की योजना केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के सामने प्रस्तुत की गई है, जिसके अनुसार इस केंद्र में हिन्दी के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता प्राप्त एवं विश्व की अन्य प्रमुख भाषाओं के लिए दुभाषिए एवं अनुवादक तैयार करना, ऐसे कार्यों के लिए संगणकों जैसे आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों और साधनों का प्रयोग करना, हिन्दी के एक संदर्भ पुस्तकालय की स्थापना करना तथा हिन्दी में एक ऐसी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन करना, जिसके माध्यम से भाषा और साहित्य के क्षेत्र में संसार की अन्य भाषाओं में होने वाले महत्त्वपूर्ण कार्यों का हिन्दी के पाठकों को पता चल सके और हिन्दी में हो रहे महत्त्वपूर्ण कार्यों का भारत के बाहर के लोगों को पता चल सके। इस विद्यापीठ की स्थापना से भारत की राजकाज की भाषा के रूप में पूरी तरह से व्यवहार में लाए जाने के मार्ग में हिन्दी की जो स्वाभाविक कठिनाइयाँ हैं, उन्हें दूर करने के लिए ठोस कदम भी उठाए जा सकेंगे। अभी अंग्रेजी के माध्यम से हमारा शेष जगत से संपर्क रहा है। लेकिन यह न केवल अपर्याप्त है, बल्कि हमारे लिए अनेक प्रकार के कष्टों का कारण भी रहा है। अत: हमें संसार के भी राष्ट्रों से उनकी भाषा के माध्यम से संपर्क स्थापित करने के लिए ठोस कदम उठाना होगा। विश्व हिन्दी विद्यापीठ के माध्यम से ऐसा करना संभव हो सकेगा।

मारिशस, फिजी, सूरीनाम आदि संसार के अनेक देशों में काफी बड़ी संख्या में बसे भारतीय हिन्दी के माध्यम से अपनी शिक्षा दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन अभी भारत में कोई भी ऐसा विश्वविद्यालय नहीं है, जो उनकी ऐसी

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान कर सके या ऐसे सांस्कृतिक केंद्रों के साथ निरंतर संपर्क बनाए रख सके। विश्व हिन्दी विद्यापीठ इन दोनों कार्यों को कर सकेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि शेष जगत के साथ जीवंत सांस्कृतिक संबंध जोड़ने की दृष्टि से ये सभी बातें कितनी अधिक महत्त्व रखती हैं।

लेकिन यह सब केवल तृतीय विश्व हिन्दी विश्व सम्मेलन के आयोजन को सफल बना देने से नहीं होने वाला है। आयोजन की वास्तविक सफलता तो इस बात पर निर्भर करती है कि यह सम्मेलन भारत की अंग्रेजी और अंग्रेजी परस्त मानसिकता को बदलने में कितनी दूर तक सफल होता है। इसीलिए वैसे यह सम्मेलन कहने भर को ही तृतीय हिन्दी विश्व सम्मेलन है, परंतु वास्तव में यह सभी भारतीय भाषाओं का सभी भारतीय भाषाओं के लिए किया जा रहा सम्मेलन है। जब तक तमिलनाडु में तमिल को, बंगाल में बंगाली को, महाराष्ट्र में मराठी को और उसी प्रकार से देश के सभी राज्यों में अपनी-अपनी भाषाओं को शिक्षा-दीक्षा और राजभाषा की भाषा के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाता है, तब तक अंग्रेजी और अंग्रेजियत का भूत लोगों के सिर पर सवार रहेगा और भारतीय भाषाओं के विकास का राजमार्ग प्रशस्त नहीं हो पाएगा।

अत: मूल प्रश्न भारत की मानसिकता को बदलने का है। भारत की मानसिकता में बदलाव लाकर ही महात्मा गांधी ने इस देश से अंग्रेजों के भय के भूत को भगा दिया और इस देश के करोड़ों मूक, निरीह और असहाय लोग जब अपने पैरों पर उठ खड़े हुए तो अंग्रेजी राज्य का सितारा सदा के लिए डूब गया। इसके लिए राष्ट्रीयता की जिस भावना को प्रज्ज्वलित करने की जरूरत पड़ी थी, आज पुन: उस बुझती भावना को प्रबल बनाने की नितांत आवश्कता है क्योंकि इसके बगैर हर महान राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान के मार्ग में बौने लोग छोटे-छोटे स्थानीय प्रश्नों के रोड़े अटकाते रहेंगे और भारत के विकास के महान रथ को जिस वेग से आगे बढ़ना चाहिए, उसमें अपेक्षित गति नहीं आ पाएगी।

सांस्कृतिक दासता की जड़ राजनीतिक दासता की जड़ से भी अधिक गहरी होती है और इसके सूक्ष्म को पहचान पाना अत्यन्त कठिन होता है। लेकिन जिस प्रकार से आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक होती है, उसी प्रकार से सांस्कृतिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता भी प्राणहीन होती है। सांस्कृतिक मूल्य ही सामाजिक जीवन को वह आधार प्रदान

करते हैं, जिस पर राजनीतिक और आर्थिक ढांचा खड़ा किया जाता है। अत: यदि सांस्कृतिक नींव कमजोर रहे तो स्वभावत: सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचा भी कमजोर होगा। जब स्वराज्य प्राप्ति के लिए आंदोलन चल रहा था तो उस अवधि में महात्मा गांधी जब तक इस मूलभूत बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते रहते थे। स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य तिलक और श्री अरविंद ने तो बराबर कहा था कि हम स्वराज्य के साथ-साथ उन मूल्यों के लिए लड़ रहे हैं, जिन्हें अंग्रेजी राज्य ने करीब-करीब समाप्त-सा कर दिया है। पश्चिमी सभ्यता के स्वरूप की आलोचना करते समय जब महात्मा गांधी उसकी महाजनी सभ्यता कहकर तिरस्कार करते थे, तो उसके पीछे भी मूल बात मूल्यों की ही होती थी। यहाँ मैं भाषा के संदर्भ में इन बातों का स्मरण इसलिए करा रहा हूँ कि आज यह बात भुला दी गई है कि भारत की राजभाषा का सवाल एक ओर मानसिकता का सवाल है और दूसरी ओर वह हमारे राष्ट्रीय जीवन के उन बुनियादी मूल्यों से जुड़ा हुआ है, जिनके बगैर स्वतंत्रता अपनी गरिमा खो देती है।

जन जीवन से जुड़ी होने के कारण हिन्दी लोकतंत्र के उन बुनियादी मूल्यों से भी जुड़ी हुई है, जिनके बिना लोकतंत्र में प्राण का संचार नहीं हो सकता। लोकतांत्रिक पद्धति राजकाज का कोई ढांचा मात्र नहीं है, जहाँ पर समय पर चुनाव करा दिया जाए और फिर राजकाज चलता रहे। लोकतंत्र तो लोकतांत्रिक तरीकों से उन समस्याओं का समाधान खोज निकालता है, जिनका लोक जीवन से गहरा संबंध हुआ करता है। अत: चुनाव के अवसर पर तो लोक भाषा का प्रयोग किया जाए और पांच साल के लिए उसे भुला दिया जाए तो यह न केवल अलोकतांत्रिक नीति है बल्कि ऐसे मूल संकट को भी निमंत्रण देती है, जिसके कारण अंत में लोकतंत्र के पूरे ढांचे पर भी खतरे की आशंका बन सकती है। इसलिए पंचायत से लेकर अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ के हिन्दी के प्रयोगों के सभी पक्षों पर विचार करते समय मूल बात यह है कि लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों में हमारी श्रद्धा कितनी गहरी है। जिस भाषा में कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, रहीम, मीरा, जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद जैसे लोकविश्रुत साहित्यकारों ने अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किया, उस भाषा के माध्यम से संसार का सारा काम चलाया जा सकता है। पर यह तभी संभव है, जब इसके लिए हम संकल्प ले लें और पंचायत स्तर से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक हिन्दी के प्रयोग को भारतीय राष्ट्रीयता की कसौटी मानकर चलें।

महात्मा गांधी ने जब यह कहा था कि राष्ट्र गूंगा है तो उन्होंने भारतीयों के हृदय की मूक भावना को ही वाणी प्रदान की थी। अत: एक राष्ट्र के लिए राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगीत की तरह राष्ट्रभाषा भी अनिवार्य है और जिस प्रकार से राष्ट्रगीत एवं राष्ट्रध्वज को संपूर्ण राष्ट्र गौरव का स्थान प्रदान करता है, उसी प्रकार से राष्ट्रभाषा को भी गौरव का स्थान देना ही होगा। आश्चर्य की बात तो यह है कि जब राष्ट्रभाषा की बात आती है, तो संविधान के बड़े-बड़े पंडित तक हिन्दी के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और राष्ट्रभाषा के संबंध में संविधान में जो बात कही गई, उसे सर्वथा अनदेखा कर जाते हैं। यह उनकी दासता और मानसिकता का परिणाम है, जो उन्हें भारतीय जन जीवन से अपने को अलग रख कर अपनी विशेषता बनाये रखने की विषाक्त प्रेरणा पदान करता है।

जैसा कि कहा जा चुका है, भाषा का प्रश्न राजनीतिक नहीं है बल्कि सांस्कृतिक एवं सामाजिक है। अत: जब हम अंग्रेजी और अंग्रेजियत की मानसिकता और दासता से उभरकर भारत की स्वतंत्र सांस्कृतिक, सामाजिक सत्ता की खोज की ओर उन्मुख होंगे, तभी हमें हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं के गौरव का बोध होगा। साहित्य के विद्यार्थी इस बात को जानते हैं कि जब श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों के अनुकरण पर कविताएँ लिखीं तो उन्हें कवियित्री के रूप में कोई अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त नहीं हुई, लेकिन जब रवींद्रनाथ ठाकुर ने उपनिषदों और संतों की परंपरा में गीताजंलि की रचना की तो नोबल पुरस्कार के रूप में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई। आश्चर्य और दुख की बात यह है कि आज इस ऐतिहासिक तथ्य को भुला दिया गया है और नकल की आँधी में हम बहते जा रहे हैं। संसार भारत को भारत के रूप में देखना चाहता है, न कि इंग्लैंड, अमेरिका, रूस, चीन, अरब या किसी अन्य देश की फूहड़ नकल के रूप में। यह तभी संभव है जब भारतीय के रूप में हमें अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का बोध होगा और उसकी पहचान यह होगी कि हम हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को अपने रोजमर्रा के व्यवहार, शिक्षा और दीक्षा के माध्यम एवं भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कामकाज की भाषा के रूप में हिन्दी का सहज भाव से कितनी सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं। जिस रोज भारत एक राष्ट्र के रूप में ऐसा करने का संकल्प ले लगा, उस रोज भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के मार्ग की सारी मानसिक बाधाएँ दूर हो जाएंगी और उसका वह तेज पुन: प्रकट होगा, जिसकी संसार सदैव से प्रतीक्षा कर रहा है। यह काम किसी ग्रह से आने वाला कोई प्राणी नहीं करेगा, बल्कि इसे हम भारतीयों को करना होगा।

अमरीकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी

अमरीका में भी यूरोप की तरह भारतीय भाषाओं का अध्ययन संस्कृत से शुरू हुआ। द्वितीय महायुद्ध तक, विश्वविद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं का अध्ययन नहीं होता था। विश्वविद्यालयों के बाहर ईसाई धर्म प्रचारकों का थोड़ा बहुत काम हुआ और उन लोगों ने सब से पहले हिन्दी सीखने की कोशिश की तथा पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं। उसके बाद, द्वित्तीय महायुद्ध में, जब मित्र राष्ट्रों की फौजें सारी दुनियां में फैल गई थीं, अमरीकी सरकार की ओर से भाषावैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न भाषाओं के सरल पाठ्यक्रम तैयार किए गए। इस सिलसिले में हिन्दी में भी कुछ काम हुआ।

हिन्दी का विधिवत् अध्ययन तो भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शुरू हुआ, जब भारत को दुनिया के स्वाधीन तथा लोकतांत्रिक देशों में महत्वपूर्ण स्थान मिला तथा अमरीका और भारत के बीच हर तरह के नए संबंध स्थापित होने लगे। अमरीका के प्रबुद्ध वर्ग में नव स्वतंत्र भारत के प्रति बहुत सहानुभूति थी और भारत के आर्थिक विकास के लिए बहुत आकांक्षाएं तथा शुभ कामनाएँ।

इस संदर्भ में विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि के विद्वानों ने अपनी दृष्टि भारत की आधुनिक स्थिति तथा समस्याओं पर रखकर शोध कार्य करना आरंभ किया। इनकी मदद करने के लिए सरकार तथा स्वतंत्र संस्थाओं ने आर्थिक सहायता देना शुरू किया। चुने हुए विश्वविद्यालयों में अध्ययन-केंद्र बना दिए गए, जहां भारत और भारत के पड़ोसी देशों पर शोधकार्य के लिए हर तरह की सुविधाएं प्राप्त की गईं। विशेषकर पुस्तकों तथा अन्य शोध सामग्री के भंडार। आजकल 13 ऐसे केंद्र हैं, जिनमें शिकागो, कैलिफोर्निया, बिस्कान्सिन, कोलंबिया, पेंसिलेवेनिया, वाशिंगटन, टेक्सस तथा विर्जिनिया विश्वविद्यालय मुख्य हैं। इसके अलावा, भारत संबंधी अध्ययन की कुछ न कुछ सुविधाएँ 100 और विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में मिलती हैं।

सब मुख्य केन्द्रों की शिक्षा में, तथा अनेक और जगहों में, भाषाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण है। शुरू से ही हिन्दी तथा भारत की अन्य भाषाएँ सिखाई गईं। भारत से आए हुए कुछ विद्वानों ने, जिनकी मातृभाषा हिन्दी थी, तथा अमरीकी भाषावैज्ञानिकों ने मिल कर पाठ्यपुस्तकें तथा पाठ्यक्रम बनाना तथा हिन्दी के अनेक पहलुओं का अध्ययन करना शुरू किया। विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर ने लिए छात्रवृत्तियों का भी आयोजन किया गया, जो कि आजकल भी 13 मुख्य

विश्वविद्यालयों में प्राप्य है। राष्ट्रभाषा होने के कारण हिन्दी को सब से अधिक महत्व का स्थान दिया गया, और संख्या में पढ़ने वाले तथा पढ़ाने वाले सब से अधिक हैं।

जिस समय अध्ययन केंद्र बन रहे थे, उसी समय अच्छे स्तर के भारत-संबंधी ग्रंथागार बनाने के लिए एक और योजना बनाई गई। अमरीकन कांग्रेस के कानून पी.एल. 480 के आधार पर अमरीका ने भारत को कुछ साल तक गेहूँ बेच दिया था। ऋण चुकाने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गईं। इन में से एक यह भी थी जिससे भारत में मुख्य भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी में छपी हुई पुस्तकें हर साल अमरीकी विश्वविद्यालयों में पहुँचती हैं। उस योजना की सहायता से कई बहुत अच्छे ग्रंथागार बन गए हैं, जिनमें हिन्दी तथा अन्य विषयों के लिए अध्ययन की बहुत अच्छी सामग्री मिलती है। मुख्य केंद्रों के पुस्तकालयों में हिन्दी की ही 8000 से 24000 पुस्तकें मिलती हैं।

पी. एल. 480 के रुपयों की सहायता से एक योजना बन गई, जिससे अमरीकी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को तथा विद्वानों को (चाहे अमरीकी हो या किसी और देश के हों) भारत आने के लिए छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। उस योजना के सहारे पिछले 30 वर्षों में बहुत से विद्वानों ने भारत आकर भाषा सीखी तथा शोधकार्य किया है। इस के कारण अमरीका तथा भारत के विद्वानों में आदान-प्रदान हो पाया और शोध बहुत आगे बढ़ पाया। भारत के विषय में अमरीका में हर साल बहुत से शोध प्रबंध तथा पुस्तकें निकलती हैं, जो वहाँ की जनता तथा सरकार को भारत के बारे में असली जानकारी देने की कोशिश करती हैं।

हिन्दी के विषय में किस तरह का शोध कार्य अब तक हुआ और अभी हो रहा है? उत्तर देना थोड़ा कठिन है, क्योंकि हरेक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार अपना शोध कार्य करता है, किसी खास सामूहिक कार्यक्रम को लेकर नहीं। परंतु हम यह देख सकते हैं कि पिछले 25 वर्षों में, हालांकि हर तरह के विषयों पर काम हुआ है, शोध की प्रवृत्तियों के विभिन्न स्तर विद्यमान हैं।

शुरू में हिन्दी की मुख्यतः बोलचाल की भाषा के तौर पर पढ़ाया जाता था। उसको अन्य विषयों में शोध करने के लिए एक उपाय समझा जाता था। पढ़ाने वालों का काम था कि समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि के विद्यार्थियों को भारत में लोगों से हिन्दी में बात करने के लिए तैयार कर दिया जाए। उस सिलसिले में बहुत सी प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गईं क्योंकि पढ़ानेवाले मुख्यतः भाषाविज्ञान के विद्वान थे।

उसके बाद, जब भाषा की जानकारी की नींव दृढ़ हो गई तो विद्वानों में एक नई रुचि उत्पन्न हुई साहित्य का अध्ययन करने की। शुरू में खड़ी बोली साहित्य का अध्ययन किया गया था। अनुवाद के द्वारा आधुनिक हिन्दी साहित्य की कुछ महत्वपूर्ण कृतियां अमरीकी जनता के सामने लाई गईं। आगे बढ़कर कुछ विद्वानों का ध्यान मध्यकालीन ब्रज, अवधी आदि साहित्य की ओर गया और इस क्षेत्र में भी काफी काम हुआ। पिछले 4-5 सालों में, लोक-साहित्य तथा हिन्दी की लोकप्रिय क्षेत्रीय बोलियों पर भी पर्याप्त काम होने लगा है।

अत: हम यह देख सकते हैं कि पिछले 25 वर्षों में अमरीकी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन का एक विशेष विकास क्रम हुआ। शुरू में हिन्दी को केवल व्यावहारिक रूप से आधुनिक संपर्क भाषा के रूप में देखा जाता था। अब उनकी समृद्ध तथा विविध साहित्य परंपराओं का अध्ययन विधिवत् ढंग से किया जाने लगा है।

अमरीकी जनता में हिन्दी के प्रति जागरूकता

लगभग 1965 तक, अमरीकी जनता में हिन्दी भाषा के बारे में बहुत कम जानकारी थी। क्योंकि भारत में अंग्रेजी चलती है तथा जो थोड़े-बहुत भारतीय लोग अमरीका आते थे सब अंग्रेजी जानते थे। इसलिए यह भ्रम फैल गया था कि अंग्रेजी ही भारत की राष्ट्रभाषा है। अभी भी अधिकांश लोगों की यही धारणा है।

पिछले 20 वर्षों में तो स्थिति थोड़ी-सी बदल गई है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि भारत से बहुत अधिक लोग अमरीका पहुंच गए हैं, और संख्या की वजह से उनकी अपनी भाषाओं का अधिक प्रयोग है। इसके बारे में आगे चलकर चर्चा की जाएगी। दूसरा कारण यह है कि अमरीकी लोगों की ओर से भारत की संस्कृति के अनेक पहलुओं के प्रति आकर्षण होने लगा है। कुछ लोगों में इस समय आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव है। भौतिक विकास तथा व्यक्तिगत सफलता के उद्देश्यों से परे हटकर वे जीवन का मूल अर्थ जानना चाहते हैं और दार्शनिकों की तरह प्रश्न पूछते हैं। इस सिलसिले में भारत की अध्यात्म-परंपरा की ओर से आकर्षित होना स्वाभाविक है। बहुत-से लोग, विशेषकर युवा लोग, भारत के अध्यात्म-गुरुओं के चरणों में बैठने के लिए भारत आते हैं, और भारत के गुरु-संत-स्वामी अमरीका में भी पहुँचते हैं। क्योंकि अमरीका में, जैसे कि भारत में, धर्म के पालन तथा प्रचार के पूर्ण स्वतंत्रता है, उन गुरु-संत-स्वामियों का संदेश बहुत दूर तक फैल गया है। आजकल ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने

भारत के अध्यात्म-गुरुओं के बारे में नहीं सुना हो और कुछ ऐसे शब्द भी हैं (जैसे गुरु, योग, आश्रम, धर्म, कर्म) जो वहां की बोलचाल की भाषा में प्रचलित हो गए हैं।

उस आध्यात्मिक झुकाव के कारण भारत की ओर प्रवृत्त होकर बहुत-से लोग यह भी चाहते हैं कि जिस देश की आध्यात्मिक परंपराओं को वे सीख रहे हैं, उसकी भाषाएँ भी सीख लें। इस तरह हिन्दी, संस्कृत आदि की कक्षाओं में विद्यार्थियों का एक नया वर्ग पहुँच गया है।

अध्यात्म के अलावा, भारतीय शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला इत्यादि सांस्कृतिक परंपराओं में भी कुछ लोगों का झुकाव है। भारतीय डिजाइन लोगों को पसन्द है। चित्रकला तथा मूर्तिकला भी वहाँ बहुत बिकती है, और हस्तकला का भी काफी निर्यात होता है। कुछ अमरीकान चित्रकार भारतीय बिंबों तथा प्रतीकों से भी प्रभावित हैं और इनका प्रयोग अपनी कला में करते हैं। भारतीय संस्कृति में तो आजकल अमरीका में सबसे अधिक रुचि है। भारत के संगीतकार बड़ी संख्या में अमरीका पहुँचते हैं और श्रोतागण उनको बड़ी रुचि से सुनते हैं। वहाँ के बहुत से संगीतकार भारतीय शास्त्रीय संगीत का अध्ययन भी करते हैं तथा भारत में अध्ययन के लिए पहुँचते हैं। उन लोगों में भी भाषा सीखने की इच्छा स्वाभाविक है, और ऐसे लोग भी हिन्दी की कक्षाओं में पहुँचते हैं।

इन सब परिस्थितियों के कारण हिन्दी के बारे में जो ज्ञान पहले था, वो अब कम होने लगा है।

अमरीका के भारतीय और हिन्दी

आजकल अमरीका में प्रवासी भारतीयों की संख्या बहुत बढ़ गई है। यहाँ तक कि सरकार उनको अब एक सरकारी अल्प-संख्यक समुदाय मानने लगी है। 1965 से पहले, भारतीय अमरीका में बहुत कम थे तथा इधर-उधर बिखरे हुए थे, जिसके कारण उनकी संस्कृति कम विद्यमान थी। अब भारतीय सब क्षेत्रों में उपस्थित हैं और वे अमरीकन समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। संख्या अधिक होने के कारण, भारतीय लोग स्वयं अपनी संस्कृति सुरक्षित करने तथा बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

आजकल, विशेषकर न्यूयार्क या लॉस ऐंजल्स जैसे बड़े शहरों में, साड़ियों या पगड़ियों को देख कर किसी को आश्चर्य नहीं है, और भारतीय नाम-उपनाम भी कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। विभिन्न शहरों में कुछ ऐसे पड़ोस होने लगे

हैं जिनमें बहुत-से भारतीय रहते हैं और हर तरह के रेस्तरां तथा दुकानें हैं। कुछ जगहों में हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं तथा रेडियो के दो-एक हिन्दी प्रोग्राम भी होते हैं। बहुत-से सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक उत्सव आदि होने लगे हैं। मुख्य त्यौहार बड़े धूम-धाम से मनाए जाते हैं। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारा भी इधर-उधर बनने लगे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक बड़े-बड़े कार्यक्रम भी हुए हैं।

प्रवासी भारतीय लोगों में इस नए सांस्कृतिक उमंग के दो रूप हैं। एक तो ऐसी संस्थाएँ तथा कार्यक्रम जिनमें भारत के सब प्रदेशों के लोग किसी उद्देश्य से मिलते हैं (जैसे 15 अगस्त को मनाने के लिए या समसायिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए) ऐसे अवसरों पर ज्यादातर अंग्रेजी बोली जाती है। दूसरी ओर, ऐसी संस्थाएँ या सांस्कृतिक कार्य हैं जिनका आधार भारत के विभिन्न प्रादेशिक, या क्षेत्रीय संस्कृतियाँ हैं। उन्हीं में मातृभाषा का प्रयोग (चाहे हिन्दी हो या कोई अन्य भाषा) अधिक किया जाता है, और क्षेत्रीय परंपराओं (जैसे लोकगीत, कविता आदि) का पालन किया जाता है।

परिवारों में मातृभाषा का पालन तब किया जाता है जब बूढ़े लोग भी हैं, जिनको अंग्रेजी कम आती है। अन्यथा, भारतीय बच्चे अंग्रेजी ही बोलते हैं। लेकिन पिछले 5-6 वर्षों से, ये लड़के-लड़कियाँ विश्वविद्यालयों में पहुँचने लगे हैं। वहाँ हर विद्यार्थी को अकसर अपनी रुचि के अनुसार विदेशी भाषा का दो वर्ष तक अध्ययन करना पड़ता है। जहाँ हिन्दी या कोई और भारतीय भाषा सिखाई जाती है, भारतीय लड़के-लड़कियाँ उसी को सीखना पसंद करते हैं।

निष्कर्ष

अमरीका में हिन्दी का अध्ययन निजी रुचि की बात है। सरकार तथा स्वतंत्र संस्थाएं अध्यापन कार्यक्रमों में कुछ मदद करती हैं, परंतु अध्यापन की दिशा असंख्य पढ़ने-पढ़ाने वालों को व्यक्तिगत प्रेरणा तथा उद्देश्यों से विकसित हुई है। अतः हिन्दी साहित्य में विशेष रुचि लेने वाले साहित्य के विद्वान, भाषाविज्ञान के विद्वान, सामाजशास्त्र आदि के विद्वान आधुनिक भारत की प्रगति तथा समस्याओं पर शोध कार्य कर रहे हैं। भारतीय संगीत तथा अन्य कलाओं में रुचि लेने वाले साधारण लोग तथा कलाकार, अध्यात्म की ओर प्रवृत्त लोग जो किसी भारतीय धर्म-साधना के अनुयायी हैं, पर्यटक लोग जो भारत में घूमना चाहते हैं और ऐसे व्यक्ति जिन में किसी भारतीय के व्यक्तिगत संपर्क में आने के बाद भाषा सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई, तथा प्रवासी भारतीय लड़के-लड़कियाँ

जो अमरीका में पैदा होने के कारण अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा अच्छी तरह से नहीं जानते, हिन्दी का अध्ययन करने लगे हैं। अमरीकी विद्वानों में हिन्दी का अध्ययन व्यापक होता जा रहा है, जिससे वे भारतीय विद्वानों के साथ स्थायी संबंध बनाए रख सकें। आम जनता में भारतीय लोगों तथा भारतीय संस्कृति के बारे में अधिक जानकारी होने के कारण हिन्दी के बारे में भी कुछ जानकारी होने लगी है। अंत में प्रवासी भारतीयों में अपनी संस्कृति तथा भाषा के पालने के लिए भी एक नया उत्साह उत्पन्न हो रहा है।

लीपजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से लीपजिंग विश्वविद्यालय प्राच्य विद्या को प्रोत्साहन देता आ रहा है और इस क्षेत्र में बड़ा ही सटीक अनुसंधान कार्य करता आ रहा है। उदाहरण के लिए हर्मन ब्रॉक हॉस (1806-1857), अर्नेस्ट विंडिश (1844-1919), जॉहेन्स हर्टल (1872-1955) और फ्रीडरिच बेलर (1889-1980) जैसे विद्वानों ने लीपजिंग विश्वविद्यालय में काम किया और इसे प्राच्य विद्या का विश्वविख्यात केन्द्र बनाने में सहायता दी। विश्व के सर्वाधिक विख्यात प्राच्य विद्या विशेषज्ञ मैक्समूलर ने अपने प्रोफेसर हर्मन ब्रॉक हॉस के साथ लीपजिंग विश्वविद्यालय में 1841 में अपना अध्ययन आरंभ किया और यहीं पर उन्होंने अपने व्यापक ज्ञान का भंडार अर्जित किया और इसके बाद वे अपने अध्ययन को जारी रखने के लिए 1844 में पेरिस और उसके बाद बर्नाफ चले गए।

हर्मन ब्रॉक हॉस को उनकी पत्रिका जेटाशिफ्टि देर हयूशेन मार्गेन हैंडीशेन गेसल शेफ्ट (जर्नल ऑफ जर्मन ओरियंटल सोसाइटी) के प्रकाशन के कारण बड़ी ख्याति मिली। उन्होंने देवनागरी वर्णमाला का लैटिन लिप्यंकन किया जो आज भी प्रयोग लाया जाता है। अर्नेस्ट विंडिश विशेषत: तुलनात्मक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सक्रिय रहे और उन्होंने वैदिकोत्तर साहित्य पर कार्य किया। जॉहेक्स हर्टल भारतीय परियों की कहानियों के संग्रह, हितोपदेश और पंचतंत्र से संबंधित कार्यों के कारण प्रसिद्ध हुए। हर्टल ऐसे पहले व्यक्ति थे, जो आधुनिक भारतीय भाषाओं को जानते थे और इनमें भी वे सबसे अधिक गुजराती जानते थे और साथ ही हिन्दी और उर्दू जानते थे। फ्रीडरिच वेलर का स्थान बुद्ध धर्म और सर्वाधिक सक्षम विशेषज्ञों में आता है और उन्होंने इस क्षेत्र में अपने मौलिक और तुलनात्मक कार्य के कारण बड़ी ख्याति अर्जित की। उन्होंने लीपजिंग विश्वविद्यालय में

हिन्दी पढ़ाने का श्रीगणेश किया। इस कार्य में इन्हें प्रसिद्ध भारतीय विद्वान शांति भिक्षु शास्त्री ने सहायता की। शास्त्री जी ने लीपजिंग विश्वविद्यालय में 1956-1958 तक कार्य किया और हिन्दी भाषा में विद्यार्थियों को सबसे पहले प्रशिक्षण दिया। इन्होंने 'रेव बुनेन देस ठाकुर' (ठाकुर का कुआँ, लीपजिंग 1962) नामक भारतीय लघु कहानियों के एक खंड का संपादन किया।

1960 के बाद लीपजिंग कार्लमार्क्स विश्विद्यालय (1955 में यह नाम पड़ा) में युवा विद्वानों ने बुर्जुआ जर्मन प्राच्य विद्या की प्रगतिवादी परंपराओं का जारी रखते हुए आधुनिक समय की अपेक्षाओं को पूरा करने की दिशा में सक्रिय रूप से कार्य किया। यह नवीन मार्गदर्शन इस जानकारी पर आधारित है कि जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों के लिए यह आवश्यक है कि जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य को सभी समस्याओं की व्यापक जानकारी हो, जिससे पारस्परिक संबंध दोनों देशों के लिए अधिक से अधिक लाभकारी हों। अत: पुराने भारतीय भाषाविज्ञान के क्षेत्र में पारंपरिक अनुसंधान कार्य करने के अलावा, भारत के आधुनिक और समसामयिक इतिहास, भारतीय भूगोल और उनके अर्थशास्त्र एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य, विशेषत: हिन्दी और उर्दू के साहित्य क्षेत्र में अनुसंधान कार्य करने की दिशा में विशेष प्रयास किए गए।

1961 में मार्गेट गात्स्लाफ हेलसिग (जन्म 1934) लीपजिंग में कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय में हिन्दी के क्षेत्र में सक्रिय हुई। इन्होंने सोवियत संघ में लेनिनग्राद और मास्को विश्वविद्यालयों में प्राच्य विद्या का अध्ययन किया। 1962-64 तक इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में पोस्ट-डिप्लोमा का अध्ययन पूरा किया। बाद में शब्दकोश संबंधी कार्य के लिए भारत गईं। उनके मार्ग-निर्देशन में 1973 तक बहुत से छात्रों को हिन्दी का शिक्षण दिया गया। उसके बाद कार्य-विभाजन संबंधी नए निर्णयों के अनुसार प्राच्य विद्या के उच्च शिक्षा के छात्रों को बर्लिन स्थित हंबोल्ड विश्वविद्यालय में मुख्यतया प्राच्य विद्या की शिक्षा दी जाती है।

मा. गात्स्लाफ हेलसिग ने पहले लीपजिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी व्याकरण और भारत में भाषायी स्थिति पर अनुसंधान कार्य किया। उन्होंने इस क्षेत्र में जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य और भारत के वैज्ञानिक पत्रिकाओं में बहुत से लेख और निबंध लिखे। 1966 में, ''आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में 'हुआ' संयुक्त कृदंत के प्रकार्य'' पर शोध प्रबंध लिखकर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और 1978 में ''स्वतंत्र भारत में हिन्दी के प्रकार्यात्मक विकास की प्रवृत्तियाँ और

समस्याएँ'' पर प्रारंभिक शोध-प्रबंध लिखकर कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय से डी. एस.सी की उपाधि प्राप्त की।

उन्हें कई बार अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय सम्मेलनों और संगोष्ठियों में अपने वैज्ञानिक कार्य के परिणामों और हिन्दी की कतिपय समस्याओं तथा भारत की भाषायी स्थिति के बारे में अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने का अवसर मिला। उन्होंने भी अन्य विद्वानों के साथ 1975 में भारत में नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लिया और 1976 में मारिशस में मोका में हुए द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लिया। 1981 में उन्होंने ''प्रेमचंद और भारतीय उपन्यास की भारतीयता'' पर हुई अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया जिसका आयोजन नई दिल्ली की साहित्य अकादमी ने किया था। वह नई दिल्ली में लल्लनप्रसाद व्यास द्वारा संपादित 'विश्व हिन्दी दर्शन' नामक भारतीय पत्रिका की परामर्शदात्री समिति की भी सदस्य हैं।

इसके अतिरिक्त जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य के हिन्दी विद्वान अध्यापन-सामग्री के संपादन का प्रयास करते रहे हैं। इस प्रयास में उन्हें लीपजिंग स्थित पुराने प्रकाशन गृह ''बेब वेरलाग ऐनजीक्लोपेडी'' का, जिसे पहले ओटो हैरेसोविज के नाम से जाना जाता था, सहयोग प्राप्त होता रहा है। इस प्रकाशन गृह ने पहले ही 1945 में हिन्दुस्तानी भाषा पर एक पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की थी, जिसका संकलन ओटो स्पाइज ने किया था। हिन्दी पर इस प्रकाशन गृह द्वारा संपादित निम्नलिखित अध्यापन-सामग्री उपलब्ध है।

129 वीं शताब्दी के हिन्दी गद्य की उद्धरणिका, दगमर अंसादी द्वारा संशोधित तथा संपादित, लीपजिंग 1967, पृष्ठ 221,

हिन्दी व्याकरण गाइड, लेखिका– मार्गेट गात्स्लाफ हेलसिग, लीपजिंग, 1967, 1978, 1983, पृष्ठ 197,

हिन्दी- जर्मन कोश, लेखक– एरिका क्लेम, लीपजिंग 1971, पृष्ठ 418 (लगभग 12 हजार संदर्भ शब्द),

जर्मन-हिन्दी कोश– लेखक– मार्गेट गात्स्लाफ हेलसिग, लीपजिंग, 1977, 1982 पृष्ठ 646 (लगभग 16 हजार संदर्भ शब्द),

जर्मन-हिन्दी वार्तालाप पुस्तक, ले0 दगमर मारकोपा-अंसारी तथा एम. अहमद अंसारी, लीपजिंग, 1981, पृष्ठ 266,

नवीनतम प्रकाशन जॉर्गज ए. जो ग्राफ द्वारा लिखित ''दक्षिण एशिया की भाषाएँ'' नामक भाषायी सर्वेक्षण का रूसी भाषा से जर्मन भाषा में किए गए

अनुवाद का प्रकाशन है, जो 1982 में लीपजिंग से प्रकाशित हुआ और जिसमें 167 पृष्ठ हैं। इसका अनुवाद एरिका क्लेम ने किया है।

1963-1968 तक इरेने विटिग जाहरा (जन्म 1927) ने लीपजिंग कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय में आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में काम किया। उनके विशेष अध्ययन का विषय सुमित्रानंदन पंत का गीतिकाव्य था और इस पर ही उन्होंने शोधप्रबंध लिखा तथा 1967 में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। एम. गात्स्लाफ हेलसिग ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी काम किया। अब तक उन्होंने यशपाल, प्रेमचंद, कृशन चन्दर और कुलभूषण की कुछ लघु कहानियों का हिन्दी से जर्मन में अनुवाद किया जो जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रेपचंद का ''निर्मला'' (लीपजिंग, 1976), भीष्म साहनी का ''बसंती'' (प्रकाशनाधीन) और ''मारिशस की भारतीय लोक कथाएँ'' (लीपजिंग, 1979) का भी हिन्दी से जर्मन भाषा में अनुवाद किया। ये तीनों पुस्तकें फिलिप रैक्लेम जन, प्रकाशन गृह ने प्रकाशित की हैं।

1973 में एक नए प्रयत्न का सूत्रपात हुआ, जो प्राच्य विद्या के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है। जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य और भारत के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत बर्लिन स्थित हबोल्ट विश्वविद्यालय और नई दिल्ली स्थित केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसमें पारस्परिक सहयोग से एक ऐसे कोश के संकलन की व्यवस्था है, जिसमें (हबोल्ट विश्वविद्यालय के दायित्व के अधीन) ''हिन्दी-जर्मन'' और (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के दायित्व के अधीन) ''जर्मन-हिन्दी'' के खंड होंगे। इन खंडों में लगभग 45 हजार संदर्भ-शब्द होंगे। इन खंडों का कार्य जल्दी ही पूरा हो जाएगा। यह कोश परियोजना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का ही नहीं अपितु राष्ट्रीय सहयोग का भी एक अच्छा उदाहरण है। हम्बोल्ट विश्वविद्यालय, लीपजिंग कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय तथा लीपजिंग स्थित एनजीक्लोपेडिया प्रकाशन-गृह से हिन्दी के विद्वान शामिल किए गए हैं।

इस प्रकार कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विशेषज्ञ भारत में ही नहीं अपितु विश्व भर में एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में हिन्दी के अध्ययन एवं प्रचार के कार्य में संलग्न है और इस प्रकार वे जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य और भारतीय गणराज्य के बीच मैत्रीपूर्ण संबधों को व्यापक एवं सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से सहायता कर रहे हैं।

जर्मनी संघीय गणराज्य में हिन्दी

इस समय जर्मनी-संघीय गणराज्य के विश्वविद्यालयों में हिन्दी तथा दक्षिण एशिया की अन्य आधुनिक भाषाओं और साहित्य का मुख्य विषय के रूप में अध्ययन किया जा रहा है। यह अध्ययन पी.एच.डी. की उपाधि तक केवल हीडलवर्ग विश्वविद्यालय के साउथ एशिया इंस्टीयूट में ही किया जा सकता है। इस में कोई गर्व की बात नहीं है। इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि यह स्थिति एक ऐसे देश के लिए निश्चय ही सन्तोषजनक नहीं है जो परंपरा से भारतीय उपमहाद्वीप के साथ पूरी तरह प्रतिबद्ध रहा है। फिर भी एक ऐसी शुरूआत की गई है कि इससे वर्तमान स्थिति में इस देश में रचनात्मक आत्मआलोचना की प्रवृत्ति में आधुनिक प्राच्यविद्या की समस्याओं और संभावनाओं का परीक्षण करने की आवश्यकता है। क्लासिक जर्मन प्राच्यविद्या की व्यापक एवं उपयुक्त परंपरा रही है। अन्य बातों के साथ आधुनिक प्राच्य विद्या का अब तक विकास समान रूप से होता रहा है और अभी भी अपभ्रंश का रूप जो उज्ज्वल सांस्कृतिक अतीत और विकृत वर्तमान के बीच तुलना करने से उभरा है, उसने हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्य के बारे में हमारे दृष्टिकोण को अधिकांश रूप से निर्धारित किया है।

हिन्दी और अन्य दक्षिण एशियाई भाषाओं के संदर्भ में 'आधुनिक' उस विकास की ओर संकेत करता है जो 19 वीं शताब्दी के पहले 25 वर्षों में प्रारंभ हुआ था। अर्थात् यह वह समय था जब पश्चिमी चितंन और लेखन, विशेषकर अंग्रेजी का प्रभाव बंगाल के माध्यम से काफी पड़ा था। इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का एक युग था जो भारतीय कलाकारों और बुद्धिजीवियों के प्रयास से पश्चिमी संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ था और जिसमें अंधानुकरण से लेकर आलोचनात्मक अस्वीकरण या सर्जनात्मक ग्रहणशीलता की बात भी थी। यह संघर्ष अभी भी धीमे-धीमे चल रहा है। इस प्रसंग में हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन एक प्रकार से मिश्रित संस्कृति या सांस्कृतिक मिश्रण के भाषायी और साहित्यिक पक्षों का अध्ययन होगा। संस्कृति में जो हास हुआ है और सांस्कृतिक निर्देशिता की जो काल्पनिक अवस्था विलीन हो गई, इस पर शोक प्रकट करना तथा इस संघर्ष को अभारतीय या पश्चिमीकृत रूप कहना विकास का अत्यंत सरलीकरण है। इसके लिए हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इसका जिम्मेदार पश्चिम है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए हम में से कुछ लोग क्षुब्ध भी हैं।

उससे हिन्दी और अन्य दक्षिण एशियाई भाषाओं के उन असंख्य प्रयोक्ताओं के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा कि जो अभी भी कितने उपनिवेशी अतीत के प्रभाव को समाप्त करने में प्रयत्नशील हैं और जो अपनी भाषा और साहित्य की (चाहे वह मौखिक हो या लिखित) बढ़ती हुई सफलता के लिए प्रयत्नशील हैं।

हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह समझना इससे अधिक शैक्षिक रुचि का काम है और इस संघर्ष को समझना शैक्षिक दृष्टि से और अच्छा है। ऐसा समझने से हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं को समझने में सहायता मिलेगी। यदि मुख्यत: उन भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन करने का निर्णय सांस्कृतिक दृष्टि से उत्प्रेरित हो तो यह उत्प्रेरणा मानवीय भावनाओं से जुड़ी हुई है।

इस क्षेत्र में जिन देशों की तुलना की जा रही है, उनसे हटकर पहले की उपनिवेशवादी शक्तियां तथा संयुक्त राज्य अमरीका या पूर्वी यूरोपीय देश, जिसमें जर्मन जनवादी गणराज्य भी शामिल है–आगे है। इसके आगे होने के कारण वस्तुत: शिक्षा को कम महत्व देना है। जर्मन संघ गणराज्य के पास कभी भी निश्चित कार्य-शैली या स्पष्ट राजनीतिक उत्प्रेरणा नहीं रही जो दूसरे देशों में कुछ न कुछ मिलती है। हिन्दी तथा अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं के जिस अध्ययन को सरकार ने बड़े पैमाने पर निर्दिष्ट किया है उसके विकास के लिए वह उत्तरदायी है। चूँकि अब भारत और पश्चिम जर्मनी में विकासशील (अर्थात् सहायता प्राप्त करने वाले देश) तथा सहायता देने वाले औद्योगिक देश क्रमश: भ्रामक भूमिका निभानी शुरू की है, इसलिए उनके आपसी संबंधों ने उस परंपरागत सरलता को खो दिया है जो प्रथमत: और अंतत: आपसी सांस्कृतिक सद्भाव पर आधारित थी। यही कारण है कि हमारे इस राजनीतिक या शैक्षिक परिवेश में जब कोई विद्यार्थी हिन्दी या किसी अन्य दक्षिण एशियाई भाषा और साहित्य (क्लासिकी हो या आधुनिक) के अध्ययन का यदि व्यक्तिगत रूप से निर्णय लेता है तो उसे बिना किसी सरकारी प्रोत्साहन के मदद ही नहीं मिलती। इतना ही नहीं उसे अभी इससे कोई विशेष रोजगार भी मिलने की संभावना नहीं है। वस्तुत: प्राच्यविदों को अभी भी क्षेत्रीय विशेषज्ञों के रूप में सरकार द्वारा मान्यता मिलना शेष है।

वस्तुत: इस देश में अन्य विषयों के साथ-साथ क्लासिकी प्राच्यविद्या के विद्यार्थी की अपेक्षा आधुनिक प्राच्यविद् भारत या दूसरे दक्षिण एशियाई देशों के व्यक्तियों और अधिकारियों से प्रोत्साहन तथा समर्थन मिलने पर कार्य कर पाएगा।

ऐसा होना निश्चित रूप में उसके ऊँचे हौंसले के लिए घातक है। अगर आंगल-भारतीय कथा-साहित्य को कोई लब्धप्रतिष्ठित भारतीय लेखक और बुद्धिजीवी उससे कहता है (जैसा कि इस देश में कुछ वर्षों पूर्व हुआ था) कि उसे इस पिछड़ी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन पर अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए या वे ये कहें कि जो कुछ भी आधुनिक भारतीय साहित्य में है वह अंग्रेजी में लिखा जा चुका है।

वस्तुत: अपने पूरे इतिहास में हिन्दी साहित्य शायद ही कभी इतना समृद्ध और जीवंत नजर आया हो जितना वह आज है। यही कारण है कि कोई भी विद्यार्थी जो किसी कठिन भाषा को सीखने की चुनौती स्वीकार करता है वह हिन्दी जैसी कठिन भाषा की ओर आसानी से प्रवृत्त हो सकता है। हांलाकि हिन्दी लेखन में दो मुख्य प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ी हैं, पहली तो यह कि साहित्यिक भाषा आम जनता की भाषा के निकट आई है। अगर उसे राजनीतिक शब्दावली में कहें तो यह होगा कि साहित्यिक भाषा का लोकतंत्रीकरण हुआ है, जिसके कारण ज्यादा से ज्यादा पाठक अथवा श्रोता साहित्य में अपनी भूमिका निभा सकते हैं (ठीक वैसे ही जैसे राजनीति खेल रहे हों)। दूसरी विशेषता है साहित्य का भाषायी स्थानीकरण (लिंग्विस्टिक लोकोलाइजेशन) विशेष रूप से न केवल खड़ी बोली में वरन् लिखित व्याख्यात्मक गद्य के क्षेत्र में 'अनेकता में एकता' का सिद्धांत स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होता है और यह वह सिद्धांत है जिस पर भारत जैसे विस्तृत और विभिन्नता से भरे देश का भविष्य निश्चित तौर पर निर्भर करता है।

सूरीनाम और हिन्दी

सूरीनाम में रहने वाले भारतीय प्राय: उत्तर भारत से आए हुए हैं और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार प्रदेश के निवासी हैं। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, गुजराती और मराठी हैं। ये सभी भाषाएँ यूरोपीय भाषा वर्ग की हैं। हिन्दी को पाँच प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है। पहाड़ी राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी। इन भाषा क्षेत्रों में कई बोलियाँ हैं। सूरीनाम में हिन्दुस्तानी प्रवासी लोग मुख्य रूप से भोजपुरी और अवधी बोली बोलते थे। इन बोलियों के अतिरिक्त अधिकांश भारतीय मूल के लोग जो सूरीनाम में बस गए थे उत्तर भारत की सार्वजनिक संपर्क भाषा खड़ी बोली भी जानते थे। खड़ी बोली के अलावा उर्दू का भी प्रयोग होता था।

वास्तव में भारतीय प्रवासियों के आपसी संपर्क के कारण उनकी सभी भाषाएँ मिश्रित होकर विशिष्ट प्रचलित हिन्दी बोली जाती है। साहित्य और अध्यापन के प्रभाव से हिन्दुस्तानी या उर्दू (मुस्लिम) और सामान्य उच्च-हिन्दी (हिन्दू) ज्यादातर मानक भाषा का रूप धारण करने लगी। वर्तमान समय में इस भाषा का प्रयोग भाषण, पत्र, सूचना आदि में शुद्ध हिन्दुस्तानी या सरल उच्च हिन्दी के रूप में होता है। बोलचाल की भाषा में स्थानीय भाषाओं का भी प्रभाव आ गया है। गयाना पड़ोसी देश से पश्चिमी प्रांत निकेरी में अंग्रेजी का प्रभाव भी पड़ा है। इसी में एक बोली स्रानांग तोंगो है जिसे नीग्रो इंगलिश भी कहा जाता है। वास्तव में अधिकांश भारतवंशी होने के कारण उनकी बोलचाल की भाषा सूरीनाम की धरती पर विकसित हुई है जिसे ''सरनामी हिन्दी'' कहा जाता है और अब वह केवल सरनामी से जानी जाती है। हिन्दी के अलावा बहुत से भारतवंशी स्रानांग तोंगो भी बोलते हैं। विशेष रूप से पुरुष वर्ग और युवा वर्ग हिन्दी के अतिरिक्त यह भाषा अच्छी तरह से बोलते हैं। परिवार में युवा वर्ग प्रायः सरनामी का ही प्रयोग करता है।

पारामारिबो राजधानी में भारतवंशियों द्वारा हिन्दी के अतिरिक्त डच भाषा का अधिक प्रयोग किया जाता है। कुछ ऐसे परिवार हैं जहाँ हिन्दी समझी नहीं जाती। ये परिवार बहुत समय पहले से ही पारामारिबो में बसे हुए हैं। अब कई भारतवंशी हिन्दी सीखने की कोशिश कर रहे हैं।

देश और निवासी

यहाँ दुनियाँ की करीब सभी जातियाँ रह रही हैं - अमरेंद्यन (रेड-इंडियन या भिलनी), नीग्रो, हिन्दुस्तानी, जाबी (इंडोनेशियन), बुश-नीग्रो, चीनी, लिबानिश (यहूदी) परिवार, यूरोपियन आदि। 1980 की जनगणना के अनुसार 39 प्रतिशत हिन्दुस्तानी, 35 प्रतिशत नीग्रो, 18 प्रतिशत इंडोनेशियन, शेष 8 प्रतिशत अन्य जातियाँ हैं। इस प्रकार सूरीनाम देश केरीबियन क्षेत्र में सब से विषमरूपी समाज है। कई जातियों के साथ-साथ यहाँ कई संस्कृतियाँ और कई भाषाएँ भी हैं। इसकी कुल आबादी लगभग चार लाख है। इस चार लाख में जो भाषाएँ बोली जाती हैं वे हैं - डच, स्रानांग, तोंगों, हिन्दी (सरनामी हिन्दी), उर्दू, जावी, चीनी, अंग्रेजी, बुशनीग्रो की कई भाषाएँ, रेड-इंडियन की कई भाषाएँ आदि। संसार में शायद कोई ऐसा देश हो जहाँ इतनी आबादी में इतनी सारी भाषाएँ बोली जाती हों।

भारतवंशी समाज

आज से यदि 110 वर्षों के भारतवंशियों के इतिहास पर प्रकाश डाला जाए तो यही पता चलता है कि हमारे पूर्वजों ने यहाँ की जमीन को आबाद किया, भूमि पर खेती की और सूरीनाम में शांति तथा प्रगति के साथ अपना जीवन आरंभ किया। इसी तरह से अफ्रीका तथा एशिया के अन्य आप्रवासियों ने भी इस देश की उन्नति और विकास में योगदान दिया।

सन् 1873 ई0 में भारतवंशी पूर्वजों ने सूरीनाम देश में अपना प्रथम पग रखा। प्रथम जहाज जो आया था वह था ''लालारुख'' जिसमें 410 लोग थे। समुद्र के रास्ते से आने के कारण 11 लोगों की मृत्यु हो गई थी। कुल योग जो प्रथम बार थे 399 इस जहाज ''लालारुख'' ने 4 जून 1873 को सूरीनाम नदी में प्रवेश किया था और 5 जून को हमारे पूर्वजों ने अपना पैर इस देश की धरती पर रखा। अनेक कठिनाइयों और संकटों के बीच अपने पूर्वजों ने आज भी धर्म, संस्कृति, भाषा आदि को सुरक्षित रखा है। इतिहास बताता है कि सन् 1873 ई0 तक प्रायः 56 वर्षों तक किसी न किसी रूप में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था सरकारी विद्यालयों तथा स्वैच्छिक संस्थाओं में निरन्तर चलती रही, किन्तु सन् 1929 से अब तक प्रायः 55 वर्षों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सरकारी विद्यालयों में बंद हो गया और केवल स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा ही कुछ काम होता है।

मॉरीशस में हिन्दी

(हिन्द) महासागर में अवस्थित मॉरीशस ही वह पहला देश है। जहां सर्वप्रथम दिसंबर 1834 में प्रवासी भारतीयों के चरण पड़े थे। अन्य देशों में विनीडाड 1845, द. अफ्रीका 1860, गुयाना 1870, सूरीनाम जून 1873, फीजी मई, 1879 में भारतीय मजदूर पहुंचे थे। मॉरीशस ही वह प्रथम भारतेतर देश है जहां विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हुआ और राष्ट्र संघ में हिन्दी को स्थान दिलाने का प्रस्ताव भी सर्वप्रथम इसी ने ही रखा था। अतः विश्व हिन्दी साहित्य में मॉरीशस का अपना विशिष्ट स्थान बन गया है। इस समय वहां भावयित्री एवं कारयित्री दोनों प्रतिभाएं एक साथ कार्यरत हैं। हिन्दी पत्रकारिता की दृष्टि से मॉरीशस में सर्वप्रथम 15 मार्च, 1909 को 'हिन्दुस्तानी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र हिन्दी, अंग्रेजी तथा गुजराती में एक साथ प्रकाशित होता था। इसके प्रथम संपादक डॉ. मणिलाल थे। इस

पत्र के माध्यम से ही वहां के लोगों में सामाजिक, राजनीतिक चेतना का उदय होने के साथ-साथ–

निज भाषा उन्नति अहै, निज उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिये को सूल॥

का भी अनुभव किया। लेकिन डॉ. मणिलाल के भारत आने के बाद ही इस पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। सन् 1910 में डॉ. मणिलाल ने वहां आर्य समाज की स्थापना की और एक प्रेस भी खोला। यहीं से सन् 1911 में 'मॉरिशस आर्य पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था। पहले यह पत्र आर्य सभा के पदाधिकारियों की देख-रेख में चला। फिर सन् 1916 में पं. काशीनाथ किष्ठो इसके संपादक बने जिन्होंने बड़ी लगन और निष्ठा से इसे कई वर्षों तक जीवित रखा। इसमें आर्य समाज की शिक्षा के साथ-साथ वैदिक धर्म को भी प्रधान स्थान मिलता था। इसी वर्ष श्री रामलाल के संपादन में 'ओरिंटल गजेट' नाम का एक और पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें भारतीयों के बारे में प्रचुर सामग्री छपती थी। सन् 1920 में इंडोमॉरीशस संघ के तत्त्वावधान में 'मारिशस टाइम्स' का प्रकाशन हुआ। 1924 में श्री गजाधर राजकुमार के संपादन में 'मॉरिशसमित्र' नाम का एक पत्र निकला जिसमें अधिकतर सामाजिक सुधार तथा भ्रातृत्व भावना के लेख छपते थे। फिर सन् 1929 में 'आर्य वीर' नाम का एक द्विभाषिक पत्र निकला। यह एक साप्ताहिक पत्र था जिसके प्रथम संपादक पं. काशीनाथ किष्ठो ही हुए। इसमें आर्य समाज के विचारों का बाहुल्य रहता था।

सन् 1933 में सनातन धर्मावलंबियों में श्री रामासामी नरसीमुलु (नरसिंह दास) के संपादन में 'सनातन धर्मांक' पत्र निकला। जिसमें हिन्दू धर्म और रीति रिवाजों पर विपुल सामग्री दी जाती थी यह एक द्विभाषिक पत्र था। मॉरीशस के भारतवंशियों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से सन् 1936 में इंडियन कल्चरल एसोशिएशन की स्थापना हुई। इस संस्था ने 'इंडयन कल्चरल रिव्यू' नाम का एक पत्र निकाला जिसके प्रथम संपादक थे डॉ. के. हजारी सिंह जो मोक स्थित महात्मा गांधी के वर्तमान निदेशक हैं। इसी संस्थान में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन सन् 1976 में हुआ था। सन् 1936 में रिव्यू के एक पूरक हिन्दी पत्र 'वसंत' का प्रकाशन हुआ जिसके संपादक थे पं. गिरजानन उमाशंकर। कुछ वर्ष प्रकाशित होने के बाद यह पत्र बंद हो गया। पाँच वर्ष पूर्व 'वसंत' का पुनर्जन्म हुआ और इसके वर्तमान संपादक हैं मारिशस के प्रसिद्ध लेखक श्री अभिमन्यु अनंत। यह एक मासिक पत्र है तथा महात्मा गांधी संस्थान

के तत्त्वावधान में प्रकाशित हो रहा है। यह पूर्ण साहित्यिक धारा पत्र है। इसमें नवोदित रचनाकारों को अधिक स्थान मिलता है। इसका कहानी विशेषांक काफी ख्याति अर्जित कर चुका है। विदेशी हिन्दी पत्रों में वसंत का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है तथा इसका स्तर भी भारतीय श्रेष्ठ पत्रों के समान ही है।

सन् 1942 में पब्लिक रिलेशंस ऑफिस से 'मासिक चिट्ठी' नाम से एक लघु पत्र निकला जो सूचनात्मक अधिक था। सन् 1945 में 'आर्यवीर जागृति' नाम से एक दैनिक पत्र निकला जिसके संपादक थे प्रो. विष्णुदयाल वासुदेव। इसने भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी परंतु कुछ वर्षों के बाद इसे बंद होना पड़ा। सन् 1948 में 'जनता' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके प्रथम संपादक हुए श्री जयनरायण राय। इसमें साहित्यिक और हिन्दी के लिए समर्पित भाव को स्थान मिला। बाद में इसको कुछ समय के लिए बंद होना पड़ा परंतु पुनः सन् 1974 में इसका पुनःप्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस समय 'जनता' मॉरीशस का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक माना जाता है। तथा इसके वर्तमान संपादक हैं श्री राजेन्द्र अरुण। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के समय इसने हिन्दी प्रचार प्रसार के लिए उत्कृष्टतम भूमिका निभाई थी। सन् 1948 में ही एक और पत्र 'जमाना' भी विष्णुदयाल बंधु के संपादन में निकला। यह मॉरीशस के हिन्दी लेखकों का सहयोगी पत्र था। और इसमें अधिकतर हिन्दी की रचनाओं को स्थान दिया जाता था। अब यह पत्र कभी-कभार ही निकल पाता है। इसके उपरांत आर्य सभा मॉरीशस ने पुनः 'आर्योदय' नाम का एक और पत्र निकाला। यह पत्र आज भी वैदिक धर्म और हिन्दी की सेवा बड़ी निष्ठा से कर रहा है। सन् 1953 में मॉरीशस आमाल गामटेड के तत्त्वावधान में 'मजदूर' का प्रकाशन हुआ जिसमें प्रवासी भारतीयों के समाचारों को प्रमुखता से छापा जाता था। सन् 1959 में श्री भगतसुरज मंगर और श्री रामलाल विक्रम के संपादन में 'नवजीवन' का प्रकाशन हुआ। फिर सन् 1960 में मॉरीशस हिन्दी परिषद का त्रैमासिक पत्र 'अनुराग' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका को सम्पूर्ण मॉरीशसीय लेखकों का सहयोग प्राप्त था। इसके प्रथम संपादक थे पं. दौलत शर्मा। इसमें कविताए कहानी, नाटक, संस्मरण, भेंटवार्ता तथा निबंध को भरपूर स्थान दिया जाता है। यह पत्र इस समय मॉरीशस का एकमात्र त्रैमासिक साहित्यिक पत्र है। संप्रति इसके संपादक हैं मारिशस के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कवि और लेखक श्री सोमदत्त बखौरी। इसी वर्ष 'समाजवाद' पत्र का भी प्रकाशन हुआ जो थोड़े दिनों बाद बंद हो गया। हिन्दू मॉरीशस कांग्रेस ने 'कांग्रेस' नाम से तथा प्रशिक्षण महाविद्यालय ने 'प्रकाश' नाम

से सन् 1964 में अपने-अपने पत्र निकाले। प्रकाशन में वहां के प्रशिक्षणार्थियों की रचनाओं का बाहुल्य होता है। यह पत्र अब भी वार्षिक अंक के रूप में प्रकाशित हो जाता है। प्रो. रामप्रकाश इसके संपादक हैं। सन् 1965 में मॉरीशस में सर्वप्रथम एक बाल पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसका नाम था 'बाल सखा'। यह पत्रिका हिन्दी लेखक संघ के तत्त्वावधान में प्रकाशित हुई।

सन् 1970 में मॉरीशस के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री मोहनलाल मोहित के संपादन में 'आर्य समाज' का हीरक जयंती विशेषांक प्रकाशित हुआ तथा सन् 1973 में 'वैदिक जरनल' का प्रकाशन। इन दोनों पत्रों का संकल्प हिन्दी भाषा को सुदृढ़ बनाना था। सन् 1974 में त्रियोले से 'आभा' 'दर्पण' नाम के दो विशुद्ध साहित्यिक पत्र निकले। ये मासिक पत्र थे। 'आभा' के समपादक हैं मारिशस के उदयीमान कवि तथा कहानीकार श्री महेश रामजियावन। 'आभा' का कहानी विशेषांक पाठकों में काफी चर्चित रह चुका है। इसी के साथ द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री दयानंदलाल वसंतराय के संपादन में 'शिवरात्रि' वार्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र आज भी अपनी गरिमा और गौरवमयी परंपरा के साथ प्रकाशित होता है। इसमे भी हिन्दी साहित्य को प्रचुर स्थान दिया जाता है। तथा संस्कृत शिक्षा के लिए भी कभी-कभार अच्छे लेख प्रकाशित होते हैं। सन् 1975 में हिन्दी सरस्वती संघ, त्रियोले की त्रैमासिक पत्रिका 'रणभेरी' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसमें वहां के हिन्दी रचनाकारों को विशेष रूप से प्रोत्साहन देने का संकल्प है। इस प्रकार मॉरीशस में हिन्दी पत्रों की एक लंबी पृष्ठ शृंखला समय के साथ निरंतर बढ़ती जा रही है जो कि विश्व हिन्दी साहित्य के लिए एक शुभ लक्षण है।

नेपाल में हिन्दी

भारत के उत्तर में लगभग 500 मील की लम्बाई में पूरब से पश्चिम तक फैला नेपाल जहाँ अपनी नैसर्गिक सुषमा और संपदा के लिए एशिया का स्विटजरलैंड कहा जा सकता है, वहीं अपने शौर्य एवं वीरता तथा सांस्कृतिक चेतना के लिए हिमालय की गोद में पला यह राष्ट्र हिमालय की ही तरह एशिया का सजग प्रहरी भी कहा जा सकता है। इस राष्ट्र ने अपनी सजगता का परिचय बारहवीं शताब्दी से ही देना शुरू कर दिया था, जब भारत पर पश्चिम से लगातार आक्रमणों का नया दौर प्रारंभ हुआ था। तब से लेकर भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना तक अनेक हिन्दू राजाओं जैसे हरिसिंह देव, भारत में अंग्रेजी उपनिवेश

के विरुद्ध लड़ने वालों, जैसे तांत्या टोपे, बेगम हजरत महल आदि प्रमुख व्यक्तियों का शरणास्थल भी यह देश रहा है।

इस देश में अनेक छोटे-बड़े राजा थे, जो आपस में लड़ते रहते थे। भावी अनिष्टों की कल्पना तथा भारत में लगातार हिन्दू राज्यों की पराजय से शिक्षा लेकर वर्तमान शाहवंशीय शासकों में प्रथम तथा दूरदर्शी नरेश पृथ्वी नारायण शाहदेव ने आज के नेपाल का एकीकरण किया था। यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि जिस महाराजा पृथ्वी नारायण शाह ने नेपाल को एक सूत्र में बाँधा, वह नाथ संप्रदाय के उन्नायक हिन्दी के सुपरिचित कवि, उत्तर भारत में हिन्दू संस्कृति एवं धर्म के महान रक्षक योगी गोरखनाथ के बड़े भक्त ही नहीं, वरन् स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। उनके भजन अभी भी रेडियों नेपाल से प्रायः सुनाई पड़ते हैं।

फिजी में हिन्दी

प्रशांत महासागर के मोती फिजी में भी भारतीय श्रमिक कुली के रूप में लाए गए थे। वे अपनी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से हिन्दी का अलख जगाए हुए हैं। यह संसार में दूसरा विदेशी राष्ट्र है जहां हिन्दी का बाहुल्य है। फिजी में सर्वप्रथम सन् 1913 में पं. शिवदत्त शर्मा की देखरेख में डॉ. मणिलाल द्वारा संपादित पत्र 'सेटलर' का हिन्दी अनुवाद साइक्लोस्टाइल रूप में प्रकाशित हुआ था। इसका लोगों ने भरपूर स्वागत किया। फिर सन् 1923 में 'फिजी समाचार' का प्रकाशन हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था इसके प्रथम संपादक थे श्री बाबूराम सिंह और अंतिम श्री चंद्रदेव सिंह। यह पत्र कुछ वर्षों तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। इसी समय 'भारत पुत्र', 'बुद्धि' तथा 'बुद्धिवाणी' आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ जो अधिक दिन न चल सके और शीघ्र ही इतिहास की एक घटना बन कर रह गए। सन् 1930-40 के मध्य दो मासिक पत्र और निकले, एक पं. श्री कृष्ण शर्मा के संपादन में 'वैदिक संदेश' तथा दूसरा 'सनातन धर्म'। किंतु दोनों पत्र पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना के शिकार हुए और अकाल ही काल कवलित हो गये।

सन् 1935 में 'शांतिदूत' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पं. गुरुदयाल शर्मा इसके संस्थापक संपादक थे। अब श्री जगनरायण शर्मा संपादक तथा श्रीमती निर्मला पथिक सह संपादक हैं। यह फिजी का सर्वाधिका प्रसार वाला हिन्दी पत्र है तथा फिजी टाइम्स समूह प्रकाशन से संबंधित है। इसमें

साहित्यिक, राजनीतिक विषयों पर भरपूर सामग्री रहती है। इसका प्रकाशन स्तर भारतीय पत्रों के समान ही है। सन् 1940 के आसपास फिजी में कई हिन्दी पत्र उदित हुए, जैसे पं. वी. डी. लक्ष्मण के संपादन में 'किसान' अखिल फिजी कृषक महासंघ के तत्त्वावधान में 'दीनबंधु' श्री ज्ञानीदास के संपादन में 'ज्ञान' और 'तारा', आर्य पुस्ताकलय के अन्तर्गत 'पुस्तकालय', श्री काशीराम कुमुद के संपादन में 'प्रवासिनी' तथा श्री राम खेलावन के संपादन में 'प्रकाश' आदि। इन सभी पत्रों में हिन्दी लेखन और साहित्य के अलावा फिजी में प्रवासी भारतीयों की दशा का भी चित्रण होता था। ये सभी पत्र अधिक दिनों तक प्रकाशित न रह सके और एक-एक कर सभी बंद हो गये। फिर भी फिजी में हिन्दी पत्रकारिता में इनका योगदान सराहनीय रहा। इसी प्रकार 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश' और 'मजदूर' पत्र भी हैं जो दो-चार अंकों के बाद अपने अस्तित्त्व की रक्षा न कर सके।

इसके बाद पं. राघवानंद शर्मा के कुशल संपादन में 'जागृति' पत्र का प्रकाशन हुआ जिसने काफी लोकप्रियता प्राप्त की। पहले यह पत्र अर्द्ध साप्ताहिक था। कालांतर में साप्ताहिक हो गया। इसमें किसानों से संबंधित समाचार अधिक रहते थे। कुछ वर्ष पहले ही इसका प्रकाशन बंद हुआ है। सन् 1953 में 'आवाज' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसमें राजनीतिक चेतना के स्वर अधिक थे। श्री ज्ञानदास के संपादन में 'झंकार' साप्ताहिक का प्रकाशन भी हुआ। इसका प्रकाशन बड़े उत्साह के साथ हुआ। इसमें सिने समाचारों का बाहुल्य होने से इसे शीघ्र ही लोकप्रियता मिली, पर सन् 1958 में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

सन् 1960 में 'जय फिजी' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक हैं पं. कमलाप्रसाद मिश्र। यह फिजी का अति लोकप्रिय पत्र है तथा साप्ताहिक रूप में अब भी प्रकाशित हो रहा है। इसका मुद्रण फोटो सेट विधि से होता है। इस पत्र के संपादक पं. कमला प्रसाद मिश्र की हिन्दी सेवा और उनका फिजी में हिन्दी पत्रकारिता में योगदान के आधार पर भारत सरकार ने उन्हें 'विदेशी हिन्दी सेवी' पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया। स्व, श्री नंदकिशोर के संपादन में 'फिजी संदेश' का भी प्रकाशन हुआ। इनमें स्थानीय लेखकों को बहुत प्रोत्साहन मिलता था फिर भी ये अधिक लोकप्रिय नहीं हुए और बंद हो गये। सन् 1974 में पं. विवेकानंद शर्मा के कुशल संपादन में 'सनातन संदेश' का प्रकाशन हुआ। यह मासिक पत्र था। यह फिजी की सनातन धर्म सभा का प्रमुख पत्र था। श्री शर्मा के अनथक प्रयासों के बाद भी इसका प्रकाशन अधिक वर्षों तक न हो

सका। इसके अतिरिक्त 1926 में 'राजदूत' पत्र का राजकीय प्रकाशन हुआ, जिसमें राजकीय बातों को ही प्रश्रय दिया जाता था। इसी प्रकार 'विजय' के भी कुछ अंक निकले, पर विजय भी अपनी रक्षा न कर सका और समय के हाथों पराजय को प्राप्त हुआ। फिजी के सूचना मंत्रालय द्वारा 'फिजी वृत्तांत' और शंख के भी प्रकाशन हुए जिनमें वहां के जन-जीवन की चर्चाएं प्रधान होती थीं। इस प्रकार विश्व हिन्दी पत्रकारिता में फिजी के हिन्दी पत्रों की अविरल अनवरत चली आ रही है।

गुयाना में हिन्दी

यह राष्ट्र भी दक्षिणी अमेरिका में अवस्थित है और यहां भी काफी संख्या में प्रवासी भारतीय रहते हैं। हिन्दी और भारतीय संस्कृति यहां के जन जीवन में सर्वत्र फैली है। यहां सर्वप्रथम हिन्दी पत्र का प्रकाशन एक रविवारीय परिशिष्ट के अंग के रूप में हुआ। यहां से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक पत्र 'आर्गोसी' के रविवारीय अंक में एक पृष्ठ हिन्दी का रहा करता था। जिसमें धार्मिक एवं सामाजिक समाचार ही प्रकाशित होते थे, पर पांच वर्षों तक अविरल प्रकाशित होने के बाद यह पृष्ठ बंद हो गया। अन्य देशों की भांति यहां भी आर्य समाज द्वारा 'आर्य ज्योति' का प्रकाशन होता है जिसमें आर्य समाज के सिद्धांतों तथा वैदिक धर्म के समाचारों को ही स्थान मिलता है। इसके अतिरिक्त सनातन धर्म सभा द्वारा 'अमर ज्योति' नाम का एक पत्र प्रकाशित होता है। पं. रामलाल का हिन्दी पत्रकारिता एवं हिन्दी शिक्षण से अधिक लगाव होने से वहां हिन्दी की ज्योति ज्योतित है। गुयाना का एकमात्र उत्कृष्ट पत्र 'ज्ञानदा' है। यह एक मासिक पत्र है जिसके संपादक श्री योगीराज शर्मा हैं। यह पूर्ण साहित्यिक पत्र है तथा इसका आवरण मुद्रित एवं शेष सामग्री साइक्लोस्टाइल पद्धति से छपती है। श्री शर्मा जी ने इसके अस्तित्त्व के लिए अहोरात्रि श्रम किया और गुयाना में हिन्दी पत्रकारिता को अक्षुण्ण रखा। इस प्रकार गुयाना में हिन्दी पत्रों की अस्मिता प्रेस की असुविधाओं के होते हुए भी सुरक्षित है।

त्रिनीडाड-टुबैगो में हिन्दी

कैरिबियन समुद्र में स्थित त्रिनीडाड-टुबैगो में जो वेस्ट इंडीज के नाम से भी जाना जाता है, भारतीयों की संख्या अधिक है। यहां भी अन्य देशों की भांति भारतीय मजदूर शर्तनामा कुली के रूप में लाए गए थे। हिन्दी का लेखन, पाठन,

वाचन अन्य देशों की भांति ही चल रहा है। यहां से सर्वप्रथम हिन्दी में 'कोहेनूर अखबार' निकला जो अब बंद हो गया है। इसमें धार्मिक सामग्री के अलावा कुछ स्थानीय समाचार भी प्रकाशित होते थे। यहां का सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'ज्योति' है। यह एक मासिक पत्र है तथा इसका सर्वप्रथम प्रकाशन मार्च, 1968 को हुआ था। इसके संस्थापक संपादक हैं प्रो. हरिशंकर आदेश। यह पत्र जीवन ज्योति प्रकाशन के अंतर्गत प्रकाशित होता है। पहले यह पत्र हिन्दी शिक्षा संघ द्वारा प्रकाशित होता था परंतु अब संघ के बंद हो जाने पर यह भारतीय विद्या संस्थान के मुखपत्र के रूप में प्रकाशित होता है। यह प्रत्येक मास की सात तारीख को प्रकाशित होता है। प्रो. आदेश ने इसे साहित्यिक बनाने का भरसक प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं। हिन्दी-अंग्रेजी मिश्रित इस पत्र में संगीत की तकनीकी शिक्षा के लिए भी लेख छपते हैं। नवोदित हिन्दी लेखकों को इससे काफी प्रोत्साहन मिलता है। त्रिनिडाड में हिन्दी प्रेस के अभाव में हिन्दी प्रकाशन को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस समय वहां स्व. पं. काशीप्रसाद मिश्र का एक ही प्रेस है जिसमें पर्याप्त टाइप न होने से मुद्रण में अप्रत्यासिशत संघर्ष उठाना पड़ता है। अत: ज्योति का प्रकाशन लीथो एवं आफसेट प्रणाली से होता है। फिर भी प्रो. आदेश वहां हिन्दी पत्रकारिता का दीप जलाए हुए हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के मध्य से ही पूज्य बापू का राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ था। वहां प्रवासी भारतीयों की संख्या अधिक थी। यहां से सर्वप्रथम 1903 में 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक का हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संपादक श्री मनसुखलाल नाजर थे। यह डरबन से 13 मील दूर फिनिक्स आश्रम से प्रकाशित होता था और श्री मदनजीत के प्रेस में मुद्रित होता था। गांधी जी की इस पर कड़ी कृपा थी। नाजर जी की मृत्यु के बाद गाँधी जी के अंग्रेज मित्र श्री हर्बर्ट किचन एवं उनके अनंतर श्री हेनरी एस. एल. पोलक इसके संपादक बने। अब यह पत्र बंद हो चुका है। इस पत्र के माध्यम से वहां के प्रवासी भारतीयों में नई चेतना का उदय हुआ था। इसके बाद 5 मई, 1922 को 'हिन्दी' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसके आद्य संपादक थे पं. भवानीदयाल सन्यासी। इससे भी हिन्दी को बढ़ावा मिला। इस प्रकार वहां आज तक हिन्दी की धारा प्रवाहमान है।

बर्मा में हिन्दी

बर्मा कभी भारत का ही अंग था किंतु अब यह एक स्वतंत्र राष्ट्र है। यहां भी प्रचुर मात्रा में प्रवासी भारतीय रहते हैं। यहां हिन्दी के विकास में पं. हरिवदन शर्मा एवं श्री एल. बी.' लाठिया का योगदान अद्वितीय है। यहां श्री लाठिया ने 'बर्मा समाचार' का सर्वप्रथम प्रकाशन कर हिन्दी पत्रकारिता की नींव रखी। इसके बाद 'प्राची कलश' मासिक पत्र भी कुछ वर्ष तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। सन् 1934 में 'प्राची कलश' हिन्दी दैनिक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके संस्थापक थे श्री अनंतराम मिश्र। फिर कुछ दिनों के बाद 'प्रवासी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ। जिसके संस्थापक, प्रकाशक एवं संपादक श्री 'यामचरण मिश्र ही हुए। सन् 1951 में श्री रामप्रसाद वर्मा ने 'नवजीवन' दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। किंतु कालांतर में दोनों पत्र बंद हो गये। कुछ समय तक 'जागृति' पत्र का भी प्रकाशन हुआ। इसके बाद 1953 में 'ब्रह्मभूमि' मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके प्रकाशक श्री ब्रह्मानंद एवं संपादक श्री रामप्रसाद वर्मा हैं। यह रंगून से अब तक नियमित प्रकाशित हो रहा है। सन् 1970 में 'आर्य युवक जागृति' पत्रिका का भी मासिक रूप में प्रकाशन हुआ किंतु कुछ काल के बाद इसका प्रकाशन रुक गया। फिर भी बर्मा में हिन्दी पत्रकारिता की ज्योति ब्रह्मभूमि के माध्यम से जल रही है।

हालैंड में हिन्दी

पिछले कुछ वर्षों से सूरीनाम से आए हुए लाखों प्रवासी भारतीयों ने वहां हिन्दी की दीपशिखा प्रज्ज्वलित कर अपने अस्तित्त्व को बनाए रखा है। यहां भारतीय संस्कृति की अनेक संस्थाएं हैं जिनके अंतर्गत हिन्दी शिक्षण एवं प्रकाशन होता है। 'लल्ला रुख' भारतवंशियों की प्रमुख संस्था है। इसी नाम से एक लघु पत्रिका का प्रकाशन होता है जिसमें सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक बातों की सूचनाएं ही छपती हैं। डॉ. जे.पी. कौलेश्वर सुकुल इस पत्र के माध्यम से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

इंग्लैण्ड में हिन्दी

इंग्लैण्ड ही विश्व में पहला राष्ट्र है जहां से सर्वप्रथम 1883 में कालाकांकर नरेश के संपादन में 'हिन्दोस्थान' पत्र का प्रकाशन हुआ। जिसने

भारतीय स्वतंत्रता में अभूतपूर्व योगदान दिया था। इसके बाद 'वैदिक पब्लिकेशन्स' का प्रकाशन हुआ। इसका मुद्रण आफसेट प्रणाली से होता था इसमें सामाजिक चेतना की ध्वनि अधिक थी। इसके बाद लंदन में हिन्दी प्रचार परिषद की स्थापना हुई और फिर उसी परिषद के मुखपत्र के रूप में सन् 1964 में एक हिन्दी त्रैमासिकी 'प्रवासिनी' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके संपादक हैं श्री धर्मेंद्र गौतम। इस पत्र के कई विशेषांक निकले जिसमें श्री गोपाल कृष्ण विशेषांक सर्वाधिक चर्चित रहा। हिन्दी एवं राष्ट्रीय चेतना का यह पत्र आज भी प्रकाशित हो रहा है।

कनाडा में हिन्दी

भारत की स्वतंत्रता के बाद कनाडा में प्रवासी भारतीयों की संख्या में अपार वृद्धि हुई, जिससे वहां हिन्दी का प्रसार स्वत: हो रहा है। इस समय टोरंटो से एक मासिक पत्र 'भारती' का प्रकाशन हो रहा है। फोटोस्टेट पद्धति से इस पत्र का मुद्रण होता है। तथा हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में सामग्री होती है। इसके अतिरिक्त श्री रघुवीर सिंह के संपादन में 'विश्व भारती' पाक्षिक पत्र का भी प्रकाशन होता है। कनाडा में 'विश्व भारती' राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति की संवाहिका के रूप में विख्यात है। अब टोरंटो से ही एक नया मासिक पत्र 'जीवन ज्योति' नई आशा, अतिशय उमंग एवं पवित्र लक्ष्य लेकर नवंबर, 1982 से प्रकाशित हो रहा है। इसके संपादक हैं प्रसिद्ध प्रवासी हिन्दी कवि संगीतज्ञ प्रो. हरिशंकर आदेश। इन्होंने ट्रिनिडाड में भी हिन्दी का अलख जगा रखा है। अत: 'जीवन ज्योति' से कनाडा में हिन्दी और भारतीय संस्कृति का गौरवमय प्रकाशन होगा, ऐसी आशा है।

रूस में हिन्दी

रूस में अन्य भारतेतर देशों की अपेक्षा हिन्दी का अध्ययन अध्यापन एवं प्रचार अधिक है। रूस ही ऐसा पहला देश है जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। रूस से हिन्दी के स्तरीय प्रकाशन हुए हैं तथा मास्को में एक हिन्दी प्रकाशन गृह भी स्थापित है। यहीं से सोवियत संघ नाम का एक हिन्दी मासिक पत्र प्रकाशित होता है। यह सचित्र पत्र है। तथा सोवियत संबंधों पर आधारित अनेक लेख इसमें प्रकाशित होते रहते हैं। यह पत्र हिन्दी के अतिरिक्त

संसार की अन्य 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। इसके प्रधान संपादक हैं श्री निकोलाई ग्रिवाचोव। मास्को से दूसरा हिन्दी पत्र है। 'सोवियत नारी'। यह एक मासिक पत्र है तथा इसकी प्रधान संपादिका हैं- व. ई. फेदोतोवा तथा हिन्दी संस्करण के संपादक हैं- श्री ई. पा. गोलुबेन। यह भी संसार की लगभग 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। इसमें सोवियत नारी जीवन का सचित्र चित्रण होता है।

चीन में हिन्दी

चीन संसार में सर्वाधिक आबादी वाला राष्ट्र है। यहां हिन्दी का प्रचार प्रसार तो नहीं किंतु चीन संबंधी जानकारी विभिन्न देशों को देने के लिए वहां से 'चीन सचित्र' नामक एक हिन्दी मासिक पत्र निकलता है। यह विश्व की 19 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है हिन्दी में इसके 326 अंक अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इसका मुद्रण एवं प्रकाशन बीजिंग से होता है।

जापान में हिन्दी

संसार में सर्वप्रथम सूर्योदय के दर्शन करने वाला ज्वालामुखियों का देश जापान अपनी वैज्ञानिक कुशलता के लिए जग प्रसिद्ध है। यहां हिन्दी का पठन पाठन अन्य देशों की ही भांति होता है। जापान एवं भारत का सांस्कृतिक एंव साहित्यिक संबंध बहुत प्राचीन है। बौद्ध धर्माबलंबी होने के कारण जापानियों का भारत से भावात्मक लगाव है इसीलिए यहां के लोग हिन्दी सीखते हैं। सन् 1964 में यहां से एक 'अंक' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। जिसके अब तक 21 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त जापान भारत मित्रता संघ का मासिक पत्र 'सर्वोदय' भी प्रकाशित होता है। वस्तुत: यह धार्मिक पत्र है, किंतु इसमें हिन्दी संबंधी सामग्री रहती है। यथार्थ रूप में ये सभी पत्र जापानी से अनूदित हो कर प्रकाशित होते हैं। जापान का प्रथम हिन्दी पत्र 'ज्वालामुखी' है जिसका प्रथम अंक सितंबर, 1980 में टोक्यो से प्रकाशित हुआ था। इसके संपादक हैं श्री योशिअकि सुजुकि। इसके अब तक दो अंक ही प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशन के बारे में संपादक का प्रथम अंक में मत है कि हिन्दी के माध्यम से जापानी साहित्य का परिचय, जापानी साहित्य का अनुवाद, जापानी साहित्य एवं हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, जापानी संस्कृति का परिचय आदि करने से भारत के लोगों को भी

इसका लाभ मिलेगा। पत्रिका का नामकरण फुजि पर्वत की भव्यता को लेकर किया गया है। ज्वालामुखी की तरह सदैव हम भी क्रियाशील रहें इसीलिए इस शीर्षक की सार्थकता है।

इस प्रकार भारत से बाहर विश्व के देशों में हिन्दी पत्र पत्रिकएं अपने-अपने उपलब्ध साधनों के आधार पर प्रकाशित हो रहीं हैं, जिन्हें देखकर एक 'विश्व हिन्दी' की सहज ही कल्पना हो जाती है।

7

नागरी लिपि

नागरी लिपि से ही देवनागरी, नंदिनागरी आदि लिपियों का विकास हुआ है। इसका पहले प्राकृत और संस्कृत भाषा को लिखने में उपयोग किया जाता था। कई बार 'नागरी लिपि' का अर्थ 'देवनागरी लिपि' भी लगाया जाता है।

नागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। कुछ अनुसन्धानों से पता चला कि नागरी लिपि का विकास प्राचीन भारत में पहली से चौथी शताब्दी में गुजरात में हुआ था। सातवीं शताब्दी में यह लिपि आमतौर पर उपयोग की जाती थी और कई शताब्दियों के पश्चात इसके स्थान पर देवनागरी और नंदिनागरी का उपयोग होने लगा। प्राचीन नागरी या नागर लिपि से ही इसका विकास हुआ है। यह वैज्ञानिक तथा पूर्ण लिपि है। यों भाषा-विज्ञान की ध्वनि-विषयक सूक्ष्मताओं की दृष्टि से इसे बहुत वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। इसीलिए सुभाष बाबू तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी आदि बहुत-से विद्वान् इसे छोड़कर रोमन लिपि को अपना लेने के पक्ष में रहे हैं। पूरे हिन्दी प्रदेश की यह लिपि है। मराठी भाषा में भी कुछ परिवर्धन-परिवर्तन के साथ यह प्रयुक्त होती है। नेपाली, संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के लिए भी यही लिपि प्रयुक्त होती है।

नागरी लिपि पूर्ण वैज्ञानिक नहीं है। हिंदी की दृष्टि से उसकी प्रधान कमियां हैं–

इसमें कुछ अक्षर या लिपिचिन्ह आज के उच्चारण की दृष्टि से व्यर्थ हैं 'ऋ' का उच्चारण 'रि' है, 'ण' का 'ड़ँ' है और 'प' का 'श'। अतएव ऋ, ण और ण् की आवश्यकता नहीं है।

ख में र व के भ्रम की सम्भावना है, । अत: इसके लिए दूसरे चिन्ह की आवश्यकता है।

संयुक्त व्यंजनों के रूपों में बड़ी गड़बड़ी है। जैसे 'प्रेम' में लगता है कि ँआधा है और 'प' पूरा है पर यथार्थत: बात इसके उल्टी है। क्र, ग्र, ध्र, ट्र, ड्र, ब्र तथा म्र आदि में यही बात है। इस पद्धति में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

इ की मात्रा 'ि' बड़ी अवैज्ञानिक है। इसे जिस स्थान पर लगाया जाना चाहिए, लगाना संभव नहीं है। उदाहरणार्थ चन्द्रिका' शब्द लें। इसे तोड़कर इस प्रकार लिख सकते हैं-च्ँन्द्र्िक्आ। यहां स्पष्ट है कि मात्रा के पहले लगी है पर यथार्थत: इसे र के बाद लगना चाहिए। रोमन में इसे शुद्ध लिखा जाता है-CANDRIKAA। इस अशुद्धि के निवारण के लिए कोई रास्ता निकालना चाहिए।

रकार के र, , ध्, ँ4 रूप हैं। इनमें तीन को निकाल कर एक रूप में प्रचलन की आवश्यकता है।

क्ष, त्रा, ज्ञ आदि स्वतन्त्र लिपि-चिन्हों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये स्वतन्त्र ध्वनियां न होकर संयुक्त व्यंजन मात्र हैं।

न्ह, म्ह, तथ ल्ह (ये संयुक्त व्यंजन न होकर स्वतन्त्र ध्वनियां हैं) आदि कुछ नवीन ध्वनियां भी हिन्दी में आ गई हैं। अतएव इनके लिए स्वतन्त्र चिन्ह आवश्यक हैं।

उ, ऊ, ए, ऐ की मात्राएं नीचे या ऊपर लगती हैं, पर यथार्थत: इन्हें व्यंजन के आगे लगना चाहिए। इसके लिए भी कोई रास्ता निकालना चाहिए।

कुछ अक्षरों के दो रूप प्रचलित हैं-ल लय अ अय रा ण। इनमें एक को स्वीकार करने तथा दूसरे को निकाल देने की आवश्यकता है।

इन कमियों को दूर करने के लिए सुधार के प्रस्ताव बहुत दिनों से आ रहे हैं। विद्वानों द्वारा वैयक्तिक रूप से तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि संस्थाओं द्वार किये गये प्रयासों के फलस्वरूप कुछ उपयोगी एवं व्यवहार्य सुधार सामने आये, पर इनमें किसी को भी लोगों ने नहीं अपनाया। उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकार ने भी कुछ सुधार किये हैं, किन्तु इन सुधारों का भी स्वागत नहीं हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि सौन्दर्य, वैज्ञानिकता तथा सरलता इन तीनों की दृष्टि में रखकर इस प्रश्न पर फिर से विचार किया जाय और नागरी लिपि हर दृष्टि से पूर्ण बनानेवाले सुधारों को स्वीकार किया जाय।

आधुनिक नागरी लिपि तथा उसके अंकों का ब्राह्मी से (उसकी उत्तरी शैली, गुप्त लिपि तथा कुटिल लिपि में होते) कैसे विकास हुआ है।

देवनागरी लिपि

'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके पीछा छुड़ाते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खंड का प्रमाण देते हैं। नागर खंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'।

गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) को ही 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से लिए गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी अक्षर भी है, मुर्जरवंशी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) संवत् 456 (ई0 स0 706) का ताम्रपत्र है। यह ताम्रशासन अधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्ती मम श्री जयभटस्य) उतरीय भारत की लिपि में है जो नागरी से मिलती जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात में जितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुंड्रवर्धन आदि से लिए हुए ब्राह्मणों को ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उतरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृवत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह 'ब्राह्मी' ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय

तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललितविस्तार' में जो उन 64 लिपियों के नाम गिनाए गए हैं जो बुद्ध को सिखाई गईं, उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मी लिपि' नाम है। 'ललितविस्तर' का चीनी भाषा में अनुवाद ई. स. 308 में हुआ था। जैनों के 'पन्नवणा' सूत्र और 'समवायांग सूत्र' में 18 लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगव्रतीसूत्र का आरंभ 'नमो बंभीए लिबिए' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है। नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है जो जैन विद्वानों के अनुसार 453 ई. के पहले का बना है। 'नित्यासोडशिकार्णव' के भाष्य में भास्करानंद 'नागर लिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि' में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयवदुद्भवी लेखो वस्य तत। नागर लिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैब लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि अशोकलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है जिसमें फेरफार होते होते आजकल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने, जिन्हें साढे सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है जो सिन्ध नदी के पार के प्रदेशों (गाँधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक तो नेपाल की तराई में 'पिप्रवा' नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अतंर इतना ही है कि इनमें दीर्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर बड़ली नामक ग्राम में मिला है महावीर संवत् 84 (= ई. स. पूर्व 443) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें 'वीराब' में जो दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिलकुल निराली और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यो या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के 'प्रज्ञापनासूत्र' में लिखा है कि 'अर्धमागधी' भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। अर्धमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अत:

ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमशः उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में लगती है। किस प्रकार आशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नक्शे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है।

मि. शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा'।

देवनागरी लिपि को आरंभिक समय में ब्राह्मी लिपि के रूप में जाना जाता था। देवनागरी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 453 ई. में जैन ग्रंथों में उल्लेखित है, देवनागरी लिपि का विकास उत्तर भारतीय ऐतिहासिक गुप्त लिपि से माना गया है। परन्तु इसकी व्युत्पत्ति का स्रोत ब्राह्मी वर्णाक्षर है, जिसने सभी आधुनिक भारतीय लिपियों तथा भाषाओं के विकास में सहयोग किया है। देवनागरी लिपि को सर्वाधिक पूर्णतर कहा जा सका है। भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण एवं शब्दावली के अनुसार इसे अक्षरात्मक कहा जाता है। इसकी पूर्णता इससे ज्ञात होती है कि यह लिखित एवं उच्चारित दोनों रूपों में एक समान है, इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए उपयुक्त संकेतों की व्यवस्था है।

देवनागरी एक लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ तथा कुछ विदेशी भाषाएँ लिखीं जाती हैं। संस्कृत, पालि, हिन्दी, मराठी, कोंकणी, सिन्धी, कश्मीरी, नेपाली, गढ़वाली, बोडो, अंगिका, मगही, भोजपुरी, मैथिली, संथाली आदि भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं। इसे नागरी लिपि भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, विष्णुपुरिया मणिपुरी, रोमन और उर्दू भाषाएं भी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

इसमें कुल 52 अक्षर हैं, जिसमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। अक्षरों की क्रम व्यवस्था, विन्यास भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक्य-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं। एक मत के अनुसार देवनगर काशी में प्रचलन के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा।

भारत तथा एशिया की अनेक लिपियों के संकेत देवनागरी से अलग हैं, पर उच्चारण व वर्ण-क्रम आदि देवनागरी के ही समान हैं–क्योंकि वे सभी ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं। इसलिए इन लिपियों को परस्पर आसानी से लिप्यन्तरित किया जा सकता है। देवनागरी लेखन की दृष्टि से सरल, सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर और वाचन की दृष्टि से सुपाठ्य है।

देवनागरी लिपि

ऐतिहासिक सर्वेक्षण

देवनागरी भारत की सबसे प्राचीन लिपि है। राजस्थान से लेकर बिहार और हिमालय के दामन में बसे जिलों से लेकर मध्य प्रदेश की निचली सीमा तक इसका प्रयोग किया जाता है। इस विशाल अंचल की साहित्यिक भाषा हिन्दी के

साथ-साथ उसकी अनेक बोलियां भी देवनागरी में ही लिखी जाती हैं। बाळबोध के नाम से मराठी भाषा के लिए और गुजरात के काफी बड़े इलाके में भी देवनागरी का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत शास्त्रों की लिपि भी देवनागरी ही है।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि देवनागरी प्राचीन ब्राह्मी की कोख से जन्मी है और ब्राह्मी लिपि ही भारत भर में व्याप्त भाषाओं के लिए नि:संकोच रूप से व्यवहृत राष्ट्रीय लिपि थी। ब्राह्मी के आविष्कर्ता वस्तुत: विद्वान ब्राह्मण थे। इनका दावा था कि ब्राह्मी का जन्म वाणी और साहित्य के आदि-स्रोत ब्रह्मा से हुआ है। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्राह्मी के सिरजनहारों ने इसे मूल रूप से संस्कृत लेखन के लिए रचा था और आगे चलकर यह प्राकृतों के लिए भी प्रयुक्त हुई. ब्राह्मी की पूर्ण विकसित लिपि-प्रणाली से मार्के की भाषा- वैज्ञानिक और स्वनिम-वैज्ञानिक परिशुद्धता परिलक्षित होती है। इसकी बदौलत पाणिनि और यास्क जैसे आचार्यों के काल से भी पहले, प्रारम्भिक भारतीय सभी प्राचीन भाषा-सभ्य जातियों को पीछे छोड़ चुके थे। दरअसल, दर्शन एवं गणित शास्त्र के शून्य और बिन्दु के अलावा भारतीय खोपड़ी की कोई और सच्ची अनुसन्धान उपलब्धि है तो वह है ब्राह्मी। स्वर-व्यंजनों के लिए सुविन्यस्त चिह्नों के माध्यम से ककहरा की सारी मूलभूत ध्वनियों के सुस्पष्ट विभाजन का कहना ही क्या है। इकहरे स्वरों से श्रीगणेश के बाद संयुक्त स्वर, फिर कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य और ओष्ठ्य-ये सभी स्पर्श व्यंजनों के पाँच वर्गों में विभाजित हैं। भारत में इन्हें हम क्रमश: क-वर्ग, च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग और प-वर्ग कहते हैं। इन पच्चीस व्यंजनों के अन्त में चार अर्ध-स्वर, तीन ऊष्म व्यंजनों का समूह और एक महाप्राण है। यदि इन व्यंजनों में हम स्वर-चिह्नों के ह्रस्व-दीर्घ पाठ और उनके स्वाभाविक तथा स्वनिम रूपों की कुल संख्या जोड़ दें तो हमें सारी की सारी भारतीय लिपियों में कोई अड़तालीस लिपि-चिह्न प्राप्त होते हैं। यही देवनागरी में भी विद्यमान हैं।

हमें याद रखना चाहिए कि भारत की सबसे प्राचीन लिपि होने के नाते सम्राट अशोक के काल में (ईसा-पूर्व तीसरी सदी) ब्राह्मी ने सच्ची राष्ट्रीय लिपि की भूमिका निभाई। इसे पाटलीपुत्र की केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद का अनुमोदन प्राप्त था। हिमालय स्थित कलसी से लेकर मैसूर के सिद्धपुर और सौराष्ट्र के गिरनार से लेकर ओडीशा के धौली तथा जउगढ़ तक शिलाओं और स्तम्भों पर उत्कीर्ण लेखों में ब्राह्मी का ही उपयोग किया गया। भारतीय लिपियों के बारे में एक अन्य

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि न केवल देवनागरी, बल्कि देश के उत्तर से लेकर दक्षिण तक की भाषाएं और बोलियां जिन लिपियों में लिखी जाती हैं, वे सब की सब स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया में मातृ-लिपि ब्राह्मी से ही व्युत्पन्न हुई हैं। स्वाभाविक विकास की यही प्रक्रिया युगों-युगों से भारतीय संस्कृति की नियामक रही है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक भारतीय संस्कृति कितनी एक है और कितनी अनेक --इस विषय पर बहस की बहुत गुंजाइश है, लेकिन भारतीय भाषाओं की सारभूत एकता उनकी लिपियों में पूरी तरह परिलक्षित होती है। हिन्दी, काश्मीरी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला, बिहारी, मैथिली और असमिया के बारे में यह समान रूप से सच है। यहाँ तक कि चार अलग-अलग दक्षिण भारतीय भाषाएं तक ब्राह्मी से व्युत्पन्न लिपियों में ही साकार होती हैं। इनमें संस्कृत वर्णों के तत्त्व भरे पड़े हैं। हाँ, तमिल में संस्कृत तत्त्व अपेक्षाकृत कम जरूर हैं, लेकिन इसकी धार्मिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि संस्कृत परम्परा की जड़ों पर ही टिकी है।

ईसा-पूर्व दूसरी सदी में सम्राट अशोक के बाद ब्राह्मी लिपि शुंग ब्राह्मी के रूप में विकास के दौर से गुजरी तो प्रथम शताब्दी में कुषाण ब्राह्मी के रूप में और चौथी-पाँचवीं शताब्दियों में उत्तर भारत में गुप्त लिपि के रूप में. गुप्त साम्राज्य बंगाल से काश्मीर और नेपाल से दक्षिण भारत तक फैल गया था। इसलिए ब्राह्मी का विकसित रूप -'गुप्त लिपि' भी न केवल उत्तर भारत में, बल्कि दक्खिन तक मंजू-शीर्ष युक्त रूप में फैल गया। सुदूर दक्षिण में इसी ने लम्बी-खड़ी पूँछ वाली पल्लव लिपि का रूप ग्रहण कर लिया। इस गुप्त लिपि में छठी-सातवीं सदी में और विकास हुआ। इसका विशेष कारण था गुप्त लिपि का प्रवाही रूप, इसे सिद्धमातृका कहा गया। धार्मिक ग्रन्थों के लेखन के लिए यह भारत से लेकर मध्य एशिया और जापान तक भी सार्वदेशिक लिपि बन गई। सिद्धमातृका में सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि जापान के होरिउजि मन्दिर में सुरक्षित है। यह छठी सदी में ताड़पत्र पर प्रवाही हस्तलेख में लिखी गई है। इस नख-शीर्ष युक्त लिपि को 'कुटिल लिपि' भी कहा गया। लेकिन, अब यह नाम खारिज कर दिया गया है। प्रतीत होता है, इसका सही नाम 'सिद्धम् लिपि' ही था- इस लिपि में वर्ण 'ओम् नमः सिद्धम' से जो प्रारम्भ होते थे। इसका लोकप्रिय उच्चारण बन गया 'ओना मासि धर्म'। बोधगया में उत्कीर्ण महानामा (588 ईस्वी) और उसके तनिक बाद लखमण्डल की प्रशस्ति में शिरोरेखाएं, तिरछी

घसीट और छोटे फणाकार कोण या न्यून कोण दिखाई देते हैं। इन्हें नख-शीर्ष भी कहते हैं। नागरी लिपि की यही अनूठी विशेषताएं थीं।

सातवीं सदी में नागरी का सबसे प्रारम्भिक रूप स्पष्टत: उभर आया था और आठवीं सदी में तो यह पूर्ण रूप से विकसित हो गई थी। हस्तलिखित राजादेशों के लिए इसका प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। गुजरात नरेश जयभट्ट का लेख 'स्वहस्तो मम् जयभट्टस्य' इसका प्रमाण है। इसमें स्वहस्तो का अर्थ ही हस्ताक्षर है। प्राय: उद्धृत किया जाने वाला सामांगड शिला अभिलेख प्रथम राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग (754 ईस्वी) के काल का है। राष्ट्रकूट मूलत: कर्णाटक वासी थे और इनकी मातृभाषा थी कन्नड़। परन्तु, बस ये खानदेश-विदर्भ में गए थे। इसके बाद आते हैं गोविन्दराज द्वितीय (780 ईस्वी) का धुलिया शिला अभिलेख और अन्य राष्ट्रकूट राजाओं के शिला अभिलेख। उदाहरण के लिए गोविन्द तृतीय (794 ईस्वी) का पैठण शिला अभिलेख और ध्रुवराज (835 ईस्वी) का बड़ौदा शिला अभिलेख। इन्हीं के रजवाड़े, कोंकण के शिलाहार शासकों ने भी कान्हेरी के शिला अभिलेखों में नागरी वर्णों का ही प्रयोग किया। ये सभी 843 से 851 ईस्वी के हैं।

अब जाकर सामान्यत: यह स्वीकार कर लिया गया है कि आठवीं से दसवीं सदी के बीच नागरी परिपक्व लिपि बन चुकी थी और गुजरात, राजस्थान तथा उत्तरी दक्खिन में तो ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ तक इस लिपि में अनेक शिला अभिलेख और ताड़पत्र पोथियां लिखी जा चुकी थीं। हैहय, परमार, चन्देल, गहड़वाल, चाहमान और कच्छपघट जैसे मुख्य और उनके अधीनस्थ शासकों ने बहुतेरे शिला अभिलेखों के लिए देवनागरी को अपना लिया था। एक और महत्वपूर्ण मुद्दा-यह लिपि पहले-पहल आठवीं सदी में दक्खिन में विकसित हुई और उत्तर भारत में कोई दो सौ बरस बाद दसवीं सदी में। पश्चिमी चालुक्यों, यादवों और विजयनगर के तीन राजवंशों के शिला अभिलेखों में इसका व्यापक प्रयोग हुआ है तथा दक्षिण भारत में संस्कृत पाण्डुलिपियां तैयार करने के लिए इसका प्रयोग आज भी किया जाता है। इस लिपि के उत्तर भारतीय रूप के लिए देवनागरी नाम प्रचलित है तो दक्खिन में इसे नन्दीनागरी के रूप में जाना जाता है।

महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि इस लिपि को देवनागरी नाम मिला कैसे? कभी कहा जाता था कि यह देवताओं की नागरी है या ब्राह्मणों की या फिर राजनागरी। अब कुछ नए साक्ष्य सामने आ चुके हैं, जिनकी सहायता से इन दोनों

नामों–उत्तर की देवनागरी और दक्षिण की नन्दीनागरी–को समझा जा सकता है। कुछ वर्ष पहले शोध से सामने आए 'पादताड़ितकम' नामक नाटक में बताया गया है कि पाटलिपुत्र (पटना) 'नगर' अर्थात् महानगर के रूप में प्रसिद्ध हो गया था। गुप्त काल के शिला अभिलेखों से पता चलता है कि देव वास्तव में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य का असली नाम था। उत्तर भारत में इस नगर से जुड़ी कोई भी शैली नागर या नागरी के रूप में प्रचलित थी, जैसे मन्दिर स्थापत्य की नागर शैली, नागर रेखा या शिखर की वक्र रेखाएं। बस, इसी प्रकार नागरी लिपि या उत्तर देशीय लिपि। पाटलिपुत्र का प्रतिरूप था नन्दीनगर–दक्षिण की जानी–मानी नगरी (आधुनिक नान्देड़)। पहले यह वाकाटक साम्राज्य का हिस्सा रहा और बाद में राष्ट्रकूटों का इस प्रकार ये दोनों नाम स्पष्टत: उस समय प्रचलित लिपि के उत्तरी और दक्षिणी रूप के द्योतक हैं।

गुप्त लिपि के दो रूप विकसित हुए– पूरबी और पच्छिमी। एक से पूरब में बंगला लिपि और पच्छिम में पंजाब–काश्मीर में शारदा लिपि का उदय हुआ। दक्षिण में तेलुगू, कन्नड़, तमिल, मळयाळम और ग्रन्थ लिपियां निश्चित रूप से विकास की उसी प्रक्रिया पर आधारित हैं, जिससे देवनागरी का उद्भव हुआ। कोंकण प्रदेश के शिलाहार नरेश, मान्यखेट (मलखेड़) के राष्ट्रकूट, देवगिरि के यादव और विजय नगर के शासक नन्दीनागरी लिपि का प्रयोग विन्ध्य के दक्षिण में कर रहे थे। पाण्ड्य प्रदेश के राजा वरगुण के पलियम ताम्रपत्र के एक ओर तमिल और दूसरी ओर नागरी में संस्कृत लेख उत्कीर्ण हैं। श्रीलंका के पराक्रमबाहु और विजयबाहु (बारहवीं सदी) के सिक्कों के साथ–साथ केरल के शासकों के सिक्कों पर 'वीरकेरलस्य' और ग्यारहवीं सदी के प्रतापी चोल राजाओं राजराज तथा राजेन्द्र के सिक्कों पर नागरी लिपि में शब्द अंकित हैं। उधर मेवाड़ के गुहिल शासकों, साम्भर–अजमेर के चौहान शासकों, कन्नौज के गहड़वाल शासकों, काठियावाड़–गुजरात के सोलंकी, आबू के परमार, जेजक भुक्ति के चन्देल और त्रिपुरी के कलचुरी शासकों ने उत्तर की देवनागरी को सार्वदेशिक रूप से अपना लिया।

अरबी–संस्कृत के बहुविद् अलबेरुनी कहते हैं कि काश्मीर और वाराणसी में सिद्धमातृका का ककहरा चलता था, जिसे मालवा में नागरी कहते थे। अर्थात्, अपने दो रूपों– शारदा और नागरी में यह देवनागरी ही थी, जिसका सामान्य नाम सिद्धमातृका था। महमूद गजनी के सिक्कों पर अरबी कलमा का संस्कृत अनुवाद 'अव्यक्तमेकम् मुहम्मद अवतार नृपति महमूद' स्पष्ट देवनागरी वर्णों में अंकित है। देवनागरी का विकसित रूप मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन और शेरशाह जैसे मुसलमान

बादशाहों के सिक्कों पर भी जारी रहा। फिर अकबर ने तुलसीदास कालीन अपने रामसीय सिक्कों पर रामसीय नाम स्पष्ट देवनागरी में ही अंकित करवाए। ब्राह्मी का निश्चित राष्ट्रीय चरित्र देवनागरी में अवतरित हुआ, जो हिमालय और नर्मदा के पूरे मध्य देश में विविध भारतीय भाषाओं और बोलियों के लेखन की मुख्य साधन है, और है भारतीय सभ्यता के इस केन्द्र और पवित्र भू-भाग में सुधी तथा सामान्य जनों के लिए सम्प्रेषण का माध्यम। इस प्रकार दुनिया भर की लिपियों की सिरमौर, सर्वश्रेष्ठ लिपि देवनागरी का इतिहास ब्राह्मी-संस्कृत से जुड़ा है, जो भारतीय वांग्मय के विरासत की मेरुदण्ड है।

उद्‌भव और विकास

लगभग ई. 350 के बाद ब्राह्मी की दो शाखाएँ लेखन शैली के अनुसार मानी गई हैं। विंध्य से उत्तर की शैली उत्तरी तथा दक्षिण की (बहुधा) दक्षिणी शैली।

1. उत्तरी शैली के प्रथम रूप का नाम 'गुप्तलिपि' है। गुप्तवंशीय राजाओं के लेखों में इसका प्रचार था। इसका काल ईस्वीं चौथी पाँचवीं शती है।
2. कुटिल लिपि का विकास 'गुप्तलिपि' से हुआ और छठी से नवीं शती तक इसका प्रचलन मिलता है। आकृतिगत कुटिलता के कारण यह नामकरण किया गया। इसी लिपि से नागरी का विकास नवीं शती के अंतिम चरण के आसपास माना जाता है।

'राष्ट्रकूट' राजा 'दंतदुर्ग' के एक ताम्रपत्र के आधार पर दक्षिण में 'नागरी' का प्रचलन संवत् 675 (754 ई.) में था। वहाँ इसे 'नंदिनागरी' कहते थे। राजवंशों के लेखों के आधार पर दक्षिण में 16वीं शती के बाद तक इसका अस्तित्त्व मिलता है। देवनागरी (या नागरी) से ही 'कैथी', 'महाजनी', 'राजस्थानी', और 'गुजराती' आदि लिपियों का विकास हुआ। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शती के आसपास 'बँगला' का आविर्भाव हुआ। 11वीं शताब्दी के बाद की 'नेपाली' तथा वर्तमान 'बँगला', 'मैथिली', एवं 'उड़िया', लिपियाँ इसी से विकसित हुई। भारतवर्ष के उत्तर पश्चिमी भागों में (जिसे सामान्यतः आज कश्मीर और पंजाब कहते हैं) ई. 8वीं शती तक 'कुटिललिपि' प्रचलित थी। कालांतर में ई. 10वीं शताब्दी के आसपास 'कुटिल लिपि' से ही 'शारद लिपि' का विकास हुआ। वर्तमान कश्मीरी, टाकरी (और गुरुमुखी के अनेक वर्णसंकेत) उसी लिपि के परवर्ती विकास हैं।

दक्षिणी शैली की लिपियाँ प्राचीन ब्राह्मी लिपि के उस परिवर्तित रूप से निकली हैं जो क्षत्रप और आंध्रवंशी राजाओं के समय के लेखों में, तथा उनसे कुछ पीछे के दक्षिण की नासिक, कार्ली आदि गुफाओं के लेखों में पाया जाता है। (भारतीय प्राचीन लिपिमाला)।

इस प्रकार निम्नलिखित बातें सामने आती हैं–

1. मूल रूप में 'देवनागरी' का आदिस्त्रोत ब्राह्मी लिपि है।
2. यह ब्राह्मी की उत्तरी शैलीवाली धारा की एक शाखा है।
3. गुप्त लिपि के उद्‌भव के पूर्व भी अशोक ब्राह्मी में थोड़ी-बहुत अनेक छोटी-मोटी भिन्नताएँ कलिंग शैली, हाथीगुंफा शैली, शुंगशैली आदि के रूप में मिलती हैं।
4. गुप्तलिपि की भी पश्चिमी और पूर्वी शैली में स्वरूप अंतर है। पूर्वी शैली के अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा दिखाई पड़ने लगती है। इसे सिद्धमात्रिका कहा गया है।
5. उत्तरी शाखा में गुप्तलिपि के अंनतर कुटिल लिपि आती है। मंदसोर मधुवन, जोधपुर आदि के 'कुटिललिपि' कालीन अक्षर 'देवनागरी' से काफी मिलते-जुलते हैं।
6. कुटिल लिपि से ही 'देवनागरी' से काफी मिलते जुलते हैं।
7. 'देवनागरी' के आद्यरूपों का निरंतर थोड़ा बहुत रूपांतर होता गया जिसके फलस्वरूप आज का रूप सामने आया।
8. कुछ स्वरध्वनियों के लिए तथा कुछ विदेशी व्यंजनध्वनियों के लिए 'देवनागरी' में सुधार अपेक्षित है।

मध्यकाल में देवनागरी

देवनागरी लिपि मुस्लिम शासन के दौरान भी प्रयुक्त होती रही है। भारत की प्रचलित अति प्राचीन लिपि देवनागरी ही रही है। विभिन्न मूर्ति-अभिलेखों, शिखा-लेखों, ताम्रपत्रों आदि में भी देवनागरी लिपि के सहस्राधिक अभिलेख प्राप्य हैं, जिनका काल खंड सन 1008 ई. के आसपास है। इसके पूर्व सारनाथ में स्थित अशोक स्तम्भ के धर्मचक्र के निम्न भाग देवनागरी लिपि में भारत का राष्ट्रीय वचन 'सत्यमेव जयते' उत्कीर्ण है। इस स्तम्भ का निर्माण सम्राट अशोक ने लगभग 250 ई. पूर्व में कराया था। मुसलमानों के भारत आगमन के पूर्व से,

भारत की देशभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी या उसका रूपान्तरित स्वरूप था, जिसके द्वारा सभी कार्य सम्पादित किए जाते थे।

मुसलमानों के राजत्व काल के प्रारम्भ (सन् 1200 ई.) से सम्राट अकबर के राजत्व काल (1556 ई.-1605ई.) के मध्य तक राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रचलन था। भारतवासियों की फारसी भाषा से अनभिज्ञता के बावजूद उक्त काल में, दीवानी और फौजदारी कचहरियों में फारसी भाषा और उसकी लिपि का ही व्यवहार था। यह मुस्लिम शासकों की मातृभाषा थी।

भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात कालान्तर में संस्कृत का गौरवपूर्ण स्थान फारसी को प्राप्त हो गया। देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भारतीय शिष्टों की शिष्ट भाषा और धर्मभाषा के रूप में तब कुंठित हो गई। किन्तु मुस्लिम शासक देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सके। महमूद गजनवी ने अपने राज्य के सिक्कों पर देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा को स्थान दिया था।

औरंगजेब के शासन काल (1658 ई.- 1707 ई.) में अदालती भाषा में परिवर्तन नहीं हुआ, राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि ही प्रचलित रही। फारसी किबाले, पट्टे रेहन्नामे आदि का हिन्दी अनुवाद अनिवार्य ही रहा। औरंगजेब राजत्व काल, औरंगजेब परवर्ती मुसलमानी राजत्व काल (1707 ई. से प्रारंभ) एवं ब्रिटिश राज्यारम्भ काल (23 जून 1757 ई. से प्रारंभ) में यह अनिवार्यता सुरक्षित रही। औरंगजेब परवर्ती काल में पूर्वकालीन हिन्दी नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के उत्तरार्ध में उक्त हिन्दी अनुवाद की प्रथा का उन्मूलन अदालत के अमलों की स्वार्थ-सिद्धि के कारण हो गया और ब्रिटिश शासकों ने इस ओर ध्यान दिया। फारसी किबाले, पट्टे, रेहन्नामे आदि के हिन्दी अनुवाद का उन्मूलन किसी राजाज्ञा के द्वारा नहीं, सरकार की उदासीनता और कचहरी के कर्मचारियों के फारसी मोह के कारण हुआ। इस मोह में उनका स्वार्थ संचित था। सामान्य जनता फारसी भाषा से अपरिचित थी। बहुसंख्यक मुकदमेबाज मुवक्किल भी फारसी से अनभिज्ञ ही थे। फारसी भाषा के द्वारा ही कचहरी के कर्मचारीगण अपना उल्लू सीधा करते थे।

शेरशाह सूरी ने अपनी राजमुद्राओं पर देवनागरी लिपि को समुचित स्थान दिया था। शुद्धता के लिए उसके फारसी के फरमान फारसी और देवनागरी लिपियों में समान रूप से लिखे जाते थे। देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी परिपत्र

सम्राट अकबर (शासन काल 1556 ई.- 1605ई.) के दरबार से निर्गत-प्रचारित किये जाते थे, जिनके माध्यम से देश के अधिकारियों, न्यायाधीशों, गुप्तचरों, व्यापारियों, सैनिकों और प्रजाजनों को विभिन्न प्रकार के आदेश-अनुदेश प्रदान किए जाते थे। इस प्रकार के चौदह पत्र राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में सुरक्षित हैं।

औरंगजेब परवर्ती मुगल सम्राटों के राज्यकार्य से सम्बद्ध देवनागरी लिपि में हस्तलिखित बहुसंख्यक प्रलेख उक्त अभिलेखागार में दृष्टव्य हैं, जिनके विषय तत्कालीन व्यवस्था-विधि, नीति, पुरस्कार, दंड, प्रशंसा-पत्र, जागीर, उपाधि, सहायता, दान, क्षमा, कारावास, गुरुगोविंद सिंह, कार्यभार ग्रहण, अनुदान, सम्राट की यात्रा, सम्राट औरंगजेब की मृत्यु सूचना, युद्ध सेना-प्रयाण, पदाधिकारियों को सम्बोधित आदेश-अनुदेश, पदाधिकारियों के स्थानान्तरण-पदस्थानपन आदि हैं।

मुगल बादशाह हिन्दी के विरोधी नहीं, प्रेमी थे। अकबर (शासन काल 1556 ई.- 1605 ई.) जहांगीर (शासन काल 1605 ई.- 1627 ई.), शाहजहां (शासन काल 1627 ई.-1658 ई.) आदि अनेक मुगल बादशाह हिन्दी के अच्छे कवि थे।

मुगल राजकुमारों को हिन्दी की भी शिक्षा दी जाती थी। शाहजहां ने स्वयं दाराशिकोह और शुजा को संकट के क्षणों में हिंदी भाषा और हिन्दी अक्षरों में पत्र लिखा था, जो औरंगजेब के कारण उन तक नहीं पहुंच सका। आलमगीरी शासन में भी हिन्दी को महत्व प्राप्त था। औरंगजेब ने शासन और राज्य-प्रबंध की दृष्टि से हिन्दी-शिक्षा की ओर ध्यान दिया और उसका सुपुत्र आजमशाह हिन्दी का श्रेष्ठ कवि था। मोजमशाह शाहआलम बहादुर शाह जफर (शासन काल 1707 ई.-1712 ई.) का देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी काव्य प्रसिद्ध है। मुगल बादशाहों और मुगल दरबार का हिन्दी कविताओं की प्रथम मुद्रित झांकी 'राग सागरोद्भव संगीत रागकल्पद्रुम' (1842-43ई.), शिवसिंह सरोज आदि में सुरक्षित है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में देवनागरी

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में एक तरफ अंग्रेजों के आधिपत्य के कारण अंग्रेजी के प्रसार-प्रचार का सुव्यवस्थित अभियान चलाया जा रहा था तो दूसरी तरफ राजकीय कामकाज में और कचहरी में उर्दू समादृत थी। धीरे-धीरे

उर्दू के फैशन और हिन्दी विरोध के कारण देवनागरी अक्षरों का लोप होने लगा। अदालती और राजकीय कामकाज में उर्दू का बोलबाला होने से उर्दू पढ़े-लिखे लोगों की भाषा बनने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उर्दू की व्यापकता थी। खड़ी बोली का अरबी-फारसी रूप ही लिखने-पढ़ने की भाषा होकर सामने आ रहा था। हिन्दी को इससे बड़ा आघात पहुँचा।

कहा जाता है कि हिन्दी वाले भी अपनी पुस्तकें फारसी में लिखने लगे थे, जिसके कारण देवनागरी अक्षरों का भविष्य ही खतरे में पड़ गया था। जैसा कि बालमुकुन्दजी की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है - "जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वे फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए और हिन्दी भाषा हिन्दी न रहकर उर्दू बन गयी। हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी।"

उस समय अनेक विचारक, साहित्यकार और समाजकर्मी हिन्दी और नागरी के समर्थन में उस समय मैदान में उतरे। यह वह समय था जब हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार और परिमार्जन नहीं हो सका था अर्थात् हिन्दी गद्य का कोई सुव्यवस्थित और सुनिश्चित नहीं गढ़ा जा सका था। खड़ी बोली हिन्दी घुटनों के बल ही चल रही थी। वह खड़ी होने की प्रक्रिया में तो थी। मगर नहीं हो पा रही थी।

सन् 1796 ई. - मुद्राक्षर आधारित देवनागरी लिपि में प्राचीनतम मुद्रण (जॉन गिलक्राइस्ट, हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण, कोलकाता)।

सन् 1884 - प्रयाग में मालवीयजी के प्रयास से हिन्दी हितकारिणी सभा की स्थापना की गई।

सन् 1893 ई. - काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना

सन् 1894 - मेरठ के पंडित गौरीदत्त ने न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए ज्ञापन दिया जो अस्वीकृत हो गया।

सन् 1897 - नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा गठित समिति ने 60, 000 हस्ताक्षरों से युक्त प्रतिवेदन अंग्रेज सरकार को दिया। इसमें विचार व्यक्त किया गया था कि संयुक्त प्रान्त में केवल देवनागरी को ही न्यायालयों की भाषा होने का अधिकार है।

20 अगस्त सन् 1896 - राजस्व परिषद ने एक प्रस्ताव पास किया कि सम्मन आदि की भाषा एवं लिपि हिन्दी होगी परन्तु यह व्यवस्था कार्य रूप में परिणित नहीं हो सकी।

15 अगस्त सन् 1900 – शासन ने निर्णय लिया कि उर्दू के अतिरिक्त नागरी लिपि को भी अतिरिक्त भाषा के रूप में व्यवहृत किया जाये।

9 सितंबर 1949 – संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी निधारित की गयी।

लिपि का विकास

देवनागरी का विकास उत्तर भारतीय ऐतिहासिक गुप्त लिपि से हुआ, हालांकि अंतत: इसकी व्युत्पत्ति ब्राह्मी वर्णाक्षरों से हुई, जिससे सभी आधुनिक भारतीय लिपियों का जन्म हुआ है। सातवीं शताब्दी से इसका उपयोग हो रहा है, लेकिन इसके परिपक्व स्वरूप का विकास 11वीं शताब्दी में हुआ। उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की अभिव्यक्ति 'भाषा' कहलाती है। जबकि लिखित वर्ण संकेतों की सहायता से भाव या विचार की अभिव्यक्ति लिपि। भाषा श्रव्य होती है, जबकि लिपि दृश्यमान होती है। भारत की सभी लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से ही निकली हैं। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग वैदिक आर्यों ने शुरू किया। ब्राह्मी लिपि का प्राचीनतम नमूना 5वीं सदी BC का है जो कि बौद्धकालीन है। गुप्तकाल के प्रारम्भ में ब्राह्मी के दो भेद हो गए, उत्तरी ब्राह्मी व दक्षिणी ब्राह्मी। दक्षिणी ब्राह्मी से तमिल लिपि/कलिंग लिपि, तेलुगु एवं कन्नड़ लिपि, ग्रंथ लिपि तमिलनाडु, मलयालम लिपि का विकास हुआ।

उत्तरी ब्राह्मी से नागरी लिपि का विकास

उत्तरी ब्राह्मी (350ई. तक)
गुप्त लिपि (चौथी-पांचवीं सदी)
सिद्धमातृका लिपि (छठी सदी)
कुटिल लिपि (आठवीं-नौवीं सदी)

नागरी	शारदा		
गुरुमुखी	कश्मीरी	लहंदा	टाकरी

नागरी लिपि का प्रयोग काल 8वीं-9वीं सदी ई. से आरम्भ हुआ। 10वीं से 12वीं सदी के बीच इसी प्राचीन नागरी से उत्तरी भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियों का विकास हुआ। इसकी पश्चिमी व पूर्वी दो

शाखाएँ मिली हैं। पश्चिमी शाखा की सर्वप्रमुख/प्रतिनिधि लिपि देवनागरी लिपि है।

हिन्दी भाषा की लिपि के रूप में विकास

देवनागरी पर महापुरुषों के विचार

हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि दे सकती है।

आचार्य विनोबा भावे

हमारी नागरी दुनिया की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है।

राहुल सांकृत्यायन

हिंदुस्तान के लिये देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता।

महात्मा गाँधी

उर्दू लिखने के लिये देवनागरी लिपि अपनाने से उर्दू उत्कर्ष को प्राप्त होगी।

खुशवन्त सिंह

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

कृष्णस्वामी अय्यर (न्यायाधीश)

बँगला वर्णमाला की जाँच से मालूम होता है कि देवनागरी लिपि से निकली है और इसी का सीधा सादा रूप है।

रमेशचंद्र दत्त

देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

रविशंकर शुक्ल

देवनागरी लिपि को हिन्दी भाषा की अधिकृत लिपि बनने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। अंग्रेजों की भाषा नीति फारसी की ओर

अधिक झुकी हुई थी। इसीलिए हिन्दी को भी फारसी लिपि में लिखने का 'ाड्यंत्र किया गया।

जॉन गिलक्राइस्ट–हिन्दी भाषा और फारसी लिपि का घालमेल फोर्ट विलियम कॉलेज (1800-54) की देन थी। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के सर्वप्रथम अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट थे। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ थीं–दरबारी या फारसी शैली, हिन्दुस्तानी शैली व हिन्दवी शैली। वे फारसी शैली को दुरूह तथा हिन्दवी शैली को गँवारू मानते थे। इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तानी शैली को प्राथमिकता दी। उन्होंने हिन्दुस्तानी के जिस रूप को बढ़ावा दिया, उसका मूलाधार तो हिन्दी ही था, किन्तु उसमें अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता थी और वह फारसी लिपि में लिखी जाती थी। गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी के नाम पर असल में उर्दू का ही प्रचार किया।

विलियम प्राइस–1823 ई. में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप में विलियम प्राइस की नियुक्ति हुई। उन्होंने हिन्दुस्तानी के नाम पर हिन्दी पर बल दिया। प्राइस ने गिलक्राइस्ट द्वारा जनित भाषा-सम्बन्धी भ्रान्ति को दूर करने का प्रयास किया। लेकिन प्राइस के बाद कॉलेज की गतिविधियों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई।

अदालत सम्बन्धी विज्ञप्ति (1837 ई.)–वर्ष 1830 ई. में अंग्रेज कम्पनी के द्वारा अदालतों में फारसी के साथ-साथ देशी भाषाओं को भी स्थान दिया गया। वास्तव में, इस विज्ञप्ति का पालन 1837 ई. में ही शुरू हो सका। इसके बाद बंगाल में बांग्ला भाषा और बांग्ला लिपि प्रचलित हुई। संयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश, बिहार व मध्य प्रान्त मध्य प्रदेश में भाषा के रूप में तो हिन्दी का प्रचलन हुआ, लेकिन लिपि के मामले में नागरी लिपि के स्थान पर उर्दू लिपि का प्रचार किया जाने लगा। इसका मुख्य कारण अदालती अमलों की कृपा तो थी ही, साथ ही मुसलमानों ने भी धार्मिक आधार पर जी-जान से उर्दू का समर्थन किया और हिन्दी को कचहरी से ही नहीं शिक्षा से भी निकाल बाहर करने का आंदोलन चालू किया।

1857 के विद्रोह के बाद हिन्दू–मुसलमानों के पारस्परिक विरोध में ही सरकार अपनी सुरक्षा समझने लगी। अत: भाषा के क्षेत्र में उनकी नीति भेदभावपूर्ण हो गई। अंग्रेज विद्वानों के दो दल हो गए। दोनों ओर से पक्ष-विपक्ष में अनेक तर्क-वितर्क प्रस्तुत किए गए। बीम्स साहब उर्दू का और ग्राउस साहब हिन्दी का समर्थन करने वालों में प्रमुख थे।

नागरी लिपि और हिन्दी तथा फारसी लिपि और उर्दू का अभिन्न सम्बन्ध हो गया। अत: दोनों के पक्ष-विपक्ष में काफी विवाद हुआ।

राजा शिव प्रसाद 'सितारे-हिन्द' का लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन (1868 ई.)–फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के लिए पहला प्रयास राजा शिवप्रसाद का 1868 ई. में उनके लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन 'मेमोरण्डम कोर्ट कैरेक्टर इन द अपर प्रोविन्स ऑफ इंडिया' से आरम्भ हुआ।

जॉन शोर–एक अंग्रेज अधिकारी फ्रेडरिक जॉन शोर ने फारसी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रयोग पर आपत्ति व्यक्त की थी और न्यायालय में हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपि का समर्थन किया था।

बंगाल के गवर्नर ऐशले के आदेश (1870 ई. व 1873 ई.)– वर्ष 1870 ई. में गवर्नर ऐशले ने देवनागरी के पक्ष में एक आदेश जारी किया, जिसमें कहा गया कि फारसी-पूरित उर्दू नहीं लिखी जाए। बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाए जो एक कुलीन हिन्दुस्तानी फारसी से पूर्णतया अनभिज्ञ रहने पर भी बोलता है। वर्ष 1873 ई. में बंगाल सरकार ने यह आदेश जारी किया कि पटना, भागलपुर तथा छोटा नागपुर डिविजनों (संभागों) के न्यायालयों व कार्यालयों में सभी विज्ञप्तियाँ तथा घोषणाएँ हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि में ही की जाएँ।

वर्ष 1881 ई. तक आते-आते उत्तर प्रदेश के पड़ोसी प्रान्तों बिहार, मध्य प्रदेश में नागरी लिपि और हिन्दी प्रयोग की सरकारी आज्ञा जारी हो गई तो उत्तर प्रदेश में नागरी आंदोलन को बड़ा नैतिक प्रोत्साहन मिला।

प्रचार की दृष्टि से वर्ष 1874 ई. में मेरठ में 'नागरी प्रकाश' पत्रिका प्रकाशित हुई। वर्ष 1881 ई. में 'देवनागरी प्रचारक' तथा 1888 ई. में 'देवनागरी गजट' पत्र प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नागरी आंदोलन को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की और वे इसके प्रतीक और नेता माने जाने लगे। उन्होंने 1882 में शिक्षा आयोग के प्रश्न-पत्र का जवाब देते हुए कहा–"सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है, जहाँ न तो अदालती भाषा शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की।"

प्रताप नारायण मिश्र–पं. प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी-हिन्दू-हिन्दूस्तान का नारा लगाना शुरू कर दिया।

1893 ई. में अंग्रेज सरकार ने भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने का प्रश्न खड़ा कर दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स्थापना-1893 ई.) व मदन मोहन मालवीय–नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना वर्ष 1893 में नागरी प्रचार एवं हिन्दी भाषा के संवर्धन के लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना की गई। सर्वप्रथम इस सभा ने कचहरी में नागरी लिपि का प्रवेश कराना ही अपना मुख्य कर्तव्य निश्चित किया। सभा ने 'नागरी कैरेक्टर' नामक एक पुस्तक अंग्रेजी में तैयार की, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला गया था।

मालवीय के नेतृत्व में 17 सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल द्वारा लेफ्टिनेंट गवर्नर एण्टोनी मैकडानल को याचिका देना (1898 ई.)– मालवीय ने एक स्वतंत्र पुस्तिका 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सेज' (1897 ई.) लिखी, जिसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। वर्ष 1898 ई. में प्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर के काशी आने पर नागरी प्रचारिणी सभा का एक प्रभावशाली प्रतिनिधि मंडल मालवीय के नेतृत्व में उनसे मिला और हजारों हस्ताक्षरों से युक्त एक मेमोरियल उन्हें दिया। यह मालवीय जी का ही अथक प्रयास था, जिसके परिणामस्वरूप अदालतों में नागरी को प्रवेश मिल सका। इसीलिए अदालतों में नागरी के प्रवेश का श्रेय मालवीय जी को दिया जाता है।

गौरी दत्त–व्यक्तिगत रूप से मेरठ के गौरीदत्त की नागरी प्रचार के लिए की गई सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

इन तमाम प्रयत्नों का शुभ परिणाम यह हुआ कि 18 अप्रैल, 1900 ई. को गवर्नर साहब ने फारसी के साथ नागरी को भी अदालतों/कचहरियों में समान अधिकार दे दिया। सरकार का यह प्रस्ताव हिन्दी के स्वाभिमान के लिए संतोषप्रद नहीं था। इससे हिन्दी को अधिकारपूर्ण सम्मान नहीं दिया गया था। बल्कि हिन्दी के प्रति दया दिखलाई गई थी। केवल हिन्दी भाषी जनता के लिए सुविधा का प्रबन्ध किया गया था। फिर भी, इसे इतना श्रेय तो है ही कि कचहरियों में स्थान दिला सका और यह मजबूत आधार प्रदान किया, जिसके बल पर वह 20वीं सदी में राष्ट्रलिपि के रूप में उभरकर सामने आ सकी।

देवनागरी अंक

देवनागरी अंक निम्न रूप में लिखे जाते हैं–

देवनागरी अंक				
0 1	2	3	4	
5 6	7	8	9	
हिन्दी				
शून्य	एक	दो	तीन	चार
पाँच	छह	सात	आठ	नौ
अंग्रेजी अंक				
0 1	2	3	4	
5 6	7	8	9	

देवनागरी लिपि का नामकरण

देवनागरी लिपि को 'हिन्दी लिपि' भी कहा जाता है। हालांकि देवनागरी का नामकरण विवादास्पद है। अधिकांश विद्वान गुजरात के नागर ब्राह्मण से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। उनका मानना है कि गुजरात में सर्वप्रथम प्रचलित होने से वहाँ के पंडित वर्ग अर्थात् नागर ब्राह्मणों के नाम से इसे 'नागरी' कहा गया है। अपने अस्तित्त्व में आने के तुरन्त बाद इसने देवभाषा संस्कृत को लिपिबद्ध किया, इसलिए 'नागरी' में 'देव' शब्द जुड़ गया और बन गया 'देवनागरी'।

देवनागरी लिपि का स्वरूप

यह लिपि बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाती है। यह न तो शुद्ध रूप से अक्षरात्मक लिपि है और न ही वर्णात्मक लिपि।

देवनागरी लिपि के गुण

देवनागरी लिपि के प्रमुख गुण निम्नवत् हैं–

1. मूक वर्ण नहीं हैं।
2. जो बोला जाता है वही लिखा जाता है।
3. वर्णमाला ध्वनि वैज्ञानिक पद्धति के बिल्कुल अनुरूप है।
4. एक वर्ण में दूसरे वर्ण का भ्रम नहीं होता है।

5. उच्चारण के सूक्ष्मतम भेद को भी प्रकट करने की क्षमता है।
6. प्रयोग बहुत व्यापक (संस्कृत, हिन्दी, मराठी, नेपाली की एकमात्र लिपि)।
7. भारत की अनेक लिपियों के निकट।
8. जो ध्वनि का नाम है वही वर्ण का नाम भी है।
9. एक ध्वनि के लिए एक ही वर्ण संकेत का प्रयोग होता है।
10. एक वर्ण संकेत से अनिवार्यतः एक ही ध्वनि व्यक्त होती है।

देवनागरी लिपि के दोष

देवनागरी लिपि के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

1. द्विरूप वर्ण (श्र्प्र अ, ज्ञ, क्ष, त, त्र, छ, झ, रा ण, श)
2. समरूप वर्ण (ख में र व का, घ में ध का, म में भ का भ्रम होना)।
3. अनुस्वार एवं अनुनासिकता के प्रयोग में एकरूपता का अभाव।
4. त्वरापूर्ण लेखन नहीं क्योंकि लेखन में हाथ बार-बार उठाना पड़ता है।
5. इ की मात्रा (ि) का लेखन वर्ण के पहले पर उच्चारण वर्ण के बाद।
6. वर्णों के संयुक्तीकरण में र के प्रयोग को लेकर भ्रम की स्थिति।
7. वर्णों के संयुक्त करने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं।
8. कुल मिलाकर 403 टाइप होने के कारण टंकण, मुंद्रण में कठिनाई।
9. शिरोरेखा का प्रयोग अनावश्यक अलंकरण के लिए।
10. अनावश्यक वर्ण (ऋ, ष, लृ, ष,ॅ, श्र्, ष)–आज इन्हें कोई शुद्ध उच्चारण के साथ उच्चारित नहीं कर पाता।

देवनागरी लिपि में किए गए सुधार

देवनागरी लिपि में किए गए सुधार निम्नलिखित हैं–

1. बाल गंगाधर का 'तिलक फांट' (1904-26)।
2. सावरकर बंधुओं का 'अ की बारहखड़ी'।
3. श्यामसुन्दर दास का पंचमाक्षर के बदले अनुस्वार के प्रयोग का सुझाव।
4. गोरख प्रसाद का मात्राओं को व्यंजन के बाद दाहिने तरफ अलग रखने का सुझाव।
5. श्रीनिवास का महाप्राण वर्ण के लिए अल्प्रमाण के नीचे चिह्न लगाने का सुझाव।

7. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का इन्दौर अधिवेशन और काका कालेलकर के संयोजकत्व में नागरी लिपि सुधार समिति का गठन (1935) और उसकी सिफारिशें।
8. काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अ की बारहखड़ी और श्रीनिवास के सुझाव को अस्वीकार करने का निर्णय (1945)।
9. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा गठित आचार्य नरेन्द्र देव समिति का गठन (1947) और उसकी सिफारिशें।
10. शिक्षा मंत्रालय के देवनागरी लिपि सम्बन्धी प्रकाशन–'मानक देवनागरी वर्णमाला' (1966 ई.), 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' (1967 ई), 'देवनागरी लिपि तथा हिन्दी की वर्तनी का मानकीकरण' (1983 ई.) आदि।

लिपि के कुछ प्रमुख लेख

शिवराममूर्ति के अनुसार हर्षवर्धन के समकालीन गौड़देश (पश्चिम बंगाल) के राजा शशांक के ताम्रपत्रों में पूर्वी भारत की नागरी लिपि का स्वरूप पहले-पहल देखने को मिलता है। परंतु इन ताम्रपत्रों की लिपि को हम अभी नागरी नहीं कह सकते। अधिक से अधिक इसे हम 'प्राक-नागरी' का नाम दे सकते हैं, क्योंकि इस लिपि के अक्षर न्यूनकोणीय (तिरछे) और ठोस त्रिकोणी सिरोंवाले हैं। उत्तर भारत में नागरी लिपि का प्रयोग पहले-पहल कन्नौज के प्रतिहारवंशीय राजा महेन्द्रपाल (891-907 ई.) के दानपत्रों में देखने को मिलता है। इनमें 'आ' की मात्रा पहले की तरह अक्षर की दाईं ओर आड़ी न होकर, खड़ी और पूरी लंबी हो गई है। 'क' का नीचे का मुड़ा हुआ वक्र उसके दंड के साथ मिल जाता है। इस लिपि में अक्षरों के नीचे के सिरे सरल हैं और सिरों पर, पहले की तरह ठोस त्रिकोण न होकर, अब आड़ी लकीरें हैं। इसके बाद तो उत्तर भारत से नागरी लिपि के ढेरों लेख मिलते हैं। इनमें गुहिलवंशी, चाहमान (चौहान) वंशी, राष्ट्रकूट, चालुक्य, परमार, चंदेलवंशी, हैहय (कलचुरि) आदि राजाओं के नागरी लिपि में लिखे हुए दानपत्र तथा शिलालेख प्रसिद्ध हैं। दक्षिण के पल्लव शासकों ने भी अपने लेखों के लिए नागरी लिपि का प्रयोग किया था। इसी लिपि से आगे चलकर 'ग्रंथ लिपि' का विकास हुआ। तमिल लिपि की अपूर्णता के कारण उसमें संस्कृत के ग्रन्थ लिखे नहीं जा सकते थे, इसलिए संस्कृत के ग्रंथ

जिस नागरी लिपि में लिखे जाने लगे, उसी का बाद में 'ग्रन्थ लिपि' नाम पड़ गया। कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर में नागरी लिपि में लिखे हुए बहुत से विवरण मिलते हैं। इनमें सरल और कलात्मक दोनों ही प्रकार की लिपियों का प्रयोग देखने को मिलता है। यह लिपि हर्षवर्धन की लिपि से काफी मिलती-जुलती दिखाई देती है।

धार नगरी के परमार शासक भोज के बेतमा ताम्रपत्र (1020 ई.) का एक अंश

सुदूर दक्षिण में भी पांड्य शासकों ने 8वीं शताब्दी में नागरी का प्रयोग किया था। महाबलिपुरम के अतिरणचंड़ेश्वर नामक गुफामंदिर में जो लेख मिलता है, वह भी नागरी में है। सबसे नीचे दक्षिण में नागरी का जो लेख मिलता है, वह है पांडय-राजा वरगुण (9वीं शताब्दी) का पलियम दानपत्र। इस दानपत्र की लिपि में और अतिरणचंडेश्वर के गुफालेख की लिपि में काफी साम्य है। दक्षिण के उत्तम, राजराज और राजेन्द्र जैसे चोल राजाओं ने अपने सिक्कों के लेखों के लिए नागरी का प्रयोग किया है। श्रीलंका के पराक्रमबाहु, विजयबाहु जैसे राजाओं के सिक्कों पर भी नागरी का उपयोग हुआ है। 13वीं शताब्दी के केरल के शासकों के सिक्कों पर 'वीरकेरलस्य' जैसे शब्द नागरी में अंकित मिलते हैं। विजयनगर शासनकाल से तो नागरी (नंदिनागरी) का बहुतायत से उपयोग देखने को मिलता है। इस काल के अधिकांश ताम्रपत्रों पर नागरी लिपि में ही लेख अंकित हैं, हस्ताक्षर ही प्रायः तेलुगु-कन्नड़ लिपि में है। सिक्कों पर भी नागरी का प्रयोग देखने को मिलता है। दक्षिणी शैली की नागरी लिपि (नंदिनागरी लिपि) का प्राचीनतम नमूना हमें राष्ट्रकूट राजा दंतिदुर्ग के दानपत्रों में, जो 754 ई. के हैं, दिखाई देता है। बाद में बादामी के चालुक्यों के उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट शासकों ने तो इस नागरी लिपि का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया। राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज प्रथम के नागरी लिपि में लिखे हुए तलेगांव-दानपत्र प्रसिद्ध हैं। देवगिरि के यादववंशी राजाओं ने भी नागरी लिपि का ही उपयोग किया था। धार नगरी का परमार शासक भोज अपने विद्यानुराग के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। बांसवाड़ा तथा वेतमा से प्राप्त उसके ताम्रपत्र (1020 ई.) उसकी 'कोंकणविजय' के उपलक्ष्य में जारी किए गये थे। ये आरंभिक नागरी लिपि में है।

महत्व

भारतीय भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं की (उर्दू और सिंधी को छोड़कर) लिपियां ब्राह्मी लिपि से ही उद्‌भव हैं। देवनागरी, ब्राह्मी लिपि की सबसे व्यापक, विकसित और वैज्ञानिक लिपि है, जो भारतीय भाषाओं की सहोदरा लिपि होने के नाते इन सबके बीच स्वाभाविक रूप से संपर्क लिपि का कार्य कर सकती है। यदि हम इन भाषाओं के साहित्य को उनकी अपनी-अपनी लिपियों के अलावा एक समान लिपि देवनागरी लिपि में भी उपलब्ध करा दें, तो इन भाषाओं का साहित्य अन्य भाषा-भाषियों के लिए भी सुलभ हो सकेगा। नागरी लिपि इन भाषाओं के बीच सेतु का कार्य कर सकेगी।

इसीलिए आधुनिक युग के हमारे अग्रणी नेताओं, प्रबुद्ध विचारकों और मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए देवनागरी के प्रयोग पर बल दिया था। निश्चय ही ये सभी विचारक हिंदी क्षेत्रों के नहीं थे, अपितु इतर हिंदी प्रदेशों के ही थे। उनका मानना था कि भावात्मक एकता की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का होना आवश्यक है और यह लिपि केवल देवनागरी ही हो सकती हैं। श्री केशववामन पेठे, राजा राममोहन राय, शारदाचरण मित्र (1848-1916) ने नागरी लिपि के महत्व को समझते हुए देश भर में इसके प्रयोग को बढ़ाने की आवाज उठायी थी।

शारदाचरण मित्र ने इसे 'राष्ट्र लिपि' बताया और अगस्त 1905 में एक 'लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की। उन्होंने 1907 में 'देवनागर' नाम से एक पत्रिका भी निकाली, जिसमें कन्नड़, तेलुगु, बांग्ला आदि की रचनाएं नागरी लिपि में प्रकाशित की जाती थीं। लोकमान्य तिलक और गांधीजी ने देश की एकता के लिए एक लिपि की आवश्यकता पर बल दिया। गुजरात में जन्मे महर्षि दयानंद सरस्वती, दक्षिण के कृष्णस्वामी अय्यर तथा अनन्तशयनम् अयंगर और मुहम्मद करीम छागला ने भी नागरी लिपि के महत्व पर बल दिया। महात्मा गांधी चाहते थे कि भारत में भाषायी एकता के लिए एक समान लिपि की आवश्यकता है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है लिपि विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव सा हो गया है। बांग्ला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवाय बंगालियों के और कौन पढ़ेगा पर यदि वह देवनागरी में लिखी जाये, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। आज दक्खिनी हिंदी की भी यही स्थिति है, जिसका लगभग 400 वर्षों का अपार साहित्य फारसी लिपि में होने के कारण हिंदी शोधार्थियों की

दृष्टि से ओझल है। यह सत्य है कि लिपिभेद के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास की इस कड़ी को हम अभी तक जोड़ नहीं पाये हैं।

उर्दू और हिंदी भी लिपि भेद के कारण मूलरूप से एक होते हुए भी अलग-अलग भाषाएं बनी हुई हैं। यदि उर्दू भाषा की वैकल्पिक लिपि के रूप में नागरी को अपना लें, तो उर्दू को लोकप्रिय बनाने में बड़ी सहायता मिलेगी। महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल स्वर्गीय श्री अलीयावर जंग ने कहा था, "मेरा मत है कि उर्दू साहित्यकार को अपनी लिपि चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन देवनागरी लिपि को देश में जोड़ लिपि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।"

आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि के महत्व को स्वीकार करते हुए यहां तक कहा था 'हिंदुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी देगी।' इसलिए मैं चाहता हूँ कि सभी भाषाएं सिर्फ देवनागरी में भी लिखी जाएं। सभी लिपियां चलें लेकिन साथ-साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाये। विनोबा जी 'नागरी ही' नहीं 'नागरी भी' चाहते थे। उन्हीं की सद्प्रेरणा से 1975 में नागरी लिपि परिषद की स्थापना हुई। जो भारत की एकमात्र ऐसी संस्था है, जो नागरी लिपि के प्रचार प्रसार में लगी है। 1961 में पं जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में सम्पन्न मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में भी यह सिफारश की गयी कि, भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि अपनाना वांछनीय हैं। इतना ही नहीं, यह सब भाषाओं को जोड़ने वाली एक मजबूत कड़ी का काम करेगी और देश के एकीकरण में सहायक होगी। भारत की भाषायी स्थिति में यह स्थान केवल देवनागरी ले सकती है। 16-17 जनवरी, 1960 को बंगलुरु में आयोजित 'ऑल इण्डिया देवनागरी कांग्रेस' में श्री अनंतशयनम् आयंगर ने भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी को अपनाये जाने का समर्थन किया था। नि:संदेह देवनागरी लिपि में वे गुण हैं, वह सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ सकती है। यह संसार की सबसे अधिक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि जो है।

राष्ट्रलिपि

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जिस प्रकार 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' - की घोषणा करके राष्ट्र को स्वतंत्रता का मंत्र दिया, उसी प्रकार उन्होंने राष्ट्र लिपि के रूप में नागरी तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की घोषणा काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सन् 1905 में की थी।

तिलकजी ने यह ऐतिहासिक घोषणा भारतीय कांग्रेस के सन् 1905 के बनारस अधिवेशन के अवसर पर की थी। इस घोषणा के महत्व को समझकर देश के नेताओं ने संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा के स्थान पर राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्र लिपि स्वीकार किया होता तो वह आज देश की एकता और अखंडता का सक्षम माध्यम होती।

लोकमान्य तिलकजी ने प्राचीन ताम्रपत्र एवं ग्रंथों में हस्तलिखित नागरी लिपि के प्रयोग का उल्लेख करते हुए भाषा शास्त्र की दृष्टि से उसका प्रतिपादन किया था और उन्होंने कहा था कि 'भारत में मापतोल की एक ही पद्धति चलती है। उसी प्रकार हिन्दुस्तान में सर्वत्र एक ही लिपि का प्रचार होना चाहिए।'

1910 में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री वी. कृष्ण स्वामी अय्यर ने विभिन्न लिपियों के व्यवहार से बढ़ने वाली अनेकता और भारतीय भाषाओं के बीच पनपती दूरी पर चिंता व्यक्त करते हुए सहलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया। श्री रामानन्द चटर्जी ने 'चतुर्भाषी' नामक पत्र निकाला जिसमें बंगला, मराठी, गुजराती और हिंदी की रचनाएं देवनागरी लिपि में छपती थीं। राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही नहीं, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय भी देवनागरी लिपि के प्रबल समर्थक थे। विद्यासागर जी चाहते थे कि भारतीय भाषाओं के लिए नागरी लिपि का व्यवहार अतिरिक्त लिपि के रूप में किया जाए, जबकि बंकिम बाबू का मत था कि भारत में केवल देवनागरी लिपि का व्यवहार किया जाना चाहिए।

बहादुरशाह जफर के भतीजे वेदार बख्त ने 'पयाम-ए-आजादी' पत्र को देवनागरी और फारसी दोनों लिपि में प्रकाशित किया। महर्षि दयानंद ने अपना सारा वांगमय देवनागरी में लिखा। उनके प्रभाव से देवनागरी का व्यापक प्रचार हुआ। मेरठ में गौरीदत्त शर्मा ने 1870 के लगभग 'नागरीसभा' का गठन किया और स्वामीजी की प्रेरणा से अनेक लोग नागरी के प्रसार में जी-जान से जुट गये। आज मेरठ में देवनागरी कालेज उन्हीं की कृपा से सुफल है। श्री भूदेव मुखोपाध्याय ने बिहार की अदालतों में देवनागरी का प्रयोग आरंभ कराया जिसकी प्रशंसा संस्कृत के उपन्यासकार अंबिकादत्त व्यास ने अपने गीतों में की है। भारतेंदु हरिशचन्द्र, कालाकांकर नरेश, राजा रामपाल सिंह, अलीगढ़ के बाबू तोता राम, बाबू 'यामसुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास और पं. मदनमोहन मालवीय के

सद्प्रयत्न रंग लाये और उत्तर प्रदेश के न्यायालयों में देवनागरी के वैकल्पिक प्रयोग का मार्ग खुला।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी अपनाने के कट्टर हिमायती थे। पं. जवाहर लाल नेहरू सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली मजबूत कड़ी के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने के समर्थक थे। डॉ. राजेंद्र प्रसाद चाहते थे कि भारत की प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य देवनागरी के माध्यम से हर भारतीय को आस्वादन के लिए उपलब्ध होना चाहिए। स्वतंत्रवीर सावरकर नागरी को 'राष्ट्रलिपि' के रूप में मान्यता देने के पक्ष में थे। लाला लाजपतराय राष्ट्रव्यापी मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे भारत में देवनागरी का प्रचार आवश्यक मानते थे। 1924 में **शहीद भगत सिंह** ने लिखा था– "हमारे सामने इस समय मुख्य प्रश्न भारत का एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम नहीं हो सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम सभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम से कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए।" **रेवरेण्ड जॉन डिनी** लिखते हैं– "चूंकि लाखों भाषा-भाषी पहले से ही नागरी लिपि जानते हैं, इसलिए मैं महसूस करता हूं कि बिल्कुल नहीं लिपि के प्रचलन की अपेक्षा किंचित संवर्धित नागरी लिपि को ही अपनाना अधिक वास्तविक होगा।"

17 मार्च, 1967 को सेठ गोविंददास जी ने एक बहुत बड़े समुदाय के सामने प्रस्ताव रखा कि सारी प्रादेशिक भाषाएं देवनागरी लिपि में ही लिखी जाएं। इस देश की एकता को बनाए रखने के लिए और एक-दूसरे के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए और इस देश की हर भाषा के साहित्य को समझना है तो हमें एक लिपि की आवश्यकता है। वह लिपि देवनागरी लिपि ही हो सकती है।

सहलिपि के रूप में देवनागरी राष्ट्रलिपि का रूप ग्रहण कर सकती है। इससे श्रम, समय और धन की बचत तो होगी ही साथ ही राष्ट्रीय भावना और पारस्परिक आत्मीयता की अभिवृद्धि भी होगी। इससे पृथक्तावाद के विषाणुओं का विनाश होगा और अखण्डता की भावना सबल होगी। भारतीय साहित्य के वास्तविक स्वरूप पर परिचय मिलेगा तथा सारी भाषाएं एक-दूसरे के निकट आकर स्नेह-सूत्र में गुम्फित हो जाएंगी। उनके बीच की विभेद की दीवार ढह जाएगी और आसेतु हिमालय सामाजिक समरता परिपुष्ट होगी। यही नहीं, सारी भारतीय भाषाओं को अखिल भारतीय बाजार मिलेगा, उनकी खपत बढ़ेगी और शोध को अखिल भारतीय स्तर प्राप्त होगा। न केवल शब्द-भंडार का साम्य,

बल्कि भाव और प्रवृत्तियों का साम्य भी परिलक्षित होगा और एक भाषा बोलने वाला दूसरी भाषा और इसके साहित्य के सौष्ठव तथा वैशिष्ट्य का भरपूर आस्वादन कर सकेगा। इसीलिए खुशवंत सिंह ने उर्दू साहित्य को देवनागरी में लिखने का समर्थन किया है। देवनागरी में गालिब, मीर, नजीर आदि की पुस्तकें लगभग 1 करोड़ रुपये की बिक चुकी हैं।

आज जनजातियों की बेहद उपेक्षा हुई। उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग कर विदेशी मिशनरियों के भरोसे छोड़ दिया गया। उन्हें भारतीय होने का गौरव मध्य क्षेत्र में संथाल, मुण्डा, चकमा आदि तथा दक्षिण क्षेत्र में मिला। जहां चेंचू, कांटा, कुरुम्ब जनजातियां रहती हैं। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में ओगो, शोम्पेन आदि जनजातियां पाई जाती हैं। लिपि विहीन जनजातीय बोलियों के लिए देवनागरी सबसे उपयुक्त है। बोडो और जेभी भाषा के लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है। अरुणाचल में भी देवनागरी का व्यवहार जनजातीय बोलियों के लिए किया जा रहा है। जहां पर भी संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश का अनुशीलन होता रहा है, वहां देवनागरी लिपि सुपरिचित है। मराठी, नेपाली के बोलने वाले इस लिपि का पहले से ही व्यवहार करते हैं। दक्षिण भारत हो या भारत का कोई भी हिंदीतर क्षेत्र-देववाणी के कारण नागरी अक्षर सर्वत्र प्रचलित है।

नन्दिनागरी लिपि

यह लिपि है जो नागरी लिपि और ब्राह्मी से व्युत्पन्न है। नन्दिनागरी, नागरी लिपि की पश्चिमी शैली है। नन्दिनागरी में लिखित शिलालेख और पाण्डुलिपियाँ दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों के पश्चिमी भागों में भी प्राप्त हुए हैं। (महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश आदि)। इस कारण नन्दिनागरी को नागरी की दक्षिणी शैली भी कहते हैं। मध्वाचार्य की कुछ पाण्डुलिपियाँ नन्दिनागरी में हैं।

नागरी लिपि एवं फारसी लिपि में पारस्परिक संबंध

दुनिया आपसी रिश्तों में बंधी हुई है। ये रिश्ते-नाते, घर-परिवार, खानदान इस समाज का एक हिस्सा हैं। गांव, शहर, देश-विदेश में आपसी संबंध होते हैं। संसार में एक देश का दूसरे देश के साथ मिलना-मिलाना रहा है, विज्ञान की प्रगति के बाद तो संसार वास्तव में बहुत ही निकट आ गया है। एक देश के साहित्य और भाषा का सम्बन्ध भी दूसरे देश के साहित्य और भाषा से रहा। भाषा

को पढ़ने और लिखने के लिए अक्षरों का प्रयोग होता है। बोलने और सुनने के लिए ध्वनियों का। ध्वनियाँ सीखने के बाद ही अक्षर सीखे जाते हैं। इस तरह भाषा सीखना आसान हो जाता है।

भाषा को पढ़ने और लिखने के लिए लिपि की आवश्यकता पड़ी। संसार में अनेक भाषाएँ हैं और उन्हें विविध लिपियों में लिखा जाता है। कौन-सी लिपि अच्छी है, आसान है अपनानी चाहिए यह एक अलग बहस का मुद्दा है। मैं इस संबंध में बात न करके फारसी और देवनागरी लिपि के आपसी रिश्तों, संबंधों और परस्पर आदान-प्रदान की बात करूँगी।

हमारे देश की संपन्नता हमेशा से ही आकर्षण का केन्द्र रही। विदेशों से लोग यहाँ आते रहे और जाते रहे। कुछ लोगों को यह देश इतना अच्छा लगा कि उन्होंने यहाँ रहना शुरू कर दिया उनमें मुसलमान विशेष उल्लेखनीय हैं। मुसलमानों के साथ-साथ अरबी-फारसी भाषाएँ भी यहाँ आयीं। अरबी, फारसी, खड़ी बोली और दूसरी बोलियों के मेल से भारत में एक नई भाषा बनी जो उर्दू कहलायी। यहाँ कई भाषाओं ने अरबी-फारसी लिपि को अपनाया। अक्षरों के हिसाब से अरबी फारसी में विशेष अंतर नहीं है। फारसी भाषा में तीन-चार अक्षर ज्यादा हैं यह अरबी भाषा में नहीं है। ये चे, जे, गाफ, जे अरबी लिपि में अट्ठाइस अक्षर हैं फारसी में बत्तीस अक्षर। दोनों भाषाएँ दायीं ओर से बायीं ओर लिखी जाती हैं। फारसी वर्णमाला की ध्वनियाँ अक्षरों में इस प्रकार हैं -

अलिफ बे, पे, ते, से, जीम चे हे खे। दाल जाल र जे। जे सीन शीन स्वाद जुवाद तोए जोए, ऐन गैन फे काफ गाफ लाम मीम नून वाव हमजा हे ये यी।

ये फारसी लिपि की मूल ध्वनियाँ हैं। जब उर्दू भाषा ने जन्म लिया तो हिन्दुस्तानी होने की वजह से उसका काम फारसी की इन 32 मूल ध्वनियों से नहीं चला। वहाँ फारसी लिपि में नागरी लिपि से बहुत सी ध्वनियाँ अपना ली गयीं। यह अक्षर हैं - ख घ छ ड ड़ ट ढ ढ़ थ फ भ। इस तरह उर्दू भाषा में अपनायी गयी फारसी लिपि में यह चौदह ध्वनियां अक्षर और बढ़ गये हैं वहाँ यह ध्वनियाँ अब 46 हो जाती हैं। नागरी लिपि से कुछ अक्षर फारसी लिपि में जुड़े और फारसी लिपि के साथ नागरी लिपि का एक रिश्ता बना।

एक बात और ध्यान देने की है। ऊपर फारसी के जिन अक्षरों की चर्चा की गयी है उनकी आवाज भी नागरी लिपि को ध्वनियों से मिलती है। फारसी लिपि की प्रत्येक ध्वनि की पहली आवाज नागरी लिपि से मिलती है। अलिफ अ, बे ब, पे प, ते त, टे ट, से स, जीम ज, चे च, हे ह, दाल द, डाल ड,

रे र, ढे ढ, सीन स, शीन श, स्वाद स, तोय त, ऐन ऐ, काफ क, गाफ ग, मीम म, नोन न, वाव व, हे ह, ये य आदि वर्ण लगभग समान ध्वनि के पर्याय हैं।

जिस तरह फारसी ने हिन्दी या नागरी लिपि से कुछ ध्वनियों और अक्षरों को अपनी वर्णमाला में ले लिया उसी तरह हिन्दी ने भी कुछ ध्वनियों और अक्षरों को अपनी वर्णमाला में अपनाया। नागरी लिपि के कुछ अक्षरों पर बिंदी लगाकर फारसी की यह ध्वनियाँ हिन्दी में अपना ली गयीं- क ख ग ज फ।

नागरी लिपि में बारह स्वर हैं। फारसी लिपि में भी स्वर का प्रयोग होता है। नागरी लिपि में जो मात्राएँ कहलाती हैं बे फारसी में आराब। बारह स्वरों की अभिव्यक्ति फारसी लिपि अलिफ, वाव ये के साथ जबर जेर पेश रूपी मात्राओं को लगाकर कर देती है। जैसे नागरी लिपि में ईख ई और ख को मिलाकर लिखा जाएगा तो फारसी लिपि में अलिफ ये और ख को मिला कर। उर्दू भाषा में जब फारसी लिपि का प्रयोग होता है तो बहुत सारी चीज ध्वनि अक्षर आदि समान होते हैं केवल लिपि का अंतर होता है। दोनों लिपियाँ जानने वाला ध्वनियों की इन समानताओं को आसानी से पहचान लेता है।

दोनों लिपियों का सबसे बड़ा रिश्ता यह है कि दोनों लिपियों में यह क्षमता है कि एक-दूसरे की भाषाओं को अपनी-अपनी लिपि में लिख पढ़ सकती हैं। बोलते समय तो कोई अंतर रहता ही नहीं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में लिखने वालों को फारसी लिपि के अक्षरों का ज्ञान था। तुलसीदास ने अपनी सतसई। चतुर्थ सर्ग के दोहा 71-72, पृ0 135 पर फारसी लिपि के एन गैन अक्षरों का प्रयोग करते हुए कहा है - नाम जगत सम जानु जग, वस्तुन करि चित बैन। बिन्दु गये जिमि गैन ते रहत ऐन को ऐन/आपो 'ऐ' विचार विधि सिद्ध विमल मति मान। आन बासना बिंदु सम, तुलसी परम प्रमान।

तुलसीदास को इस बात का भी ज्ञान था कि गैन पर नुक्ता (बिंदी) लगता है। उस बिंदी को हटाने से यह बिंदी रहित होने से वह अक्षर 'ऐन' रह जाता है। तुलसीदास ने फारसी लिपि में प्रयुक्त अरबी भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग किया और राम को गरीबनवाज कहा और स्वयं को गुलाम।

रीतिकालीन हिंदी कवियों की जानकारी भी फारसी अक्षरों से थी। आलम कवि कहते हैं - अलक मुबारक तिय बदन लहकि परि यों साफ। खुसनसीब मुनसी मदन लिखयों कांच पर काफ।

'काफ' अक्षर का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि यह कवि फारसी लिपि में प्रयुक्त वर्णमाला से परिचित थे। मैं शब्दों की बात नहीं करूँगी। वह एक अलग लेख का विषय हो जाएगा। फारसी लिपि में लिखे गये असंख्य शब्दों का प्रयोग नागरी लिपि में हुआ है। संतों ने अपने काव्य में नागरी लिपि में कुर्आन शरीफ की आयतों को लिपिबद्ध किया है। फारसी लिपि में लिखी गयी उर्दू भाषा का आधार नागरी है। अमीर खुसरो के जमाने से यह प्रयोग मिलता है स्वयं अमीर खुसरो ने अनेक नागरी लिपि के अक्षरों एवं शब्दों का प्रयोग किया है।

बहुत सूक्ष्मता और उदारता से देखा जाये तो पता चलेगा कि दोनों भाषाओं की दोनों लिपियों में कुछ अक्षर एक-दूसरे से मिलते हैं फारसी लिपि के द और र को पलट दिया जाये तो वह नागरी लिपि के द और र बन जाते हैं। य की शिरोरेखा को तनिक परिवर्तन से हटा दें तो फारसी और हिंदी की य ध्वनि समान हो जाती है।

प्राचीन हिंदी कवियों की अधिकांश पाण्डुलिपियाँ फारसी लिपि में मिलती हैं। मध्यकाल में टोडरमल ने फारसी भाषा और लिपि को राजकाज के साथ जोड़ दिया था। उससे पहले भी फारसी लिपि का प्रयोग होने लगा था। पटना संग्रहालय के पूर्व अध्यक्ष डॉ0 परमेश्वरीलाल गुप्त का मत है - अभी पचास वर्ष पूर्व तक अधिकांश कायस्थ परिवारों का नागरी लिपि के साथ नाम का भी संबंध न था। उनके घरों में रामायण ही नहीं, दुर्गापाठ और भगवद्गीता का भी पाठ उर्दू फारसी में लिखी कापियों से होता था और वे शुद्ध उच्चारण के साथ उनका पाठ किया करते थे। इंग्लैंड और फ्रांस के पुस्तकालयों में न केवल सूरसागर आदि धार्मिक ग्रंथों का ही वरन् हिंदू कवियों द्वारा रचित अनेकश्रृंगार काव्यों यथा केशवदास की रसिक प्रिया, बिहारी सतसई आदि भी फारसी लिपि में लिखी काफी प्राचीन प्रतियाँ सुरक्षित हैं। उन्हें देखते हुए यह कल्पना करना कि प्रेमाख्यान काव्यों के रचयिता मुसलमानों ने अपने काव्य को आदि प्रति नागरी अक्षरों में लिखी हो हास्यास्पद है। ये कवि न केवल स्वयं मुसलमान थे वरन् उनके गुरू भी मुसलमान थे और उनके शिष्य भी मुसलमान ही थे। एक भी ऐसी नागरी प्रति उपलब्ध नहीं है जो सतरहवीं शताब्दी के पूर्व की हो 'भक्तिकाल और मुस्लिम संस्कृति, पृ0 194' लेखक असद अली द्वारा चंदायन पृ0 27-28 से उद्धृत, संपादक परमेश्वरी लाल गुप्त।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी में मैंने स्वयं फारसी लिपि में हिंदी के हस्तलेख देखे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, हरदयाल पब्लिक लाइब्रेरी,

दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी की विभिन्न शाखाओं में फारसी लिपि में प्रकाशित धार्मिक पुस्तकें बड़ी संख्या में हैं। यह रचनाएँ नागरी लिपि में भी हैं। इसी तरह फारसी लिपि में प्रकाशित मुसलमानों का धार्मिक साहित्य नागरी लिपि में भी मिलता है। कुर्आन शरीफ की अनेक प्रतियाँ नागरी लिपि में मिल जाती हैं।

यह फारसी लिपि और नागरी लिपि की बड़ी विशेषता है कि कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जिनका साहित्य दोनों लिपियों में मिलता है। दोनों लिपियों को उन पर गर्व है। इनमें सबसे पहला नाम अमीर खुसरो का है। उनकी हिंदी शायरी, फारसी शायरी के साथ-साथ मिलती है। एजाज खुसरवी में उनकी पहेलियाँ, कह मुकरियाँ अनमिल ढकोसले, गीत दो सुखने, कव्वाली आदि फारसी लिपि में मिलते हैं। अमीर खुसरो की हिंदी कविता पुस्तक में उनकी हिंदी कविता नागरी लिपि में मिलती है। उन्होंने दोनों लिपियों के अक्षरों को मिलाकर गजल भी लिखी - जहाले मिस्कीं शकुन तगाकुल दुराय नैना बनाए बातयाँ/सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।

नजीर अकबराबादी भी ऐसा ही नाम है जिनकी कविता हमें दोनों लिपियों में मिलती हैं। दकिनी शायरी में भी दोनों लिपियों को अपनाया गया। नागरी लिपि में यह कविता दक्षिणी हिंदी काव्यधारा शीर्षक के अंतर्गत लिखी गयी। फारसी लिपि में दकिनी शायरी के नाम से प्रकाशित हुई। रानी केतकी की कहानी इंशाअल्ला खां ने लिखा है फारसी और नागरी दोनों लिपियों में मिलती हैं। आधुनिक काल में भी प्रेमचंद ने दोनों लिपियों को अपनाया। उपेन्द्रनाथ अश्क, देवेन्द्र सत्यार्थी और ऐसे अनेक नाम सामने आते हैं जिनका दोनों लिपियों पर समान अधिकार है। दोनों लिपियाँ उनके लेखन पर गर्व करती हैं। अली सरदार जाफरी प्रगतिशील लेखक ने बहुत से कवियों को एक ही पुस्तक में जैसे एक पृष्ठ नागरी और एक फारसी लिपि में लिखकर प्रकाशित किया है।

भारतीय देवी-देवताओं की कहानियां महाभारत, रामायण, भगवतगीता, सावित्री सत्यवान की कथा, दुष्यन्त और शकुंतला की कहानी, मेघदूत माधव अनल कामकंदला, चंदायन, पद्मावत, मधुमालती आदि की कहानियाँ, बारहमासा आदि दोनों लिपियों का विषय बनीं। हिंदी लिपि से बहुत सी चीजें या कथाएँ खलीफाओं विशेष रूप से हारून रशीद और मामून रशीद के जमाने से फारसी में अनुदित होने लगी। फारसी लिपि में आयीं। इसी तरह फारसी लिपि से बहुत सी रचनाएं हिंदी लिपि में ली गयीं। हम्द मंकबत नात, अल्लाह की प्रशंसा नात में मुहम्मद साहब की तारीफ मुंकबत में चारों खलीफाओं के प्रति श्रद्धा और सूफी

औलिया का गुणगान किया जाता है। यह फारसी लिपि से हिंदी लिपि में आया। इसी तरह अपने देश के तीज त्यौहार, मेले ठेले, ईद, बकराईद, होली, दिवाली, बसंत आदि फारसी लिपि में भी मनाया गया।

दोनों लिपियों में प्रयुक्त होने वाले काव्यरूप भी एक-दूसरे से प्रभावित हुए। मसनवियाँ फारसी और हिंदी दोनों लिपियों में लिखी हुई मिलती हैं। मैं उनके विस्तार में नहीं जाऊँगी। गज़ल फारसी और नागरी लिपि की प्रिय विधा रही है। भारतेन्दु रसा नाम से गजलें लिखते थे। उनकी गजल का मतला है - उसको शहंशाही हर बार मुबारक होवे। कसरे-हिंद का दरबार मुबारक होवे।

दोनों लिपियों में समान छंद और बहरें प्रयोग की गयी हैं। कसीदा भी उर्दू-हिंदी अर्थात् फारसी और नागरी लिपि में लिखा गया। केशव दास और अकबरी दरबार के हिंदी कवियों के लिखे कसीदे नागरी लिपि में तो सौदा और जौक के लिखे कसीदे फारसी लिपि में मिलते हैं। अलिफनामा और ककहरा भी दोनों लिपियों में समान रूप से लिखा गया। दूसरी तरह गीत और दोहे भी दोनों लिपियों की शान बने। पाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि जमीलउद्दीन आली कहते हैं- फारसी लिपि में सूर कबीर बिहारी रहीमन तुलसीदास सबकी सेवा की पर आली गई न मन की प्यास।

मरसिया या शोक गीत भी दोनों लिपियों की संपत्ति है।

दोनों लिपियों में समान अलंकारों का प्रयोग भी मिलता है। उपमा, रूपक, श्लेष, यमक का प्रयोग किया गया। कहीं-कहीं समान उपमान भी मिलते हैं। दोनों लिपियों में आंखों की उपमा खंजन पक्षी से दी गयी है फारसी लिपि में इसका उदाहरण पेश है। फायाज़ कहते हैं - दो नैन थे उसके चंचल ज्यों खंजन। जिनके देखे मृग पकड़े जोग बन। नाक उसकी थी कली सूं खूबतर। साफ दरपन सूँ था वह मुख बेशतर। नागिनी सी था लटाँ दो उसके सर। होश उन देखे से जाता था बिसर। दिलफरेबी की अदा उसकी अनूप। रूप में थी राधिका सूँ भी सरूप।

यहाँ प्रयुक्त सारे उपमान नागरी लिपि में प्रयुक्त उपमान हैं जो फारसी लिपि में अपनाये गये हैं।

हमारे देश में दोनों लिपियाँ बहुत प्रचलित रही हैं। उनमें प्रचुर साहित्य लिखा गया है। अनेक भाषाओं को इन्होंने गले लगाया है। आज जरूरत इस बात की है लोग अधिक से अधिक लिपियों का ज्ञान प्राप्त करें ताकि एक भाषा की सामग्री से दूसरी भाषा के जानने वालों को परिचित करा सकें। यह काम हो भी रहा है। नागरी लिपि में प्रकाशित सामग्री विदेशों में दूसरी लिपियों में छप रही

हैं। यहाँ की कहानियाँ, उपन्यास, कविता, लेख आदि पाकिस्तान में फारसी लिपि में छपते हैं वहाँ के लेखक यहाँ नागरी लिपि में।

नागरी लिपि यदि कुछ नए ध्वनि चिह्न जिन्हें लखनऊ के नंदकुमार अवस्थी ने कुर्आन शरीफ को हिंदी लिपियांतरित करते समय अपने छापेखाने में ढाला था, का प्रयोग करे उन बहुत-सी ध्वनियों या अक्षरों को जो नागरी लिपि में नहीं है अपनी संपत्ति बना लेगी। उसके द्वारा सही उच्चारण और अर्थ के साथ लिख सकेगी।

फारसी लिपि और नागरी लिपि दोनों का संबंध सदियों पुराना है। जरूरत है इस रिश्ते को मजबूत करने की। दोनों लिपियों ने मिलकर राष्ट्रीय चेतना को जगाया है। आजादी की लड़ाई लड़ी है। इनको धर्म संप्रदाय की शृंखलाओं ने बांध कर स्वतंत्र रूप से फलने-फूलने का, आगे बढ़ने का अवसर दिया जाये। दोनों लिपियों में प्रकाशित साहित्य अधिक अच्छे ढंग से छप कर सामने आये। अधिक से अधिक लोग उससे लाभान्वित हों।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देवनागरी लिपि

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उसे अपने नित्य के कार्य करने पड़ते हैं और उनके लिए उसे अन्य व्यक्तियों के साथ विचार विनमय करना होता है। विचार विनमय के माध्यम अनेक हैं, जिनमें भाषा सबसे प्रमुख और सबसे सरल माध्यम है। विभिन्न संकेतों द्वारा भी भाव प्रकट किए जाते हैं। सिर को आगे हिलाना स्वीकृति का सूचक है, दाएं बाएं हिलाना इनकार का द्योतक है। आंखें तरेर कर देखना अथवा मुट्ठी बांध कर तानना क्रोध का सूचक है। इन विभिन्न संकेतों से भाव प्रकट किए जाते हैं और दूसरे लोग उन्हें समझ भी लेते हैं।

प्रतीकों द्वारा भी संदेश भेजने की प्रथा तो अति प्राचीन काल से विभिन्न देशों में प्रचलित है। संकेतों द्वारा अथवा प्रतीकों द्वारा भाव या विचार प्रकट किए जाते हैं, फिर भी यह कहना ही होगा कि भाव और विचार प्रकट करने का सबसे सरल साधन भाषा है।

भाषा का जन्म कैसे हुआ, कब हुआ, कैसे भाषा विकसित हुई इस सबकी कहानी कम रोचक नहीं है, किंतु यहां उसकी चर्चा करना विषयांतर हो जाएगा। निश्चित प्रयत्नों के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि समष्टि भाषा से बहुत दिनों तक काम चलता रहा होगा। लिपि का जन्म भाषा के जन्म के बहुत

समय बाद हुआ होगा। आज भी ऐसे अनेक जन समाज हैं, जिनके पास उनकी अपनी भाषाएं हैं, किंतु लिपि नहीं है।

भाषा से अपना काम चलाते रहने के बाद आगे चलकर ऐसी आवश्यकता अनुभव हुई होगी कि कोई ऐसा माध्यम मिले, जिसके द्वारा मनुष्य मुख से निकली वाणी, स्थान और कालगत दूरी को पार कर सके।

मनुष्य की वाणी एक निश्चित दूरी तक ही सुनी जा सकती है। आधुनिक युग में और वह भी अभी-अभी वैज्ञानिक अन्वेषकों ने लाउडस्पीकर का आविष्कार कर ध्वनि को कुछ अधिक दूर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। ईथर की लहरों का सहारा लेकर रेडियो काफी दूर की ध्वनियों को खींच लाता है। इस तरह ध्वनि के लिए स्थानगत दूरी सिमट रही है। कालगत दूरी की समस्या अब भी बनी हुई।

प्राचीन काल में इस स्थानगत और कालगत दूरी को समाप्त करने के लिए, दूरस्थ व्यक्ति तक अपनी बात पहुंचाने के लिए तथा अपनी अगली पीढ़ियों के लिए अपने अनुभव, अपनी मान राशि स्थिर करने के लिए एक माध्यम की खोज शुरू हुई होगी। इस दिशा में जो प्रयत्न हुए, जो सफलता मिली उसी से लिपि के जन्म और उसके विकास की कहानी शुरू होती है। आज हम वाल्मीकि के कथन को पढ़ सकते है, तुलसी की रामकथा का रसास्वाद ले सकते हैं, शेक्सपियर के नाटकों से परिचित हो सकते हैं। यह सब लिपि का ही प्रसाद है।

लिपि की उत्पत्ति के विषय में सबका मत एक सा नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि लिपि भी भगवान की ही कृति है। यह मान्यता केवल भारत में ही नहीं, वरन विदेशों में भी पाई जाती है, किंतु मानना होगा कि इस मत में सार नहीं है। तथ्य यह है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिपि को जन्म दिया है।

लिपि के जन्म की खोज करते-करते हम वहां पहुंचते हैं, जहां मनुष्य जादू टोने के लिए, अथवा किसी देवता का प्रतीक बनाने के लिए, अथवा स्मरण रखने के लिए कुछ चिन्हों का प्रयोग किया करता था। आज भी अनपढ़ धोबी भिन्न-भिन्न घरों के कपड़ों पर भिन्न प्रकार के चिन्ह बना देते हैं, ताकि उन्हें आसानी से खोजा जा सके।

लिपि का आदि रूप चिन्ह या चित्रलिपि ही है। चित्रलिपि में किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसका चित्र बनाया जाता है। चित्रलिपि का अपना महत्व है। उसके द्वारा ध्वनि बोध भले न हो, अर्थ बोध हो जाता है। किसी भी देश के

समाचार पत्र में छपे कार्टून चित्र के अर्थ को उस देश की भाषा न जानने पर भी सहज ही समझा जा सकता है। इस अर्थ में लिपि को 'अंतर्राष्ट्रीय लिपि' कह सकते हैं। चित्रलिपि का प्रयोग प्राय: प्रत्येक देश में पाया जाता है।

चित्रलिपि अपने में सरल लिपि नहीं है। भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए सरल माध्यम की खोज होती रही। फलस्वरूप ध्वन्यात्मक लिपि सामने आई। इस लिपि में चिन्ह का संबंध ध्वनि से जुड़ा रहता हैं ध्वन्यात्मक लिपि में चिन्ह कोई चित्र नहीं बनाते, वे मात्र ध्वनियों को प्रकट करते हैं। परिणाम यह होता है कि एक व्यक्ति जिन शब्दों को कहना चाहता है, उन्हें वह उस लिपि में लिख देता है, इसलिए पढ़ने वाला पढ़ते समय उन्हीं ध्वनियों को करता है। 'राम' लिखा जाता है, 'राम' ही पढ़ा जाता है। ध्वन्यात्मक लिपि में अक्षरों का संबंध ध्वनि से होता है, इसलिए किसी भी भाषा को उसमें लिखा जा सकता है।

भारतीय लिपियों का इतिहास काफी पुराना है। ऐसा माना जाता है कि भारत में लेखन पद्धति का प्रचार चौथी शताब्दी के पहले भी मौजूद था। प्राचीन काल में भारतवासी अपने विचारों को किसी न किसी लिपि में शिलाओं पर, धातुपत्रों पर, ताड़पत्रों पर, भोजपत्रों पर प्रकट किया करते थे। प्राचीन सूत्रग्रंथों में लेखन कला का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी और सिंधु घाटी की लिपियां प्रचलित थीं। पहली दो लिपियों की जानकारी तो विद्वानों को पहले से ही थी, किंतु मोहन जोदड़ो की खुदाई में प्राप्त मुद्राओं से तीसरी लिपि का भी पता चला है।

ब्राह्मी ओर खरोष्ठी लिपियों की जन्मभूमि भारत ही है अथवा कोई अन्य देश, इस संबंध में विद्वान एक मत नहीं हैं। भारत के प्रसिद्ध विद्धान श्री गौरीशंकर हीरानंद ओझा का स्पष्ट कथन है कि 'ब्राह्मी लिपि आर्यों की अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग सुंदरता से इसका कर्ता ब्रह्मा देवता मानकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। चाहे साक्षर ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इसमें संदेह नहीं है कि इसका जन्म भारत में ही हुआ था' सर्वश्र टामस, डासन और कनिंघम आदि विद्वान श्री ओझा जी के विचारों से सहमत हैं।

खरोष्ठी लिपि के जो प्राचीनतम लेख मिले हैं, उनसे पता चलता है कि इसका प्रयोग भारत के कुछ हिस्सों में चौथी सदी (ई0 पू0) से लेकर होता रहा

है। खरोष्ठी लिपि निर्दोष नहीं है इसमें स्वरों की अव्यवस्था है और दीर्घ स्वरों का अभाव है। सदोष होने के कारण खरोष्ठी लिपि भारत में व्यापक न बन सकी और न स्थायी बन सकी। उसका शीघ्र लोप हो गया खरोष्ठी की अपेक्षा ब्राह्मी अधिक व्यापक हुई और विकास करती हुई आगे बढ़ी। खरोष्ठी की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि अधिक सुंदर और अधिक गठी हुई थी इसलिए वह लोकप्रिय होती गई। ब्राह्मी में गोलाई का और छोटी लकीरों का प्रयोग होता है जिससे यह लिपि सुंदर लगती है।

ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम नमूने 5वीं सदी (ई0 पू0) के मिले हैं। यह लिपि अपने गुणों के कारण फैलती हुई विकसित होती गई और लोकप्रिय होती गई। उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक इस लिपि का प्रयोग होता था। आगे चलकर उत्तर भारत और दक्षिण भारत की ब्राह्मी में भिन्नता आ गई और यह भिन्नता इतनी बड़ी हो गई कि दोनों की समानता में भी संदेह होने लगा। ब्राह्मी लिपि प्रदेशों में पहुंचकर कुछ-कुछ भिन्न रूप धारण करने लगी और भिन्न नामों से जानी जाने लगी।

उत्तर भारतीय ब्राह्मी लिपि का विकास होता गया। गुप्तलिपि, कुटिल लिपि का रूप धारण कर अंत में वह नागरी लिपि कहलाई। संपूर्ण उत्तर भारत में इसका प्रचार था, महाराष्ट्र में भी इसी का व्यवहार होता था। इतने बड़े भू-भाग की लिपि होने के कारण भारत की लिपियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इसमें लिखित जो प्राचीनतम लेख प्राप्त हुआ है, वह सातवीं सदी का है।

भारत के पूर्वांचल में चलने वाली लिपियां बंगला, असमिया, मणिपुरी, उड़िया देवनागरी से बहुत ही अधिक मिलती है। उड़िया लिपि के अनेक अक्षर तो देवनागरी लिपि जैसे ही हैं। भेद केवल शिरोरेखा का है। जब कागज उपलब्ध नहीं होता थे, तब उत्कल प्रदेश में ताड़पत्रों का उपयोग किया जाता था। ताड़पत्र पर लिखते समय यदि शिरोरेखा सीधी खींची जाए तो ताड़पत्र फटने का डर रहता है इसीलिए वहां शिरोरेखा गोलाकार लगाई गई।

दो तीन अक्षरों को छोड़कर गुजराती की संपूर्ण लिपि शिरोरेखा विहीन देवनागरी ही है। सिंधी भाषा की लिपि पहले देवनागरी ही थी। मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण उसने सुधरी हुई फारसी लिपि अपना ली थी। देश विभाजन के पश्चात उसने फिर देवनागरी को अपना लिया है। लगभग 500 सिंधी के साहित्यिक ग्रंथ देवनागरी लिपि में लाए जा चुके हैं। अजमेर की सिंधी देवनागरी प्रचारिणी सभा तथा बंबई की एक सिंधी संस्था ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य

किया है। पाठ्य पुस्तकें देवनागरी में छापी गई है, कई पत्र देवनागरी लिपि में निकल रहे हैं।

इतिहास बताता है कि गुप्त साम्राज्य बंगाल से लेकर दक्षिण तक फैला था, अतः गुप्त लिपि, जो कि ब्राह्मी लिपि का ही विकसित रूप था, दक्षिण में भी व्यवहार में आती थी। दक्षिण में पल्लव राजाओं के शिलालेखों में ग्रंथ लिपि और तमिल लिपियों के अतिरिक्त नागरी लिपि का भी प्रयोग होता था। पल्लवों के परवर्ती चोल राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर नागरी लिपि का प्रयोग किया था। दक्षिण में इस लिपि का इतना प्रभाव था कि चोल राज्य से आगे उन द्वीपों में भी यह लिपि चलाई गई, जिन्हें चोल राजाओं ने जीता था।

पश्चिमी चालुओं ने भी अपने शिलालेखों में कन्नड़ लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि का प्रयोग किया था। दक्षिण के राष्ट्रकूट के अधिकांश शिलालेख नागरी में ही मिलते हैं।

दक्षिण के विजयनगर राज्य में भी देवनागरी का प्रयोग होता था। 15वीं शताब्दी के बाद तो उस प्रदेश की प्रधान लिपि देवनागरी ही थी। 18वीं सदी में तंजाउकर के पहले राजा शिवाजी के सौतेले भाई व्यंकोजी ने प्रजा के साथ समरस होने के लिए अपनी मातृभाषा मराठी के साथ स्थानीय भाषाओं को सीखा था और उनमें साहित्य की रचना की थी। ये संपूर्ण ग्रंथ देवनागरी में प्रकाशित किए गए। जो तंजाउर के सरस्वती महल ग्रंथ संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। 'पंचभाषा विलास' नामक नाटक में तो तेलुगु, तमिल, मराठी, हिन्दी तथा संस्कृत, पांच भाषाओं का प्रयोग किया गया है। सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के दक्षिण प्रदेशों में भी देवनागरी लिपि का प्रचलन था और वहां की प्रबुद्ध जनता देवनागरी से परिचित थी। दक्षिण की पढ़ी-लिखी जनता एक-दूसरे माध्यम से भी देवनागरी लिपि से परिचित है। संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी है। दक्षिण में देवनागरी जानने वाले और उसके विद्वानों की संख्या उत्तर भारत की अपेक्षा कहीं अधिक है। दक्षिण में संस्कृत का इतना प्रचार है कि वहां 'सुधर्मा' नाम की एक दैनिक पत्रिका तक निकलती है। अतः दक्षिण में देवनागरी लिपि जानने वालों की संख्या कम नहीं है।

भारतीय भाषाओं के लिए जब एक लिपि का समर्थन किया जाता है तब उसमें एक और बात पूर्ण रूप से सहायक होने वाली है। भारत में भाषाओं की लिपि भिन्नता होने पर भी सर्वत्र वर्णमाला की एकता विद्यमान है। भारतीय

वर्णमाला के सभी स्वर और व्यंजन बड़े वैज्ञानिक ढंग से उच्चारण स्थान के अनुसार रखे गए हैं। भारतीय वर्णमाला को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। भारत की सभी भाषाओं की वर्णमाला में ध्वनियों को व्यक्त करने वाले स्वरों और व्यंजनों की संख्या और उसका क्रम भी एक सा ही है, । अत: यह साम्य देवनागरी लिपि के सीखने में सहायक होता है।

भारतीय वर्णमाला तो देश के बाहर भी कहीं-कहीं पर कुछ अंश में प्रचलित है। 'आकार' से लेकर 'हकार' तक चलने वाली भारतीय वर्णमाला नेपाल, भूटान, तिब्बत, बर्मा, श्याम, लंका आदि देशों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। मध्य एशिया, कोचीन, मलाया, यवद्वीप, बलद्वीप, सुमात्रा, फिलीपीन्स, महाचीन आदि देशों में भारतीय वर्णमाला का आंशिक रूप में प्रचार है। अत: यह वर्णमाला विदेशों में भी देवनागरी के प्रचार में सहायक हो सकती है।

आज भारत राष्ट्र का सबसे बड़ी आवश्यकता यदि किसी वस्तु की है, तो यह वह है राष्ट्रीय एकता की। विकास की सभी सीढ़ियों का आधार राष्ट्रीय एकता है। अत: प्रत्येक देशभक्त का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उन सभी मार्गों का अवलंबन करे, जो एकता की स्थापना में सहायक सिद्ध होते हों।

राष्ट्रपिता गांधी जी इतने दूरदर्शी थे। कि उन्होंने उन सभी समस्यायों पर बहुत पहले विचार किया था, जो आज हमारा ध्यान आकर्षित कर रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। किंतु इसी के साथ उन्होंने एक-दूसरे विषय की ओर भी संकेत किया था, जो कम महत्व का नहीं है। वह था देवनागरी लिपि का प्रचार।

गांधी जी चाहते थे कि भारत की सभी प्रांतीय भाषाओं की एक ही लिपि हो जाए। गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा था-

'लिपि-विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव सा हो गया है। बंगला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवा बंगालियों के और कौन पढ़ेगा ? पर यदि यह देवनागरी में लिखी जाए, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं।

'हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रांतीय लिपियां सीखने का कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया और बंगला इन छह लिपियों को सीखने में दिमाग खपाने को कहा जाए। आज कोई प्रांतीय भाषा सीखना चाहे तो लिपियों का यह अमेद प्रतिबंध ही उनके मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है।

स्पष्ट है कि गांधी जी देवनागरी लिपि के पक्के हिमायती थे और भारत की राष्ट्रलिपि के स्थान पर उसे बैठाना चाहते थे। इतना ही क्यों प्रांतीय भाषा के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग की दिशा में कुछ कार्य भी किया था। उनकी ही प्रेरण से 'नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद' ने उनकी आत्मकथा 'सम्यनो प्रयोग' को गुजराती भाषा और देवनारी लिपि में प्रकाशित किया था।

गांधी के पहले भी स्वामी दयानंद सरस्वती, बंकिम चंद्र चटर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, रवींद्रनाथ ठाकुर, जस्टिस शारदाचरण मित्र, लोकमान्य तिलक आदि सुधी पुरुषों ने देश के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी की स्वीकार किया था।

स्वामी दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी, फिर भी उन्होनें अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की किरणें हिन्दी और देवनागरी के द्वारा बिखेरी थीं। देवनागरी लिपि के समर्थकों में महत्वपूर्ण नाम है जस्टिस श्री शारदा चरण मित्र का और उसके जनक थे श्री शारदाचरण जी। उन्होंनें एक लिपि विस्तार परिषद की स्थापना की और 'देवनागर' नाम की एक पत्रिका निकाली। श्री शारदा चरण मित्र ने इसमें लिखा था।

जगत विख्यात भारतवर्ष ऐसे महादेश में, जहां जाति पांति, रीति नीति, मत आदि के अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे है, भाव की एकता रहते हुए भी भिन्न-भिन्न भाषाओं के कारण एक प्रांतवासियों के विचारों से दूसरे प्रांतवालों का उपकार नहीं होता। इसलिए एक ऐसा वृक्ष रोपना चाहिए जिसमें सर्वप्रिय फल लगे भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों की भिन्न-भिन्न बोलियों को एक लिपि में लिखना ही उस आशानुरूप फल को देने वाला प्रधान अंकुर है।

एक बंगाल क्या, सभी प्रांतों के विद्वानों ने भारत की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का समर्थन किया था। दक्षिण के श्री कृष्णास्वामी अय्यर ने एक बार कहा था कि विभिन्न लिपियों का व्यवहार करने से हम कितनी बड़ी हानि उठा रहे हैं, क्योंकि वे जनता के एक भाग को दूसरे भाग से पृथक करती है। भाषा अलग-अलग हो भी, किंतु यदि उनकी लिपि एक ही हो, तो लोगों को शब्दों वाक्यों की अभिव्यक्ति के ढंग की समानता के कारण अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का समझना भी सरल होगा।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, लोकमान्य तिलक, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य विनोवा भावे आदि सभी ने राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने एक स्थान पर लिखा है 'वर्तमान युग

में भारतीय संस्कृति के समन्वय के प्रश्न के अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा की सुंदर आनंदप्रद कृतियों के स्वाद को भारत के अन्य प्रदेशों के लोगों को कैसे चखाया जाए ? इस बारे में यह उचित ही होगा कि प्रत्येक भाषा की साहित्यिक संस्थाएं उस भाषा की कृतियों को संघ लिपि अर्थात् देवनागरी में भी छपवाने का आयोजन करें।

एक लिपि के हो जाने पर किसी देश या किन्हीं देशों को कितना लाभ प्राप्त होता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण चीन, यूरोप के देश हैं। चीन एक विशाल देश है। इसकी आबादी सवा सौ करोड़ से भी ज्यादा है। जगह-जगह के उच्चारण के कारण भाषा भेद पैदा हो जाता है। चीन में भाषाएं तो अनेक हैं किंतु सारे चीन में एक ही लिपि (चित्रलिपि) प्रचलित है। इसलिए इस लिपि को पढ़कर प्रत्येक चीनी अपनी भाषा में उसे समझ लेता है।

यूरोप में बहुत छोटे-छोटे अनेक राष्ट्र हैं और प्रत्येक राष्ट्र की अपनी पृथक भाषा है, किंतु सम्पूर्ण यूरोप में एक ही लिपि 'रोमन' का प्रयोग होता है। इस सुविधा का सबसे अधिक लाभ स्कूल के बच्चे उठाते हैं। स्कूल में पढ़ते समय ही बच्चे चार पांच भाषाएं आसानी से सीख लेते हैं, क्योंकि दूसरी भाषाओं को सीखते समय उनकी भिन्न-भिन्न लिपियों के सीखने का कष्ट उन्हें उठाना नहीं पड़ता।

आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि के प्रचार प्रसार पर बहुत जोर दिया है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है।

'सारे भारत को एक रखने के लिए उसे जितने स्नेह बंधनों से बांध सकते हैं, उतने स्नेह बंधनों की आज जरूरत है। जैसे हिन्दी एक स्नेह तंतु है, उतने ही महत्व का स्नेह तंतु देवनागरी लिपि है। आज लोग अपनी भिन्न-भिन्न भाषाएं भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखते हैं। साथ-साथ नागरी में भी लिखते तो कितना लाभ होता। उनकी लिपि अच्छी है सुंदर है। हम उसका विरोध नहीं करते, परंतु उसके साथ-साथ ऐच्छिक तौर पर नागरी में भी वह भाषा लिखना शुरू करते हैं, तो सारे भारत की भिन्न-भिन्न भाषाएं एक-दूसरे को सीखना सुलभ होगा।

देवनागरी का समर्थन करते हुए आचार्य विनोवा ने दूसरे स्थान पर कहा है-'हिन्दुस्तान की एकता के लिए हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे अधिक काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की समस्त भाषाएं देवनागरी में लिखी जाएं। सब लिपियां चलें, साथ-साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाए।

देवनागरी के प्रचार-प्रसार को विनोबा जी एक आंदोलन का रूप देना चाहते थे। इस दिशा में वे अनेक वर्षों से प्रभावशील थे। और उनकी प्रेरणा से उनका लोकप्रिय ग्रंथ 'गीता प्रवचन' तेरह चौदह भाषाओं में प्रकाशित हो चुका है। इन सबकी लिपि देवनागरी ही है। उनकी प्रेरणा से अनेक भाषाओ में, किंतु देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने लगे हैं।

भारत में दो वर्णमालाएं हैं, जिनकी दो भिन्न लिपियां हैं। ये हैं। फारसी (उर्दू) लिपि और रोमन लिपि। इन दोनों को कुछ विशेष कारणों से थोड़ा महत्व मिल गया है। ये दोनों लिपियां विदेशी हैं। भारत में रोमन लिपि का तो राष्ट्रीय दृष्टि से कोई स्थान नहीं है। अंग्रेजी के साथ वह बनी रह सकती है, किंतु उसे अपनाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सरल हिन्दी और सरल उर्दू एक ही भाषा है। हां लिपियों की भिन्नता उन्हें अलग कर देती है। अगर उर्दू के समर्थक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उर्दू के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार कर लें, तो न जाने देश की कितनी समस्याएं अपने आप सुलझ जाएं। पिछले दिनों में उर्दू का बहुत कुछ साहित्य देवनागरी लिपि में आ चुका है। कितना अच्छा हो यदि उर्दू के लेखक अपनी कृतियों को देवनागरी में प्रकाशित कराया करें। देखा गया है कि उर्दू लेखकों की जिन जिन कृतियों को देवनागरी में प्रकाशित किया गया है, उनका प्रचार विशेष हुआ है क्योंकि हिन्दी का क्षेत्र उर्दू की अपेक्षा बहुत बड़ा है।

गांधी जी ने मुसलमान भाइयों से भी यह अपेक्षा रखी थी कि वे देवनागरी लिपि को भी सीख लें। हिन्दीतर प्रदेशों के मुसलमान अपने-अपने प्रदेश की लिपियों से परिचित हैं। ये लिपियाँ देवनागरी से मिलती-जुलती हैं। लिपि, भाषा का परिधान मात्र है। इसलिए लिपि के साथ धार्मिक अथवा भावनापरक संबंध जोड़ना उचित नहीं है। ऐसा करने से लिपि प्रचार और उसके परिष्कर करने के मार्ग में बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं।

उर्दू के अनेक विद्वानों और राष्ट्रीय मुसलमानों ने खुले दिल से देवनागरी लिपि का समर्थन किया है। हजरत ताराशाह चिश्ती समिति आगरा के अध्यक्ष श्री मौलाना हाफिज रमजान अली कादरी ने एक पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'हम व हमारे मुरीदों व शिष्यों की निगाह में देवनागरी प्रचार का एक सच्चा आंदोलन है। इसमें कोई शक-शुबह नहीं है कि देवनागरी ही एक ऐसी लिपि है जो एशिया को और कम से कम हिन्दुस्तान को एक धागे में बांधने की ताकत रखती है। इस आंदोलन को सफल बनाने में हमारी खिदमत में आपके साथ हैं।'

महाराष्ट्र राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल श्री अली यावर जंग ने अपना विचार इन शब्दों में प्रकट किया है-'मेरा मत यह है कि उर्दू सहित प्रत्येक भाषा को अपनी लिपि में स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन देवनागरी लिपि को देश में जोड़ लिपि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।'

केंद्रीय सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्रीयुत नुरूल हमन ने नागरी लिपि परिषद को जो संदेश भेजा था, उससे देवनागरी के संबंध में भारत की केंद्रीय सरकार का रुख स्पष्ट होता है। उन्होंने लिखा था - 'हमारे देश की विभिन्न भाषाओ का साहित्य विशाल और समृद्ध है, लेकिन अभी यह साहित्य सिर्फ इन भाषाओं की परंपरागत लिपियों में ही है। इन परंपरागत लिपियों की रक्षा और उन्नयन तो करना ही है, लेकिन उसके साथ-साथ विभिन्न भाषाओं के साहित्य का कुछ अंश यदि एक संपर्क लिपि में भी उपलब्ध हो सके, तो विभिन्न प्रदेशों के लोग दूसरे प्रदेशों के विकसित साहित्य को आसानी से पढ़ सकेंगे और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से यह एक स्पष्ट लाभ होगा। यह संपर्क केवल देवनागरी में ही हो सकता है।

इस संदर्भ में भारत सरकार एक जोड़ लिपि की आवश्यकता के प्रति सदैव सजग रही है। इसी आवश्यकता को 1961 में मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भी औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया था। अत: केंद्रीय सरकार द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं के कुछ संकेत चिन्ह जोड़े गए हैं। इस प्रकार से विकसित लिपि अब 'परिवर्तित देवनागरी' कहलाती है।

अभी तो सुझाव इतना ही है कि प्रादेशिक भाषाएं अपनी लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी प्रयोग करें। दूर भविष्य में यह सुझाव भी आ सकता है कि भारत में एक लिपि देवनागरी रहे। ऐसा सुझाव आने पर कुछ मौलिक प्रश्न उठ खड़े होते हैं।

पहला प्रश्न यह उठता है कि यदि देवनागरी को स्वीकार कर लिया जाए तो, क्या वर्तमान लिपियों को लुप्त होने दिया जाएगा ?

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि प्रांतीय लिपियों में जो असीम सुंदर साहित्य पड़ा है, लिपि के लुप्त होते ही उसका क्या होगा ?

तीसरा प्रश्न यह कि वर्तमान समय में भाषा को लेकर इतनी ताना तानी है, तब क्या यह उचित होगा कि एक नये लिपि आन्दोलन को अंकुरित किया जाए ?

तीनों ही प्रश्न गंभीर हैं और उन पर विचार करना हागा।

यह तो स्वीकार करना ही होगा कि भारत राष्ट्र में आवश्यकता से अधिक लिपियां हैं जो प्रांत-प्रांत के बीच थोड़ा व्यवधान उपस्थित करती हैं। लिपि परिवर्तन का काम जल्दी नहीं हो सकता। प्रत्येक सुधार और प्रत्येक परिवर्तन का सही रूप होना चाहिए यदि इस दिशा में धीरे-धीरे बढ़ा जाए, तो यह परिवर्तन भी सहनीय हो जाएगा।

साहित्य के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। उचित होगा कि प्रांतीय साहित्य को धीरे धीरे देवनागरी लिपि में भी हम प्रकाशित करते चलें। देवनागरी में प्रकाशित प्रांतीय साहित्य का क्षेत्र संभवत: व्यापक होगा। अत: आर्थिक दृष्टि से यह लाभप्रद ही होगा। जहां तक प्राचीन साहित्य का प्रश्न है, उसका जितना अंश सुंदर है, शक्तिशाली है, समृद्ध है, देवनागरी में अपने आप स्थान बना लेगा। रविबाबू, शरत, प्रेमचंद, प्रसाद, मेधाणी, बल्लतोल, तमिल कवि भारती जैसे साहित्यकारों की रचनाएं भाषा और लिपि की सीमाएं पार कर देश में और विदेशों में पहुंच ही रही हैं। सुंदर समृद्ध साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। उसमें अमर रहने की अर्वणनीय शक्ति रहती है।

तीसरे प्रश्न का उत्तर और भी सरल है। ज्यों-ज्यों हममें राष्ट्रीय भावना का उदय होगा, उसका विकास होगा, त्यो-त्यों हम अपनी क्षुद्र सीमाओं से ऊपर उठेंगे। ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय गौरव का भार होगा, विभेदी विचार स्वयं ही नष्ट हो जाएंगे।

देवनागरी लिपि के प्रचार प्रसार का काम शुरू हो चुका है। और इस दिशा में काफी काम हो चुका है, हो रहा है। लखनऊ निवासी भुवन वाणी ट्रस्ट के संचालक श्री नंदकुमार अवस्थी द्वारा प्रादेशिक भाषाओं का विपुल प्राचीन साहित्य हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रकाशित हो चुका है। दिल्ली विश्वविद्यालय और केंद्रीय साहित्य अकादमी ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। बर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने 'कविश्रीमाला' नाम से प्रादेशिक साहित्य के 25 ग्रंथ देवनागरी में प्रस्तुत किए हैं।

भारत के पूर्वांचल में रहने वाली पहाड़ी जातियों की भाषाओं की कोई लिपि नहीं थी। मिशनरी पादरियों ने उनकी भाषाओं को रोमन लिपि दी है। इन भाषाओं को देवनागरी लिपि देने का प्रयत्न किया जा रहा है। जिन पहाड़ी और आदिवासियों की भाषाओं की कोई लिपि ही नहीं थी, उन्हें देवनागरी लिपि दी जा रही है। अरुणाचल की विभिन्न भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी में छानी गई

हैं। पुणे की 'ज्ञान प्रयोधिनी' संस्था ने तो अंग्रेजी भाषा की रीडरें देवनागरी लिपि में प्रकाशित की हैं।

देवनागरी प्रचार के इसी प्रकार के काम विभिन्न स्थानों पर विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा हो रहे हैं। जो लिपि अभी संपूर्ण भारत के लिए जोड़ लिपि भी न बन सकी हो, उसे पूर्वी एशिया की लिपि, या 'विश्वलिपि' बनाने की बात एक स्वप्न ही समझी जाएगी, परंतु यह मनुष्य का ही सौभाग्य है कि मनुष्य पहले स्वप्न देखता है फिर अपने पुरुषार्थ के बल पर उसे सत्य में रूपांतरित करता है। लेकिन यह मात्र कल्पना की ही बात नहीं है। अंतराष्ट्रीय संदर्भ में भी देवनागरी लिपि का महत्व है ही।

पहले ही लिखा जा चुका है कि पूर्व एशिया के देशों और द्वीपों में दक्षिण के आर्यों के द्वारा जो सांस्कृतिक अभियान हुए उनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग, जिनमें व्यापारी भी थे, उन देशों और द्वीपों में पहुंच और बस गये। वे अपने साथ अपनी भाषा और लिपि जो ब्राह्मी से उद्‌भूत थी, लेते गये इन देशों में भारतीय संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव वहां देखा जा सकता है। इसलिये बर्मा, थाइलैंड, स्याम आदि देशों में देवनागरी का प्रचार आसानी से हो सकता है।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म भारत से ही गया था। संस्कृत और पालि के जो ग्रंथ वहां पहुंचे, देवनागरी में थे। इसलिए श्रीलंका निवासी देवनागरी से अपरिचित नहीं हैं। डॉ. शेर सिंह ने अपने एक लेख में लिखा है। कि ब्राह्मी लिपि ने इस देश के बाहर भी प्रचार प्रसार पाया था। भारत से लेकर मध्य एशिया और चीन जापान तक धार्मिक ग्रंथों के लिए देवनागरी का प्रयोग होता था। सातवीं शताब्दी के मध्य में तिब्बत के राजा सुमितन्न गप्पा ने अपने अनेक विद्यार्थियो को नालंदा भेजकर तिब्बत में इस लिपि का आयात किया था।

चीन में जो चित्रलिपि प्रचलित है वह अपनी दुरूहता के कारण प्रिय नहीं हो रही है। वहां के विद्वान अपनी चीनी भाषाओं के लिए एक लिपि की तलाश में है। आचार्य विनोबा का मानना है कि अगर सही ढंग से सेवा भावना से नागरी लिपि को चीन के विद्वानों के सामने पेश किया जाए, तो चीनी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को अपनाया जा सकता है।

यह देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता होती है कि जापानी भाषा और हिन्दी भाषा का वाक्य विन्यास लगभग एक सा ही होता है। हिन्दी में जैसे पहले कर्ता, फिर कर्म, फिर क्रिया होती है। (जैसे राम ने आम को खाया) जापानी भाषा में भी ठीक यही क्रम होता है। बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के कारण, धार्मिक ग्रंथों

के कारण जापानी लोग देवनागरी से परिचित ही हैं। यदि जापानी भाषा देवनागरी को अपना ले, तो जापानी और हिन्दी एक-दूसरे के निकट आ जाएंगी।

संसार के कई ऐसे देश और द्वीप हैं, जहां भिन्न-भिन्न कारणों से लाखों भारतीय विशेषत: हिन्दी भाषी लोग पहुंचे हैं और वहीं बस गए हैं। उनके साथ उनकी भाषाएं गईं, देवनागरी लिपि गई। ऐसे देशों में सूरीनाम, मॉरिशस, गयाना, ट्रिनिडाड, फीजी आदि का नाम आसानी से लिया जा सकता है, इन देशों में हिन्दी भाषा और देवनागरी का खूब प्रचार है। कहीं कहीं राजभाषा हिन्दी है, राजलिपि देवनागरी है।

स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् विश्व में हिन्दी भाषा का मान बढ़ा है। संसार के 74 विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन विधिवत होता है। हिन्दी के साथ देवनागरी वहां पहुंची। देवनागरी लिपि अपने सहज स्वाभाविक गुणों के कारण सभी जगह लोकप्रिय हो रही है। उसकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझा जा रहा है, इसलिए आश्चर्य नहीं होगा, यदि कभी भविष्य में देवनागरी लिपि अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर चमक उठे।

❐❐❐